सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग 15

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

[illegible]सूत्रप्रवचन

[१५, १६, १७ भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक

[illegible] जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला

पावगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :

खेमचन्द जैन सर्राफ

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[पञ्चदश भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहरजी वर्णी 'सहजानन्द'जी महाराज

प्रमाणकी आख्यातिका सम्बन्ध प्रमाणसे अर्थकी सिद्धि होती है और प्रमाण से अर्थकी असिद्धि रहती है इसी हेतु इस ग्रन्थमें प्रमाण और प्रमाणाभासके स्वरूपका वर्णन है। अब दूसरा अर्थ लीजिए। प्रमाण मायने देव, "प्र" कहो प्रकृष्ट "म" कहो ज्ञान लक्ष्मी और "ण" कहो दिव्यध्वनि। जिसके उत्कृष्ट लक्ष्मी ज्ञान और दिव्य ध्वनि प्रकट हो उसका नाम है प्रमाण अर्थात् आप्त अरहंतदेव। उससे तो अर्थकी सिद्धि होती है। अर्थ मायने प्रयोजन। संसारके संकटोंसे छूटना उसकी सिद्धि होती है और जो प्रमाणाभास है कुदेव उससे प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होती ऐसा स्मरण मात्र नमस्कार इस श्लोकमें आया है। प्रमाणका मुख्य अर्थ है ज्ञान। यह तो नमस्कारपरक अर्थ किया लेकिन उसका प्रासंगिक अर्थ है ज्ञान। ज्ञानका स्वरूप इस ग्रन्थमें बताया है कि जो स्व और परका निर्णय करे उस ज्ञानको प्रमाण कहते हैं, और वह प्रमाण दो प्रकारका है—प्रत्यक्ष और परोक्ष। तो दूसरे अध्याय में प्रत्यक्ष प्रमाणका स्वरूप बताया है। अब उसके अतिरिक्त जो दूसरा प्रमाण रहा परोक्ष, उसके स्वरूप निर्णयके लिए कहते हैं कि—

परोक्षज्ञानका स्वरूप—जिसका विशद परोक्षमितरत् स्वरूप है, जैसा कि द्वितीय परिच्छेदमें बताया गया है उस विशद स्वरूप वाले विज्ञानसे अतिरिक्त जो भी विज्ञान हैं वे सब अविशद वाले हैं और परोक्ष हैं। अथवा यों कहलो कि विसदं प्रत्यक्षं तो अविशदं परोक्षं। परोक्षका यह संक्षिप्त स्वरूप है। जो अविशद ज्ञान है उसे परोक्ष कहते हैं इसके अनुमानको भी बता रहे हैं अविशदं ज्ञानं परोक्षं परोक्षत्वात्। जो अविशद ज्ञानस्वरूप हो उसको परोक्ष कहते हैं क्योंकि परोक्ष होनेसे। जो जो परोक्ष होते हैं वे वे सब अविशद ज्ञानात्मक होते हैं। जो अविशद ज्ञानात्मक नहीं होते हैं वे परोक्ष भी नहीं होते हैं, जैसे मुख्य प्रत्यक्ष और सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। यहाँ इस व्याप्तिमें व्यतिरेक व्याप्ति होनेपर दृष्टान्त मिलता है और अन्वय व्याप्ति होनेपर

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

दृष्टान्त नहीं मिलता। जैसे यह अनुमान प्रयोग बनाया जाय कि सर्व अनेकान्तात्मकं सत्त्वात् जगतमें जितने भी पदार्थ हैं वे सब अनेकान्तात्मक होते हैं सत् होनेसे अब इसमें इस तरहसे व्याप्ति नहीं बन सकती कि जो जो सत् होते हैं वे वे सब अनेकान्तात्मक होते हैं। यद्यपि यह व्याप्ति सही है मगर इसका दृष्टान्त कुछ नहीं मिलता है सब सत् हैं वे हमारे पक्षमें आ गए हैं सो दृष्टान्त नहीं मिलता। और जब यह कहा जाय कि जो अनेकान्तात्मक नहीं होता वह सत् भी नहीं होता। इसमें कुछ दृष्टान्त तो देंगे जैसे आकाशके फूल खरगोशके सींग, इसी तरह यहां व्यतिरेक व्याप्ति कहकर दृष्टान्त देना चाहिये। जो स्पष्ट ज्ञान वाला नहीं होता वह परोक्ष भी नहीं होता। जैसे कि प्रत्यक्षज्ञान। और यह विज्ञान जो कि सब कुछ बताया जायगा वह परोक्ष है इस कारणसे अविशदज्ञान रूप है, जो स्पष्ट ज्ञानात्मक हो उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। अब उसका निमित्त क्या है, उसके भेद कितने हैं यह सब बतानेके लिये सूत्र कहते हैं।

प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदमिति ॥२॥

परोक्षज्ञानके भेद—प्रत्यक्ष आदिक हैं निमित्त, जिनके ऐसे परोक्षज्ञान होते हैं और वे स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क अनुमान और आगमके भेदसे ५ प्रकारके होते हैं इनका क्या स्वरूप हैं यह स्वयं सूत्रोंके रूपमें वर्णन किया जायगा, इसलिए अलग न कहकर स्वरूप सूत्रोंके प्रकरणमें कहेंगे। उनमेंसे यहां परोक्षज्ञानके प्रथम भेदरूप स्मृतिज्ञानका स्वरूप बतलाते हैं।

संस्कारोद्बोधनिबन्धना तादित्याकारा स्मृति ॥ ३ ॥

स्मरण ज्ञानका निमित्त और स्वरूप—तत् "वह है" इस तरहके आकार वाले जो ज्ञान हैं उन्हें स्मरण ज्ञान कहते हैं। जब किसी भी चीजका ख्याल आता है तो उसकी मुद्रा वह है। वह था, वह होगा, वह भूतकालमें लगालो। किसी ढंगसे लगावो वह मुद्रा है उसकी। वह है इस प्रकारका जिसका आकार है, मुद्रा है उसे स्मृतिज्ञान कहते हैं, और यह ज्ञान बनता है किस प्रकार है इसमें कौनसा ज्ञान सहयोगी होता है स्मरण ज्ञान संस्कारके उद्बोधके कारण होते हैं अर्थात् संस्कार नाम है धारणा ज्ञानका। कई जगह संस्कार शब्दका प्रयोग आता है, पर उसका असली अर्थ क्या है कैसा संस्कार बना हुआ है, संस्कारका अर्थ है धारणा। अवग्रह ईहा, अवाय ज्ञान होकर फिर उसे न भुला सके ऐसी योग्यता वाले ज्ञानको धारणा ज्ञान कहते हैं और उसीका दूसरा नाम है संस्कार। तो उस धारणा ज्ञानका उद्बोध होने पर स्मरण ज्ञान बनाता है। जैसे किसी भी चीजका पहिले ज्ञान किया था, इन्द्रिय द्वारा जाना था, उसकी धारणा बनी थी वह धारणा जब चेती तब उसका एक पुनः व्यक्त रूप बना तो उस कारणसे यह स्मरण ज्ञान होता है। इसमें यह बात मुख्यरूपसे आ गई कि जिस चीजको हमने जाना था, देखा था, अनुभवा था उस ही के विषयमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

एक जागृति होती है स्मरण ज्ञानमें कि वह है। जैसे बाजारमें किसी दूकानपर छतरी रखकर बैठे हुये थे। पानी बरसना बंद हो जानेसे वहांसे चल दिये। आगे जानेपर किसीकी छतरी देखकर झट धारणा ज्ञान जग गया। ओह! मेरी छतरी वहां रखी है। हम अपनी छतरी भूल आए तो यह जो स्मरण हुआ वह धारणाके जगनेसे हुआ। अब धारणाका जगना चाहे किसी निमित्तपूर्वक हो तो या अकस्मात् हो तो संस्कार के उद्बोधके कारणसे वह है इस प्रकारके आकार और मुद्रा वाला जो ज्ञान है उस को स्मृतिज्ञान कहते हैं। अब शिष्योंके प्रबोधके लिए और सुखपूर्वक जाननके लिए दृष्टान्तोंके द्वारा उसका स्वरूप बतला रहे हैं।

यथासदेवदत्त इति ॥ ४ ॥

स्मृतिज्ञानकी तच्छब्दमुद्रितता – जैसे कि वह देवदत्त है। उसमें वह लग गया ना, और न भी कोई वह बोले मुखसे तो वह उसके साथ लगा ही रहता है। जितने भी स्मरण ज्ञान होते हैं वे सब तत् शब्दकी मुद्रासे हुआ करते हैं। तो इस प्रकार तत् शब्दके द्वारा जाना हुआ जो ज्ञान है वह स्मरणज्ञान है। अब निबन्धोंमें जैसे हम वाक्य लिखते हैं—"जिसने आत्माके स्वरूपका अनुभव किया है वहीं वास्तविक रूपसे चारित्र पाल सकता है।।" ऐसा एक वाक्य बनाया। अब इसमें जो 'वह' शब्दसे कहा गया द्वितीय वाक्य उसमें स्मरण बसा हुआ है। जिसने आत्माका अनुभव किया यह तो है एक सीधा कथन, वह चारित्र पाल सकता है। इसमें स्मरण बसा हुआ है। कौन पाल सकता है चारित्र? वह, जिसने आत्मानुभव किया। तो निबंधोंके बीचमें भी जिस जिस जगह वे शब्द हैं उसमें तत् शब्दके जितने भी शब्दपद हैं उन सबमें स्मरण बसा है। कोई पुराना स्मरण है कोई तत्कालका तो स्मरणकी मुद्रा तत् शब्दसे प्रकट होती है।

स्मृतिज्ञानकी प्रमाणभूतता – स्मृतिज्ञान अप्रमाण नहीं है, प्रमाणभूत है। जितने ख्यालमें आते हैं वे सब ज्ञान प्रमाणभूत हैं क्योंकि सम्वादक होनेसे, विसम्वादी न होने से। संशयज्ञानमें विवाद पड़ा है पर स्मृतिज्ञानमें विवाद नहीं है। विवादरहित ज्ञानका नाम प्रमाण है। जिस ज्ञानके होनेपर किसी प्रकारका विवाद नही उठता वही तो प्रमाण है। तो स्मरणज्ञान करते समय भी स्मरण करने वालेका कोई विवाद तो नही उठता। जैसे किसीको हम आज्ञा भी देते कि देखो! वह समयसार उठा लेआवो जो अमुक जगहका छपा है। तो इसमे कोई विवाद तो नही रहता। वह उस ही चीज को ले आता है। तो जो अनिश्चयसे भरा न हो निश्चित हो वह सब प्रमाण है। जो जो सम्वादक ज्ञान है वे सब प्रमाण होते हैं। जैसे प्रत्यक्ष आदिक। और स्मरण ज्ञान भी सम्वादक है, इस कारण स्मृति भी प्रमाण है।

क्षणिकवादी द्वारा स्मरणज्ञानके निराकरणमें स्मृति शब्दवाच्य अर्थ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

के प्रथम विकल्पका निरसन - अब इस प्रसंगमें क्षणिकवादी लोग स्मरणका खंडन कर रहे हैं जो खण्डन बिना विचार किये बहुत ही दिलको लुभाने वाला होगा और वह यह साबित करेगा कि स्मरण ज्ञान कोई ज्ञान नहीं है, क्षणक्षयवादी पूछते हैं कि स्मृति शब्दका वाच्य अर्थ क्या है, स्मरण शब्दसे तुमने कहा क्या ? किसका नाम स्मरण ज्ञान है ? क्या ज्ञानमात्र होनेका नाम स्मरण है या अनुभूत पदार्थके विषयमें होने वाले ज्ञानका नाम स्मरण है। स्मरण शब्दके दो वाच्य विकल्प किए गए। क्षणिकवादी स्मरणका अर्थ पूछ रहे हैं कि स्मरणका अर्थ क्या है ? स्मरण ज्ञानमात्र तो अर्थ किया नहीं जा सकता कि ज्ञानमात्रका नाम है स्मृतिज्ञान। यदि ज्ञानमात्रको ही स्मृतिज्ञान कह दिया जाय तो प्रत्यक्ष आदिक भी जितने ज्ञान हैं वे सब स्मृति शब्दसे वाच्य हो जायेंगे, क्योंकि सभी ज्ञानोंमें ज्ञानपना तो है ही। अब ज्ञानपनेको तुम स्मृति कह रहे हो फिर दृष्टान्त भी क्या मिलेगा। अभी तो यह व्याप्ति बनी थी कि जो अविशद ज्ञानात्मक नहीं है वह परोक्ष भी नहीं है जैसे कि प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष अविशद ज्ञानात्मक नहीं है विशद है तो वह परोक्ष भी नहीं कहलाता है। तो प्रत्यक्ष भी स्मृति कहलाता है तो दृष्टान्त भी कुछ न मिलेगा। ऐसा तो है नहीं कि वही दृष्टान्त हो वही दृष्टान्त बन जाय।

स्मरणशकवाच्य अनुभूतार्थविषयविज्ञानरूप द्वितीय विकल्पमें अनुभव विज्ञानताके विकल्पका शंकाकार द्वारा निरसन—यदि कहोगे कि स्मरणका यह अर्थ है कि अनुभूत पदार्थोंको विषय करने वाला विज्ञान (इस विकल्पमें बल है) जो पदार्थ अनुभवमें आ चुका है जिसे देख लिया, सुन लिया, छू लिया, जान लिया, ऐसे पदार्थोंके सम्बन्धमें जो ज्ञान उत्पन्न होता है फिर वह स्मरण कहलाता है यदि स्मरणका यह अर्थ करोगे तो देवदत्तने किसी पदार्थका अनुभव किया और यज्ञदत्तके ज्ञानको उसका स्मरण बन जाना चाहिये क्योंकि अनुभूत पदार्थोंके सम्बन्धमें जो ज्ञान होता है उसका नाम है स्मरण। अनुभूत तो हुआ देवदत्तका और स्मरण हो यज्ञदत्तको। यदि यह कहो कि देवदत्तके अनुभूति अर्थको यज्ञदत्तका ज्ञान कैसे स्मरण करेगा जिसके ही द्वारा जो हो पहिले अनुभवमें आया है वही वस्तु कालान्तरमें ही प्रतिभासके उस ही अनुभवके अनुभूत अर्थमें उत्पन्न हुए ज्ञानका नाम स्मरण है। देवदत्त अनुभूत करे और यज्ञदत्त स्मरण करे यह सम्भव नहीं है। यदि ऐसा कहोगे तो हम पूछते हैं (क्षणिकवादी कह रहे हैं) कि यह बताओ कि अनुभूत पदार्थमें यह ज्ञान उत्पन्न हुआ है यह आप किस ज्ञानके द्वारा जानोगे ? अनुभूत पदार्थके सम्बन्धमें होने वाले ज्ञानको तुम स्मरण कह रहे हो तो यह स्मरण ज्ञान अनुभूत पदार्थोंके संदंभमें उत्पन्न हुआ ज्ञान है, अनुभूतमें उत्पन्न हुआ है, यह तुम कैसे जानोगे ? अनुभव से तो जान नहीं सकते, अर्थात् जो बात कल देखी थी उसका स्मरण हो रहा है आज तो कल जो बात अनुभवमें आयी थी उसके सम्बन्धमें ही आज ज्ञान चल रहा है, क्या तुम कलके हुए अनुभवके द्वारा आजके स्मरणको जानोगे ? कल जो अनुभव हुआ था

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

उस कालमें तो स्मरण नहीं है। स्मरण तो आज हो रहा है। अनुभवके सम्बन्धमें उसका ख्याल नहीं चला करता है। जब अनुभवके द्वारा स्मृति विषय न हो सकी तो स्मृति असत् रही ' अनुभवके समयमें स्मृति न थी। तो जो असत् है वह स्मृति अनुभवके द्वारकैसे विषय किया जा सकता है? तो अनुभवके द्वारा जब स्मृति विषयमें नहीं आ सकती तो अनुभवसे नहीं समझा जा सकता है यह ज्ञान जिसे कि स्मरण कहा जा रहा है अनुभूत पदार्थोंमें उत्पन्न हुए अनुभवके समयमें पदार्थकी अनुभूयमानता है अनुभूतता नहीं है। जिस समय पदार्थका अनुभव किया जा रहा है उस समय पदार्थको आप अनुभूत पदार्थ कहोगे या अनुभूयमान पदार्थ कहोगे? जिस समय जिस बातका अनुभव किया जा रहा है उस समय उसको क्या कहोगे? अनुभूयमान कहा जायगा। जिस समय जो भी भाव अनुभवमें आ रहा, मानलो भोजन किया जा रहा है तो भोजनके अनुभवके समयमें यह कहा जायगा कि भोजन किया जा रहा है। यह तो न कहा जायगा कि भोजन किया जा चुका है। जब भोजनके उपभोगका समय गुजर जायगा तब कह सकेंगे कि भोजन किया जा चुका। तो अनुभवके कालमें अनुभूतपना नहीं रहता किन्तु अनुभूयमानपना रहता है। जब अनुभवके समयमें पदार्थकी अनुभूयमानता रहती है और अनुभूतिसे स्मृति मान रहे हो तो यह कहना चाहिये कि अनुभूयमान पदार्थमें होने वाले ज्ञानको स्मरण कहते हैं. अतः अनुभवके द्वारा अनुभूत में उत्पन्न हुआ है ज्ञान यह नहीं जाना जा सकता।

स्मृतिशब्दवाच्य अनुभूतार्थविषयविज्ञानरूप द्वितीय विकल्पके स्मृतिविज्ञातताके विकल्पका शङ्काकार द्वारा निरसन —यदि कहो कि स्मृतिके द्वारा जान लिया जायगा कि अनुभूत पदार्थकी स्मृति होती है तो क्षणिकवादी उत्तर देता है कि नहीं स्मृति न तो अतीत अर्थका विषय करती है और न अतीत अनुभवका विषय करती है। जैसे कल जो खाया था उसका आज स्मरण किया जा रहा है तो आज जो स्मरणरूप ज्ञान हो रहा है यह आजका स्मरणरूप ज्ञान अतीतको विषय नहीं कर रहा। यदि अतीत अनुभवको आजका स्मरण विषय करले तो न रसोई बनानेकी जरूरत रही न खानेकी। अतीत अनुभव आज विषयभूत हो गया। मानो जो काम कल हुआ था सो ही आज हो गया। तो स्मृति अतीत अनुभवको और अतीत पदार्थको विषय नहीं करती। यदि स्मृतिके द्वारा अतीत अनुभव और अतीत पदार्थका विषय मानलोगे तो फिर जितने भी अनुभव हुए हैं सबको विषय क्यों नहीं कर लेते आजकी स्मृति, स्मरणज्ञान यदि अतीत पदार्थको विषय करले तो जितने भी अतीत अनुभव हुए हैं सभीको क्यों नहीं विषय कर लेते? इससे स्मरणज्ञान अतीत अनुभवको भी विषय नहीं करती तो यह नहीं कह सकते कि अनुभूतपदार्थमें उत्पन्न हुआ है यह ज्ञान इसने स्मरणको समझा। तो न स्मरण समझ सका न प्रत्यक्ष समझ सका कि वह मैं अनुभूत पदार्थमें उत्पन्न हुआ हूँ। इस कारण स्मृतिज्ञानका कोई स्वरूप नहीं बनता। क्षणिकवादो लोग केवल दो ज्ञान मानते हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। तीसरे ज्ञानकी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

सत्ता नही है। तीसरे जो और ज्ञान होते हैं, विकल्प होते हैं वे सब झूठ हैं, काल्पनिक हैं। अब ज्ञान अपना प्रथम काम करेगा, किसी अन्य ज्ञानके द्वारा जाना गया पदार्थ इस समयका ज्ञान जाने यह ज्ञानका काम नही है। जिस समय जो ज्ञान पदार्थ उत्पन्न हुआ है उस समय वह ज्ञान उस कालकी बातको जानेगा। तो क्षणक्षयवादमें स्मृति-ज्ञान नही है। यों शङ्काकारने स्मृतिका स्वरूप ही मिटा दिया।

स्मरणज्ञानके निराकरणका निराकरण—अब उक्त आशङ्काका समाधान करते हैं कि स्मृतिका स्वरूप मिटता नही है। इसका स्वरूप सूत्रमें ही बता दिया कि 'तत्', इस आकार को लिए हुए जो अनुभूत अर्थके सम्बन्धकी प्रतीति है उसको स्मृति कहते हैं। स्मरण ज्ञानमें अनुभूत पदार्थका विषय होता है। जो जाने, देखे, सुने उस ही पदार्थका ख्याल आनेका नाम तो स्मरण ज्ञान है और वह स्मरण ज्ञान वह के रूप में प्रकट होता है। वह था, वह है, वह होगा, तत् शब्द उसकी मुद्रा है। तब यह कहना कि अनुभूत पदार्थका स्मरण होना यह तो न स्मरणसे जाना जाता, न प्रत्यक्ष ज्ञानसे जाना जाता और इस प्रकार स्मरण ज्ञानका अभाव कहना यों ठीक नहीं है कि स्मरणमें जो कुछ जाना गया है वह आत्माके द्वारा जाना गया है, मतिज्ञानकी अपेक्षा रखने वाले आत्माके द्वारा वह अनुभूत हुआ है जो स्मरण ज्ञानमें हुआ करता है। स्मरण ज्ञानमें क्या हुआ करता कि अनुभूयमानका भी विषय बन रहा और अनुभूतका भी विषय बन रहा अर्थात् जो स्मरण ज्ञान चल रहा है वह स्मरणके रूपमें तो अनुभूयमान है और जिस पदार्थका स्मरण चल रहा है वह पदार्थ पहिले अनुभूत हो चुका था, अब इस आत्माके स्मरण ज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान दोनों आकारोंका अनुभव सम्भव है। यह तो एक क्षणिकवादमें ही शङ्का उठती है कि जब ज्ञान क्षण भरको रहता है दूसरे क्षण नही रहता तो ऐसा क्षणिक ज्ञान प्रत्यक्ष ही करता है स्मरण नही करता लेकिन ज्ञानभाव ही तो मात्र कुछ नही। ज्ञानका आधारभूत एक आत्मपदार्थ है और उसकी ज्ञानपरिणतियाँ हैं तो इस आत्मामें प्रत्यक्षका आकार भी होता है और स्मरण का आकार भी होता है। यह कहना अयुक्त है कि एक ही ज्ञानमें प्रत्यक्ष और स्मरण दोनोंका आकार कैसे सम्भव है। एक वस्तुमात्रके ज्ञानमें दो आकार नहीं हैं, पर एक आत्मामें अनेक आकार सम्भव हैं? जैसे कि तुम (क्षणक्षयवादी) ही मानते हो कि एक चित्रज्ञानमें अनेक चित्रकारकी प्रतीति होती है। क्षणक्षयवादका ही एक सिद्धान्त चित्राद्वैत है। इस सिद्धान्तका यह विषय है कि एक ही ज्ञानमें नीलाकार, पीताकार, मधुर रस आदिक अनेक अनुभवमें आते हैं तो उस ज्ञानमें आकार तो चित्रित हो गया पर ज्ञान वह निरंश अखण्ड है। तो जैसे चित्राद्वैतवादियोंने एक ज्ञानमें अनेक आकार चित्रित माने हैं ऐसे ही यहाँ भी लगा सकते कि एक आत्मामें नाना प्रकारके ज्ञान सम्भव होते हैं।

आत्मामें नाना ज्ञेयाकारोंका अविरोध—क्षणिकवादी लोग न तो आत्मा

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

को पदार्थ मानते हैं और न पुद्गलको पदार्थ मानते हैं। क्षणिक सिद्धान्तमें रूपी पदार्थ नहीं होता किन्तु रूप ही एक पदार्थ है। रूप, रस, गंध, स्पर्श ये सब जुदे-जुदे पदार्थ हैं रूप आदिक किसी एक जातिके आधारमें रहते हैं सो बात नहीं। कोई किसीका आधार नहीं हुआ करता। यदि रूईमें आग लग रही है तो यह नहीं कहा जा सकता कि रूई जल रही है। अरे रूई और आग ये दोनों जुदे-जुदे पदार्थ हैं तथा जो रूई है वह जल नहीं रही, जो जल रही वह रूई नहीं रही। ऐसा भी नहीं है कि जो अभी नीला है वह काला पीला आदिक बन जाय। पदार्थ जितने समय नील आदिक रहते हैं उतने नये-नये उत्पन्न होते रहते हैं। यह बात ज्ञानमें समझी जाती है कि जैसे ज्ञानमें नये-नये संतान उत्पन्न होते रहते हैं इसी प्रकार नील पीत आदिक पदार्थोंमें संतान करते जाइये। वहाँ लोग भ्रम करते कि जो नीला कल था सो आज है पर नीला आदिक अनेक हुआ करते हैं तो ऐसा नील अथवा कोई रस कोई गंध कोई पदार्थ ये सबके सब ज्ञानमें आते हैं अब इस समय उन पदार्थोंका विवेचन नहीं किया जा सकता। भेदो करण नहीं किया जा सकता। इस कारण वह चित्राद्वैत रूप है। तो जैसे क्षणिक वादियोंमें चित्रज्ञानके द्वारा चित्राद्वैतकी प्रतीति कर ली है इसीप्रकार एक आत्माके द्वारा अनुभूयमानका आकार व अनुभूत आकार सम्भव है और, जैसे चित्राद्वैतवादियोंने एक ही विज्ञानमें एक ही साथ एकता मान ली है। एक ज्ञानमें अनेक आकारका विरोध नहीं आता है। तो अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा और स्मृति आदिक नाना ज्ञानोंका स्व भाव पाया जा रहा है तो आत्मामें अनेक ज्ञेयाकार संभव हैं ही। यहाँ यह शंका न करना चाहिये कि जब प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा अनुभूयमान अनुभव किया जा रहा है तो स्मरण ज्ञानसे जो कुछ अनुभव बन रहे हैं वे अनुभूयमानरूपमें बन रहे हैं यह अनुभव किया जा रहा है। अनुभूतार्थके विषयकी बात कहाँ रही। यह बात यों कहा कि स्मृति विशेषणकी अपेक्षा रखकर तो आत्मामें उसका अनुभव प्रतीत हुआ करता है जैसे कि चित्राद्वैत ज्ञानमें नीलाकार पीताकार आदिक विशेषणोंकी अपेक्षा माना है इसी प्रकार आत्मामें स्मृति आदिक विशेषणोंकी अपेक्षा रखकर उस रूपमें अनुभव करता है।

स्मृति ज्ञानमें गृहीतागृहित्वदोषका अभाव—यह भी नहीं कह सकते कि अनुभूत पदार्थको विषय करने वाला होनेसे स्मृतिज्ञान अप्रमाण हो गया, क्योंकि स्मृति ज्ञानसे गृहीतग्राही हो गया। जो धारावाही ज्ञान होता है। जिस पदार्थको जाना उस ही को बारबार जाना जाय तो वह ज्ञान अप्रमाण होता है इसे धारावाही ज्ञान कहा गया है। जैसे कोई पुरुष जान गया कि यह घड़ी है तो बार-बार यदि कोई घड़ी घड़ी घड़ी कहता फिरे तो लोग उसे पागल कहेंगे तो धारावाही ज्ञान अप्रमाण माना गया। जो जाना जा चुका उसका बार बार क्यों ज्ञान किया जा रहा है। यह शंका नहीं कर सकते क्योंकि स्मरणमें पहिले किये हुए ज्ञानसे कुछ विशेषता है। जैसे कि अनुभवके समय प्रत्यक्षके समयमें पदार्थके विशद आकार रूप प्रतिभास था, स्पष्ट ज्ञान हो रहा था उस प्रकार स्मृतिमें स्पष्ट ज्ञान नहीं हो रहा स्मृति ज्ञानमें स्पष्टताकी प्रतीति नहीं है

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

लो कितना बड़ा भारी फर्क निकल आया। प्रत्यक्षमें तो स्पष्ट ज्ञान हो रहा था और स्मरणमें स्पष्ट ज्ञान नही हो रहा है। तो उसज्ञानसे स्म ण ज्ञानमें कुछ विशेषता है अतएव स्मरण ज्ञानको गृहीतग्राही ज्ञान नही कह सकते। गृहीतज्ञान वह कहलाता है कि जितने अशमें जितनेरूपमें पदार्थको जाना था उतने ही अंशमें उतने रूपसे जानना सो गृहीत ग्राही हैं। उसमें कुछ विषेषता आये तो गृहीतग्राही नही कहलाता। बारबार उसकी भावना करें तो बार-बार भावना करनेके समयमें जो स्पष्टताकी प्रतीति हो रही है वह गो भावनाज्ञान है।

क्षणिकवादमें विशद ज्ञानकी अप्रमाणता - क्षणिकवादी कह रहे हैं इस समय शंकाकारके रूपमें कि वैशद्य कुछ होता ही नही है। स्पष्टज्ञान तो अप्रमाण माना गया है। जैसे कहते हैं कि हमने खूब समझा स्पष्ट यह ज्ञान तो विकल्पात्मक ज्ञान है, असलमें तो प्रत्यक्ष ज्ञानसे उस एक समयका कुछ निर्विकल्प रूपसे प्रतिभास किया गया वह तो है प्रमाण। फिर पदार्थमें जो विकल्प उठता है जिससे कि स्पष्टता समझमें आती है वह है सब सप्रमाण। वह काल्पनिक ज्ञान है। सही ज्ञान निर्विकल्प होता है और निर्विकल्प ज्ञानमें स्पष्ट प्रतिभास नही होता किन्तु सामान्य प्रतिभास होता है। तो जब स्पष्टता कुछ चीज ही नही है तो फिर परिच्छित्ति विशेष मानना कि प्रत्यक्षके ज्ञानने जाना उससे कुछ विशेष स्मृतिने जाना यह कैसे कहा जा सकता है क्योंकि बार बार उस ही पदार्थकी भावना करते जायें, और उस समय जो स्पष्टता प्रतीत होती है वह धारणाज्ञान है। जैसे कि सुबह घूमते हुए जा रहे थे, बाहरमें एक ठूठ देखा पहिले कुछ सामान्य समझमें आया फिर उसके पास गए तो वह ठूठ और भी विशेष समझमें आया। और भी पासमें गए तो उसे देखकर पूर्ण निश्चय कर लिया कि यह ठूठ ही है। तो अविशद ज्ञानमें निर्बलता आ रही है वह तो भावना ज्ञान है न कि सचमुच ज्ञान विशद हो रहा है, और वह भावना ज्ञान तो कल्परूप है, इस कारण भ्रान्त है। जैसे स्वप्नमें देखे हुए पदार्थका जो ज्ञान होता है वह बिल्कुल स्पष्ट दिखता है वहाँ भावना ज्ञान है ना। चीज तो कुछ नही एक भावना बन गयी। तो जैसे स्वप्नके समय भावना ज्ञान स्वप्न आदिक ज्ञान स्पष्ट नजर आते हैं किन्तु है भ्रान्त, इसी प्रकार इस जगती हुई हालतमें जो कुछ यह सब साफ-साफ नजर आ रहा है यह सब है भ्रान्त। तो वह अनुभूत पदार्थको विषय करता है, ऐसा हठ किया जाय तो यह सब केवल प्रलाप है। एक प्रत्यक्ष ज्ञानके सिवाय और कुछ वास्तविक नही है हाँ एक गौण रूपसे अनुमान ज्ञान भी है तो स्मृति आदिककी सिद्धि करना यह एक एक प्रत्यक्ष और अनुमान दोनोंको मिलान करना है। उसमें एक निर्विकल्प ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान ही वास्तविक है। स्मरण ज्ञान कोई चीज नहीं है ऐसा स्मृति ज्ञानके अपलापमें क्षणिक वादी कह रहे हैं।

स्मृतिज्ञानमेंगृहीत ग्राहित्व दोषका अभाव—शंकाकारने यह कहा था कि चूँकि स्मृति ज्ञान पहिले जाने हुए पदार्थके सम्बन्धमें होता है तो जिस पदार्थको पहिले

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

ग्रहण कर लिया उस हीको स्मरण ज्ञानने जाना सो यह तो गृहीतग्राही हो गया। धारावाही ज्ञान अथवा गृहीतग्राही ज्ञान प्रमाणभूत नही माना गया है। इसके उत्तरमें बताया था कि प्रत्यक्षका विषय है वैशद्यरूपसे प्रतिभास करना और स्मरणका विषय है अविशद रूपसे प्रतिभास करना तो इसके विषयमें अन्तर है अतः स्मरणज्ञान गृहीत ग्राही नही है। तो स्मृतिज्ञान अनुभूत अर्थका विषय करता है, इतने ही मात्रसे यदि स्मृतिज्ञानको प्रमाण नहीं मानते, तब फिर अनुमानसे जाना पहिले कि यहाँ अग्नि है, तो अनुमानसे जानी हुई अग्निमें जब पास जाकर प्रत्यक्ष ज्ञान करते तो वह प्रत्यक्ष भी अप्रमाण हो बैठेगा क्योंकि तुमने यह हठ किया है कि जिस पदार्थको एकबार जान लिया उसके सम्बन्धमें यदि दुबारा ज्ञान किया जाय तो वह गृहीतग्राही होनेसे अप्रमाण होता है। किसी मनुष्यने बाहरमें धूम देखकर यह अनुमान किया कि इस पर्वतमें अग्नि होनी चाहिये धुवां होनेसे, जान लिया कि अग्नि है। अब पासमें पहुंचकर आंखों से जब देख लेते हैं अग्नि तो अब प्रत्यक्षसे जो अग्निका ज्ञान किया गया वह अप्रमाण हो जाना चाहिए क्योंकि अनुमानसे ग्रहण किए हुए पदार्थको प्रत्यक्षने जाना, गृहीत-ग्राही बन गया। जैसे फर्क अनुमानसे जानी हुई अग्निमें और प्रत्यक्षसे जानी हुई अग्निमें है इसी प्रकार प्रत्यक्षसे अनुभूत किए गये पदार्थमें और स्मरणसे जाने गए पदार्थमें अन्तर है।

असत् अतीत अर्थमें प्रवर्तमान होनेसे स्मृतिज्ञानको अप्रमाण माननेपर प्रत्यक्षज्ञानकी अप्रमाणताका प्रसङ्ग—यदि कहो कि स्मरणज्ञान तो अतीत पदार्थों में होता है अब वह अतीत पदार्थ असत् हो गया क्योंकि वह तो जब था तब था, जैसे समय गुजरा वैसे ही वह पदार्थ भी असत् हो गया तो असत् अतीत पदार्थमें स्मरणकी प्रवृत्ति होनेसे वह अप्रमाण है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि यों अतीत अर्थ को असत् मानकर प्रवृत्ति होनेसे स्मृति ज्ञानको अप्रमाण कहा जायगा तो प्रत्यक्ष भी अप्रमाण बन बैठेगा। क्षणिकवादियोंका प्रत्यक्ष एक क्षणमें होता है दूसरे क्षणमें नही रहता। और क्षणिकवादियोंका पदार्थ भी एक क्षण रहता है दूसरे क्षण नही रहता। तो जो पदार्थ पहिले क्षणमें उत्पन्न हुआ और तुरन्त नष्ट हो गया तो जब पदार्थ उत्पन्न हो चुका तभी तो प्रत्यक्ष ज्ञान जानेगा तो पदार्थ उत्पन्न हो चुका और उसको अब प्रत्यक्षने जाना तो जब प्रत्यक्षज्ञान जाननेके लिए चला तो उस समय वह पदार्थ नहीं रहा नष्ट हो गया। तो प्रत्यक्ष ज्ञानने भी तो असत् पदार्थोंको जाना। तुम्हारे सिद्धान्तमें प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थ भी तो प्रत्यक्षके कालमें असत् हो गये। पदार्थने स्वरूपलाभ किया और तुरन्त मिट गया। अब प्रत्यक्षने उसे जाना तो प्रत्यक्ष भी असत्का विषय करने वाला बन गया। तो वह भी अप्रमाण हो जायगा।

असत् अर्थमें प्रवर्तमान प्रत्यक्षको अर्थजन्यता कहकर प्रमाणसिद्ध करनेका व्यर्थ प्रयास—यदि कहो कि उस पदार्थसे यह प्रत्यक्षज्ञान उत्पन्न हुआ है

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

इस कारणसे प्रत्यक्ष प्रमाण है। जो ज्ञान जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ वह ज्ञान उस पदार्थके जाननेमें प्रमाण होता है तो यही बात स्मरणमें भी घटा लीजिये। स्मरण ज्ञान भी जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ है उस पदार्थको जान लिया, चाहे वह अब अतीत हो गया; असत् हो गया। और फिर ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होता है, यह असंगत है। ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नहीं हुआ करता, किन्तु ज्ञानका विषय पदार्थ बना करता है, तो स्मरण ज्ञान गृहीतग्राही नहीं है किन्तु ग्रहीतके सम्बन्धमें कुछ नई शैलीसे ज्ञान किया जा रहा है।

अविसंवादकत्व होनेसे स्मृतिज्ञानकी प्रमाणरूपता—यह अनुमान बिल्कुल युक्त है कि स्मरण ज्ञान प्रमाण है अविसम्वादक होनेसे। स्मरण ज्ञान करते हुये पुरुष उसमें विवाद नहीं किया करते। जिस पदार्थका स्मरण हो गया वह तो पदार्थमें कुछ भी विवाद नहीं रखता। जैसे स्वयं कोई चीज घरमें किसी जगह रख दी, अब कुछ दिन बाद उसका ख्याल कर रहा है, किसीने उस वस्तुको माँगा तो वह उसका ख्याल करने लगा। तो जिस जगह उसने वह चीज रखी थी उसी जगह जाकर उस वस्तुको वह पा लेता है, तो विवाद तो नहीं रहा स्मरणमें। अविसम्वादी ज्ञान रहा। जैसा जैसा ख्याल किया वैसा ही पदार्थ पा लिया गया तो उसमें अब विवाद क्या रहा? इस कारण स्मृति ज्ञान बराबर प्रमाणभूत है। हां किसी किसी स्मरणमें यदि विवाद आ जाय तो वह स्मृत्याभास है, स्मृति नहीं है। यों तो कोई कोई प्रत्यक्ष भी विवाद वाला होता है तो वह प्रत्यक्षाभास कहलाता है, पर कोई स्मरण अगर विसम्वाद वाला हो गया तो इसका अर्थ यह नहीं कि सब स्मरण विसम्वादी कहलाते हैं। अन्यथा यदि एक भी प्रत्यक्ष विसम्वादी हो गया, प्रत्यक्षाभास हो गया तो सब प्रत्यक्षों को भी प्रत्यक्षाभास मान लेना चाहिये।

स्मरणको विसंवादी माननेपर अनुमानकी प्रवृत्तिका अभाव—स्मृति-ज्ञानकी प्रमाणतामें बिल्कुल सीधीसी एक और भी बात है कि यदि स्मरणज्ञानको विसम्वादी मानते हो कि स्मरण ज्ञान तो अप्रमाण है, उसमें तो विसम्वाद है, तब फिर अनुमानकी वृत्ति कैसे होगी, क्योंकि अनुमान तब किया जा सकता है जब पहिले साध्य-साधनका सम्बन्ध जान लिया जाता है। साध्य-साधनका सम्बन्ध जानते समय पहिले स्मरण होता है। अनेक जगह धुवाँ देखा वहाँ अग्नि भी थी ऐसे अनेक धुवाँ और अग्निका ख्याल आता है और उस स्मरणसे फिर यह सम्बन्ध पुष्ट होता है कि जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहां वहां अग्नि होती है। तो सम्बन्धके स्मरण बिना तो अनुमान बनाया ही नहीं जा सकता है। यदि स्मरणको मान लिया अप्रमाण तो अनुमानकी प्रवृत्ति कैसे बनायी जा सकती है? सम्बन्धके स्मरण बिना अनुमानका कभी उदय ही नहीं हो सकता। अनुमान तो तब बनेगा जब साध्य-साधनकी व्याप्ति बने। व्याप्ति तब बनती है जब उसका स्मरण हो।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

स्मृतिज्ञानकी अप्रमाणताके कारणोंके पृष्टव्य तीन विकल्प और प्रथम विकल्पका निराकरण अच्छा, बताओ ! स्मरण ज्ञानको विसम्वादी कहते हो तो किस कारणसे कहते हो ? क्या उस स्मरण ज्ञानका विषयभूत पदार्थसे सम्बन्ध नहीं है कुछ भी इस कारणसे स्मरण ज्ञान अप्रमाण है या स्मरणज्ञानका विषय कल्पित है ? इस कारण अप्रमाणभूत है अथवा सम्बन्ध होनेपर भी स्मरणके द्वारा वह सम्बन्ध विषय नहीं किया जा सकता, इस कारण स्मरण अप्रमाण है । स्मरण ज्ञानका विसम्वाद सिद्ध करनेमें तुम कौनसा विकल्प ठीक समझते हो ? यदि कहो कि सम्बन्ध नहीं है इस कारण स्मरण ज्ञान अप्रमाण है तब फिर अनुमान पदार्थ कैसे बन जायगा ? जब दुनियामें कहीं सम्बन्ध ही नहीं होते एकका दूसरेके साथ और स्मरण भी नहीं बन सकते तो अनुमान तुम बना कैसे लोगे ? यदि सम्बन्धके बिना अनुमान बना लिया जाय तो जिस चाहे सम्बन्धरहित पदार्थसे जिस चाहे चीजका अनुमान कर लिया जाय, कुछ भी अटपट कह दिया जाय, चूँकि यह आदमी सामने आ रहा है इसलिए कलकत्तामें आग लग गयी । यों जैसा चाहे अटपट बोला जा सकता है । जब सम्बन्धके बिना ही अनुमान मान लिया गया तो जो चाहे अनुमान कर लिया जायगा, तो सम्बन्धका अभाव होनेसे स्मरण अप्रमाण है यह बात सही नहीं होती । सम्बन्ध बराबर है ।

स्मृतिकी अप्रमाणतामें पृष्टव्य कल्पितविषयरूप द्वितीय विकल्पका निराकरण यदि कहो कि स्मरण ज्ञानका पदार्थके साथ कल्पित सम्बन्ध है, पदार्थ तो है नहीं अब उसकी कल्पनायें करते रहें, ज्ञानका सम्बन्ध बना रहे, यों कल्पित सम्बन्धके कारण स्मरण ज्ञान अप्रमाण है, ऐसा कहनेपर तो प्रत्यक्ष और अनुमान ज्ञानमें भी प्रमाणता न रहेगी, क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण इस कारण हो रहा था कि प्रत्यक्षसे जो देखा वही पाया जाता है बादमें इससे कहते हैं कि प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है । प्रत्यक्षसे देखा कि यह सीप पड़ी है तो आगे बढ़कर जब उसे उठाया तो सीप ही मिल जाती है । तो निश्चय हुआ कि प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण है और अनुमान ज्ञानको प्रमाण इस कारण कहा था कि अनुमान है सविकल्प ज्ञान । विकल्पमें जो बात मानी गई थी वह बात पायी गई, इस कारण अनुमान प्रमाण है । जैसे किसी घरमें धुवाँ दिख रहा था तो अनुमान किया कि यहाँ आग है और आगे जाकर देखा तो वहां आग मिल गई । इससे अनुमान भी प्रमाण माना गया लेकिन सम्बन्ध तो सब कल्पित हुआ करते हैं तो यह भी कल्पित हो गया तो फिर प्रत्यक्ष और अनुमान भी प्रमाणभूत नहीं ठहरे । स्मृतिसे ग्रहण किया जाने वाला सम्बन्ध कल्पित होनेपर अनुमान भी कल्पित बन जायगा । फिर इससे तुम्हारे सिद्धान्तका समर्थन नहीं हो सकता । क्षणिकवादमें कहा है कि 'सर्वं क्षणिकं सत्त्वात्' । समस्त पदार्थ क्षणिक हैं क्योंकि सत् होनेसे । तो अनुमान बनाया और इसमें सम्बन्धका स्मरण भी तो किया । अब प्रमाण भी अप्रमाण है । सम्बन्ध भी कल्पित है तो अनुमान भी कल्पित है, फिर पदार्थ क्षणिक है

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

; यह भी नही सिद्ध हो सका ।

स्मृतिकी अप्रमाणताके कारणमें प्रष्टव्य सम्बन्धकी विवेचनाशक्यता रूप तृतीय विकल्पका निराकरण —यदि कहो कि हम तीसरी बात मानते हैं अर्थात् सम्बन्ध होनेपर भी स्मृतिके द्वारा वह विषयभूत नही किया जा सकता है । अर्थात् स्मरण सम्बन्धका विषय नहीं करता स्मरणके द्वारा जो विषय किया जाता है सामान्य उसका तो अभाव है इसलिए स्मृति अप्रमाण है । क्षणिकवादियोंके सिद्धान्तमें प्रत्यक्ष को छोड़कर अन्य ज्ञान द्वारा, अनुमान द्वारा जो जाना जाता है सो पदार्थ नहीं जाना जाता किन्तु अन्यायोह जाना जाता है । अर्थात् चौकीको निरखकर जो सविकल्प जाना गया वहाँ कि यह चौकी है यह नही जाना गया । किन्तु चौकीके अतिरिक्त हाथी शेर आदिक अन्य कुछ नही है यों जाना गया । अन्यका जो परिहार है वह तो सामान्यरूप है, अभाव सब सामान्य हैं । तो स्मरणके द्वारा जो विषय किया गया वह तो सामान्य है और सामान्यका होता है असत्त्व इस कारण स्मरणज्ञान प्रमाणभूत नही है । समाधानमें कहते हैं कि यह बात तो अनुमानमें भी कही जा सकती है, अनुमानज्ञानके द्वारा भी जो विषय किया जाता है वह सामान्य है, अन्यायोह है । सामान्यतो असत् होता है इस कारण अनुमान भी अप्रमाण हो जायगा । यदि यह कहो कि प्रत्यक्षके द्वारा जो स्वलक्षण निश्चित किया गया है उसका अनुमानमें व्यभिचार नही है । कहते हैं कि यह बात स्मृति ज्ञानमें भी समझ लो । स्मृति ज्ञानका जो लक्षण किया गया है वह स्मृति ज्ञानमें बराबर पाया जाता है ।

लिङ्गलिङ्गि सम्बन्धकी अनुमानप्रवृत्तिहेतुभूततामें तीन विकल्प और उनमेंसे तद्दर्शनरूप विकल्पका निराकरण अच्छा यह बतलावो कि अनुमानकी प्रवृत्तिमें साधन साध्यका सम्बन्ध है ना । जैसे इस पर्वतमें अग्नि है क्योंकि धुआं होनेसे तो अग्नि और धुवांका जो सम्बन्ध है वह सम्बन्ध अनुमानमें प्रवृत्ति करनेका कारण है तो वह सम्बन्ध क्या सत्तामात्र होनेसे ही अनुमानमें प्रवृत्तिका हेतु है या उसके देखनेसे अनुमानमें प्रवृत्ति होती है या साध्य साधन सम्बन्धके स्मरण करनेसे अनुमानमें प्रवृत्ति होती है, ये तीन विकल्प किए गए । यदि कहो कि साध्य साधनका सम्बन्ध है बस इतनी सत्तामात्रसे ही अनुमानमें प्रवृत्ति हो जाती है तो फिर जब कोई आदमी किसी ऐसे द्वीपसे आये नालिकेर आदिक द्वीपसे, जहां अग्नि होती ही नही है जहाँके मनुष्य लोग जो मिले सो खा लेते हैं, ऐसे किसी द्वीपसे आया हुआ मनुष्य है उसे तो अग्नि और धूमके सम्बन्धमें कुछ ज्ञान भी नही है । उसे अगर धूमकी सत्ता मालूम हो जाय है धुवाँ इतना मात्रजाननेसे अग्निका ज्ञान होजाना चाहिए, पर उसे तो अग्निका ज्ञान नही होता । जो नहीं जानता है दोनोंको, व दोनोंके सम्बन्धको यों उसे साधन देखनेसे साध्यका ज्ञान कैसे हो सकता है अथवा उसे साधनका ज्ञान ही नही और न फिर साध्य का ज्ञान हो सकता है । अविज्ञात पदार्थका भी सत्त्व सिद्ध हो जाय तो प्रत्येक एकां-

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

तमतियोंकी बात, विरोधकी बात मान लेना चाहिए। इससे साध्य साधनका सम्बन्ध केवल अस्तित्व माननेसे अनुमानकी प्रवृत्तिका कारण नहीं होता।

लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धकी अनुमान प्रवृत्तिहेतुभूततामें दिये गये शेष विकल्पोंका निराकरण यदि कहो कि साध्य साधनका सम्बन्ध देखने मात्रसे अनुमानकी प्रवृत्तिका हेतु हो जाता है तो किसीने बाल्यावस्थामें अग्नि और धुवांका सम्बन्ध जाना था, अब वृद्ध दशामें जहाँ कि बुद्धि सठिया जाती है, स्मरण भूल जाता है ऐसी हालत में धूमके देखनेसे अग्निका ज्ञान हो जाय पर अत्यन्त वृद्ध जहाँ सब बातें भूल जाती हैं, कोई बात याद ही नहीं रहती ऐसेके भी तो धुवां देखनेसे अग्निका ज्ञान नहीं होता यदि कहो कि उनको भी हो जाता जब कि स्मरण होता उस समय धूमके देखनेसे अग्निका ज्ञान वृद्धोंको हो जायगा। तो कहते हैं कि तब तो स्मरणज्ञान प्रमाण हुआ यही तो सिद्ध हुआ। बतलाओ कितनी अंधेरकी बात है कि स्मृति ज्ञान पूर्वक अनुमानको तो मानो, अनुमानकी प्रमाणता स्मृतिकी बदौलत है। और फिर स्मरणका निरावरण करें तो यह कितनी देहूदी बात है। यदि स्मरणका निराकरण किया जाता है तो अनुमानका भी निराकरण हो बैठता है। अनुमान ज्ञान बने इसमें कारण है स्मरण ज्ञान और स्मरण ज्ञान तो मानते नहीं, तब फिर अनुमान ज्ञान कैसे बन सकता है।

समारोपव्यवच्छेदक होनेसे स्मृति ज्ञानकी प्रमाणरूपता स्मरण ज्ञान प्रमाणभूत है क्योंकि स्मरण ज्ञान संशय विपर्यय अनध्यवसाय आदिक ज्ञानका निराकरण करने वाला है इस कारण अनुमानकी तरह प्रमाण है। जैसे अनुमान ज्ञान संशय विपर्यय, अनध्यवसायका निराकरण करनेसे प्रमाणभूत है तो यही बात स्मरणमें समझिये। इस प्रसंगमें यह भी नहीं कह सकते कि स्मरणका विषयभूत जो सम्बन्ध आदिक है उसमें समारोप ही नहीं हो सकता तो संशय विपर्यय अनध्यवसाय नहीं हो सकता। फिर कैसे निराकरण किया जाय। स्मरण ज्ञानमें भी किसीमें बराबर संशय, विपर्यय अनध्यवसाय हो सकता है। जैसे कोई पुरुष स्मरण करना चाहे और स्मरण में नहीं आता तो यह अनध्यवसाय हुआ, कोई भजन बोलते हुएमें बीचमें भूल गया अब वह ख्याल बनाता है और ख्यालमें नहीं आता है एक सामान्य सी झलक तो रहती है कुछ ऐसा सा, पर ख्याल में नहीं आता। कभी कभी स्मरण उल्टा भी हो जाता है। कभी स्मरणमें ही संशय हो बैठता, यह बात नहीं कह सकते कि स्मरण ज्ञानमें संशय, विपर्यय अनध्यवसाय नहीं होते तो अनुमानज्ञान बनाते समय दृष्टान्त क्यों दिया करते, जैसे अनुमान ज्ञान किया कि इस पर्वतमें अग्नि है, धुवाँ होनेसे, इतना सुनकर दूसरा सुनने वाला न माने तो वहाँ दृष्टान्त देता है अथवा स्वयं अपने ज्ञानको विशद दृढ़ करनेके लिए वह स्मरण करता है ओह ठीक है, रसोईघरमें भी तो यही बात है कि धुवाँ देखा और वहाँ अग्नि थी तो अनुमानज्ञानमें जो साधर्म्यका दृष्टान्त दिया जाता उससे सिद्ध है कि स्मरणमें कोई कमजोरी आयी, उसको दूर करनेके लिए उस स्मरण

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

को पुष्ट बनानेके लिए अनुमान ज्ञानमें दृष्टान्त दिया जाता है। अनुमान ज्ञानमें जो दृष्टान्त भी दिया जाता है वह स्मरणका कारणभूत है, नहीं तो अनुमान ज्ञान करते समय बताते समय केवल हेतु ही कह देवे, और कुछ न कहे चूँकि अनुमान ज्ञानके अवयवोंके दृष्टान्तसे भी कहना होता है इस कारण सिद्ध है कि स्मरणके विषयभूत सम्बन्धके बारेमें भी संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय सम्भव होते हैं। जब स्मरणमें समाक्षेप हो सकता है तो उसका निराकरण भी कर दिया जाता है तब स्मरण ज्ञान प्रमाण हो जाता है।

परोक्षज्ञानके भेद कारण आदि वर्णन करनेका प्रकरण—परोक्षज्ञानके भेद कहे जा रहे हैं। परोक्षज्ञान स्मृति प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ५ भेद रूप हैं उन ५ भेदोंमेंसे स्मरण ज्ञानकी चर्चा चल रही है। जब पहिले जाने हुए पदार्थ के संस्कारका उद्बोध होता है अर्थात् कोई पदार्थ इतनी दृढ़तासे पहिले जाना गया था कि उसके धारणा ज्ञान बन गया था तो अब धारणाका उद्बोध होता है। अपने आप या कोई चिन्ह निरखकर किसी भी प्रकार धारणाका उद्बोध होनेपर जो तत् रूपकी मुद्रामें ज्ञान बनता है—ओह ! वह है, वह होगा, वह था, तत्रूपसे जिसकी मुद्रा बनती है ऐसा विज्ञान स्मरण ज्ञान होता है। स्मृतिज्ञान बिना तो कुछ व्यवहार भी नहीं बन सकता। प्रत्यक्षज्ञान और स्मृति ज्ञानमें प्रकट अन्तर मालूम होता है। अथवा अनुमान आदिक ज्ञानमें और स्मृतिज्ञानमें स्पष्ट अन्तर मालूम होता है। स्मरणका क्या विषय है। अनुभूत पदार्थके विषयमें जो दूरसे एक ज्ञानोद्बोध होता है उसका नाम स्मरण ज्ञान है। आप सब अपने आपमें विचार सकते हैं कि हम कितना स्मरणज्ञान किया करते हैं। बचपनकी याद आती है तो यह याद कौनसा ज्ञान है। प्रत्यक्ष ज्ञान तो है नहीं, क्योंकि इन्द्रियसे सामने कुछ समझा जाय तो उसको कहते हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। सो तो हो नहीं रहा है। बचपनके ज्ञानका कुछ अनुमान ज्ञान भी नहीं है, तो अपनेपर बीती हुई बातोंका स्मरण चल रहा है यह आगम आदिक भी नहीं है। स्मरण ज्ञान स्वतंत्र ज्ञान है, अर्थात् आत्माकी जो ज्ञान शक्ति है आत्माके सहज ज्ञानगुण का एक इस प्रकारका परिणमन है, जिसे हम स्मरण ज्ञान कहा करते हैं ये ज्ञान कोई स्वतंत्र—स्वतंत्र पदार्थ नहीं हैं। जो एक आत्मा है उस आत्माका अनेक वातावरणोंमें, अनेक साधनोंमें जो जो ज्ञान व्यक्त होते हैं वे उस ज्ञान गुणके परिणमन कहे जा रहे हैं। सो यहाँ परोक्षज्ञान परिणमनोंके भेद बताये जा रहे हैं। आत्मा तो ज्ञान स्वभाव मात्र है, अखण्ड है अभिन्न है। वास्तवमें उसमें भेद नहीं है किन्तु तीर्थ प्रवृत्ति चलानेके लिए लोगोंको यथार्थ तत्त्वकी बात समझानेके लिए उसमें भेद किए जाते हैं और ये सब भेद गुणरूप होते हैं और परिणमन रूप होते हैं। ज्ञान गुणका जो परिणमन है वह परिणमन कितने प्रकारका होता है, किन—किन साधनोंसे होता है उन प्रकारोंका यह वर्णन किया जा रहा है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

अविशद्बोधात्मक परोक्षप्रकारभूत स्मृतिज्ञानकी प्रमाणरूपता—ज्ञानके दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्षका वर्णन द्वितीय अध्यायमें किया गया है। इस अध्यायमें परोक्षज्ञानका वर्णन किया जा रहा है। परोक्षज्ञानका लक्षण अविशदपना है जो अस्पष्टज्ञान होता है उसे परोक्षज्ञान कहते हैं। जैसे आंखोंसे देखकर जो पदार्थका स्पष्ट ज्ञान होता है इस तरहका स्पष्ट ज्ञान स्मरणमें तो नहीं हुआ करता लेकिन अपने उपयोगके सामने वह स्मरण की हुई चीज साफ विदित होती है फिर भी वह विशद ज्ञान नहीं है। तो प्रत्यक्ष ज्ञानसे भिन्न यह स्मृतिज्ञान है और स्मरणज्ञानके आधारपर स्मरण प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमानादि ज्ञान बना करते हैं। अगर स्मरणको न माना जाय तब फिर कुछ भी नहीं बन सकता। शास्त्र कैसे पढ़ा जाय? वाच्य-वाचक सम्बन्धका स्मरण तो है नहीं। कल तक जो जाना था उसका स्मरण होता नहीं है तो अज्ञानी जन कैसे उस तत्त्वको प्रमाण कर लेंगे? इस कारण स्मृतिज्ञान प्रमाण है और वह अविशद होनेसे परोक्ष ज्ञान है।

प्रत्यभिज्ञानका स्वरूप और एकत्व प्रत्यभिज्ञानकी मुद्रा—परोक्ष प्रमाणोंके भेदोंमें द्वितीय भेद प्रत्यभिज्ञान प्रमाणका है। अब उस प्रत्यभिज्ञान प्रमाण के कारण और स्वरूप बतानेके लिये सूत्र कहते हैं :—

दर्शनस्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानम्। तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि ॥ ५ ॥

प्रत्यभिज्ञानका स्वरूप और एकत्वप्रत्यभिज्ञानकी मुद्रा—दर्शन और स्मरण हैं कारण जिसके ऐसे संकलनात्मक ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। उसकी मुद्रायें यह वही है, यह उसके सदृश है, यह उससे विलक्षण है, यह इसमें इसका प्रतियोगी है इस तरहकी हुआ करती हैं। प्रत्यक्ष अर्थात् सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें वर्तमान समयमें जो अभिमुख पदार्थ है उसका बोध होता है और उस बोधके समयमें उसका अनुभवन है, इसके पश्चात् फिर ये ही चीज अनुभूत कहलाने लगती हैं, विज्ञात जान लिया। इस जाननमें अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार ज्ञान हुए। यदि किसी ज्ञानमें अवग्रह ईहा तक ही हो सके, अवाय धारणा न बने, उसके सम्बन्ध में फिर स्मरण ज्ञान न हो सकेगा, अवाय तक भी हो जाय, किसी पदार्थका निश्चय भी हो जाय, पर धारणा न बने तो भी स्मरण ज्ञान नहीं बन सकता। धारणा ज्ञान होनेके बाद उसे धारणाका उद्बोध होनेपर स्मरणज्ञान होगा। तो प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय तो वर्तमानमात्र है। इसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहो अथवा दर्शन कहो। दर्शन में तो केवल वर्तमानका बोध है और स्मरणमें अतीत पदार्थके सम्बन्धमें बोध है, किंतु प्रत्यभिज्ञानमें वर्तमान दर्शन और अतीतका स्मरण इन दोनोंमें जोड़ करने वाला विज्ञान होता है। जैसे यह वही पुरुष है जिसे गत वर्ष बम्बईमें देखा था। तो गत

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

वर्षमें उसके देखनेका तो स्मरण चला और सामने जो देखा गया उसका दर्शन हुआ प्रत्यक्ष हो रहा, अब इस प्रत्यक्षमें और उस स्मरणमें तो यह प्रत्यभिज्ञान नहीं है, पर दर्शन और स्मरणका कारण पाकर जो संकलनरूप ज्ञान है वह प्रत्यभिज्ञान है, यह वही पुरुष है, न तो इसको प्रत्यक्ष कह सकते, क्योंकि प्रत्यक्षकी मुद्रा है यह, न इसे स्मरण ज्ञान कह सकते, स्मरण ज्ञानकी मुद्रा है वह। अतः यह वही है यह विज्ञान दर्शनसे भिन्न है और स्मरणसे भिन्न है। इसे एकत्व प्रत्यभिज्ञान कहते हैं।

सादृश्य और वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानकी मुद्रा प्रत्यभिज्ञानकी दूसरी संकलन है नत् सदृश। जङ्गलमें जा रहे थे कि वहां रोझ दीखा। उस रोझको देखकर यह ज्ञान होना कि यह रोझ गायके समान है। यह ज्ञान न तो स्मरणमें गर्भित है और न दर्शनमें गर्भित है। क्योंकि दर्शनमें तो यह ज्ञान आया है कि यह है और स्मरणमें गायका स्मरण है, किन्तु न तो यहां दर्शनकी बात चल रही है न स्मरणकी बात चल रही है दर्शन और स्मरण दोनों होनेपर दर्शन और स्मरणके कारणसे जो एक संकलन ज्ञान होता है दर्शनके विषयभूत पदार्थमें और स्मरणके विषयभूत पदार्थमें जो एक सदृशताको जोड़ लगाया गया है वह है प्रत्यभिज्ञानका विषय। इसे कहते हैं सादृश्य प्रत्यभिज्ञान। प्रत्यभिज्ञानकी तीसरी मुद्रा है तद्विलक्षणं। जैसे उस रोझको देखकर यह रोझ भैंसासे विलक्षण है ऐसा ज्ञान हो तो इसमें रोझका तो दर्शन है, भैंसाका स्मरण है और दोनोंमें एक जोड़ लगाया है असमानताका। यह रोझ भैंसासे विलक्षण है तो इस वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानमें न तो केवल दर्शन विषयभूत है न केवल स्मरणकी बात है, किन्तु दर्शन और स्मरणके कारणसे हुआ जो एक विलक्षणताका जोड़रूप ज्ञान है वह विषयमें आया है।

प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानोंकी मुद्रायें—प्रत्यभिज्ञानमें चौथी मुद्रा है प्रतियोगी की जो कि अनेक मुद्रावोंमें बँधे हुए हैं, जिनके भेद अनेक किये जा सकते हैं। जैसे कहा कि यह पेन्सिल उस पेन्सिलसे छोटी है तो इसमें लघुताकी प्रतियोगिता की गई है वह मंदिर इस मंदिरसे अधिक दूर है तो इसमें भी दोनोंकी प्रतियोगिता की गई है, यह बच्चा उस बच्चेसे अधिक बुद्धिमान है, यह भी प्रत्यभिज्ञान है। यह बच्चा तो दर्शन का विषय हुआ और उस बच्चेका स्मरण हुआ और उसमें बुद्धिमत्ताकी अधिकता प्रतियोगमें लगाई गई, तो प्रतियोगी विज्ञान अनेक तरहके होते हैं। इस तरह प्रत्यभिज्ञानके विषयमें न तो केवल प्रत्यक्षकी बात है न स्मरणकी ही बात है किन्तु प्रत्यक्ष और स्मरणके कारणसे उत्पन्न हुआ जो एक दूसरी बातका ग्रहण जोड़रूप विज्ञान, चाहे एकत्वका जोड़ हो या सादृश्यका जोड़ हो या विसदृशका जोड़ हो या अन्य आपेक्षिक बातें तथा लक्षण देखकर लक्ष्यका विज्ञान आदि वे सब प्रत्यभिज्ञान कहलाते हैं।

प्रत्यभिज्ञानकी प्रत्यक्ष गर्भितता होनेसे असिद्धिकी आशङ्का—अब

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

यहाँ शङ्काकार कहता है कि प्रत्यभिज्ञान तो प्रत्यक्ष प्रमाणरूप है, यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण है खास, उसे परोक्षरूप क्यों कहा जा रहा है ? युक्तिसे भी देखो कि प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणरूप है क्योंकि प्रत्यभिज्ञान इन्द्रियके अन्वयव्यतिरेकपूर्वक होता है। देखो ना जब हुआ ज्ञान एकत्व आदिकका तो इन्द्रियके अन्वयव्यतिरेकसे हुआ। इन्द्रियके व्यापार बिना प्रत्यभिज्ञान होता नहीं और इन्द्रियके व्यापारमें प्रत्यभिज्ञान होता है, इस कारण प्रत्ययभिज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाणरूप है। जैसे कि अन्य प्रत्यक्ष होते हैं अथवा इन्द्रियका अन्वयव्यतिरेक पाया जाता है। यह भी नहीं कह सकते कि स्मरणपूर्वक होता है प्रत्ययभिज्ञान, इस कारण इसमें प्रत्यक्षपना नहीं घट सकता। शङ्काकार कह रहा है कि कोई यह भी नही कह सकता कि प्रत्यभिज्ञान चाहे एकत्वका प्रत्यभिज्ञान हो, चाहे सादृश्यका प्रत्यभिज्ञान हो ये सब स्मरणपूर्वक हुए हैं, इस कारण यह ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं कहला सकता। शङ्काकार उत्तर देता है कि इस तरह प्रत्यक्षका निषेध नही किया जा सकता, क्योंकि विद्यमान अर्थका इन्द्रियसे सम्बन्ध हुआ है। प्रत्यभिज्ञान ज्ञान करते समय चाहे वह स्मरणके पश्चात् क्यों न हुआ हो, लेकिन उसमें इन्द्रियका सम्बन्ध तो जुटा, तो इन्द्रियके सम्बन्धसे जो ज्ञान हुआ विद्यमान अर्थका वह प्रत्यक्ष ही कहलायगा, यह नियम नही बनाया जा सकता कि जो स्मरणसे पहिले इन्द्रियजन्य ज्ञान हो वह तो प्रत्यक्ष कहलाये और स्मरणके बाद जो ज्ञान हो वह प्रत्यभिज्ञान आदिक कहलाये ! ऐसा कोई वचन न तो कोई राजाके कानून में कि जो स्मरणसे पहिले ज्ञान हो तो वह प्रत्यक्षज्ञान होता और न लोकव्यवहारमें भी है। यह भी बात नहीं है कि स्मरणके बाद इन्द्रियका काम नही रहता। यह वही देवदत्त है जिसे पूर्वमें देखा था, इस विज्ञानमें स्मरणके पश्चात् भी आज एक वर्ष गुजरनेके बाद भी इंद्रियके प्रवृत्ति तो चल रही। यह मनुष्य इन्द्रियसे देखा जा रहा है इस कारण यह प्रत्यक्ष ज्ञान है। इससे यह मान लेना चाहिये कि इन्द्रिय और पदार्थ के सम्बन्धमें जो विज्ञान होता है वह सब प्रत्यक्ष है। चाहे वह स्मरणके पहिले इस तरहका इंद्रियजन्य ज्ञान हो या स्मरणके पश्चात् इन्द्रियजन्य ज्ञान हो वह सब प्रत्यक्ष कहा जायगा। और, इस प्रत्यक्ष ज्ञानमें ग्रहीतग्राहीपना भी नहीं है, क्योंकि अनेक देश अनेक कालमें अवस्थासे युक्त एक सामान्य द्रव्य गुण आदिक इन ज्ञानोंके विषयभूत हैं इसलिए यहाँ भी अपूर्व अर्थका ग्रहण हुआ है, इससे धारावाही ज्ञान भी नही कह सकते।

प्रत्यभिज्ञानको प्रत्यक्षसे विलक्षण न माननेपर आपत्तियां - अब प्रत्यभिज्ञानको प्रत्यक्षरूप माननेकी आशङ्काका उत्तर देते हैं कि उक्त आशङ्का ठीक नही है प्रत्यभिज्ञानमें इन्द्रियके अव्यतिरेककी अनुसारिता है यह बात सिद्ध नहीं होती। प्रत्यभिज्ञान इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे उत्पन्न नहीं होता। जो इन्द्रिय पदार्थके संबंधसे कहा उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहलो, पर यह तो इन्द्रिय और अर्थके सम्बन्धसे होने वाले ज्ञान से विलक्षण ज्ञान है। यदि प्रत्यभिज्ञानको प्रत्यक्ष ज्ञानसे विलक्षण ज्ञान न मानोगे तो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

किसी भी पुरुषको पहिली बार देखनेपर वहाँ भी प्रत्यभिज्ञान बन जाना चाहिये। जैसे किसी चीजको अभी तक नही देखा, कोई बड़ा आविष्कार जैसे हवाई जहाज जिसने अभी तक नहीं देखा वह हवाई जहाज देखता है तो उसे देखनेके साथ प्रत्यभिज्ञान तो नही होता। तुमने तो यह नियम बनाया कि इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे ज्ञान होने से प्रत्यभिज्ञान भी प्रत्यक्ष है तब तो जिस-जिस पदार्थका इन्द्रियके सम्बन्ध होनेपर ज्ञान हुआ वह सब प्रत्यभिज्ञान कहा जाना चाहिये। यदि यह कहो कि किसी चीजको फिर देखनेपर पहिले देखनेसे जो संस्कार बनाया था उस संस्कारके प्रबोधसे उत्पन्न हुआ जो स्मरणज्ञान उसकी सहायता लेकर ये इन्द्रियाँ जानती हैं, यह भी बात गलत यों है कि प्रत्यक्षज्ञान किसी दूसरे ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखा करता। अन्य ज्ञानोमें तो है यह बात कि दूसरे ज्ञानकी अपेक्षा रखे पर प्रत्यक्षज्ञानमें नही है यह कि किसी दूसरे की अपेक्षा रखे। जैसे स्मरण हुआ किसी चीजका तो पहिले जाने हुएकी अपेक्षा रखनी पड़ी। प्रत्यभिज्ञान हो तो इसमें दर्शन और स्मरणज्ञानकी अपेक्षा आयेगी किन्तु आँखोंसे किसी चीजको देख लिया, प्रत्यक्ष ज्ञान हो गया तो यह किस ज्ञानकी अपेक्षा रखता है? प्रत्यक्षज्ञान स्मृतिकी भी अपेक्षा नही रखा करता और यदि प्रत्यक्ष स्मृति ज्ञानकी अपेक्षा रखले तो फिर अपूर्व अर्थका साक्षात्कार फिर नही किया।

प्रत्यक्ष और स्मरणसे भिन्न ही प्रत्यभिज्ञान माननेकी अनिवार्यता — यह भी कहना अयुक्त है कि अनेक देश अनेक कालकी अवस्थासे युक्त सामान्य द्रव्य आदिक वस्तु इस प्रत्यभिज्ञानका प्रमेय है, क्यों अयुक्त है यह बात कि देश आदिकके भेदसे भी कोई अव्यक्ष होता है तो वह भी आँखोंसे सम्बद्ध अर्थका ही प्रकाश करता हुआ प्रतीत होता है। अनेक भेद पड़ जानेसे प्रत्यक्षकी विधिमें अन्तर न आ जायगा। यह यों अयुक्त है कि प्रत्यभिज्ञान इन्द्रिय और पदार्थसे सम्बद्ध बातको नहीं जानता। इसका विषय ही प्रत्यक्ष ज्ञानके विषयसे विलक्षण है। इसका विषय क्या है कि पूर्व पर्याय और उत्तरपर्याय, इन दोनोंमें जो एकता है वह प्रत्यभिज्ञानका विषय है। जैसे यह वही देवदत्त है तो "यह" कहकर देवदत्तकी जो अवस्था जानी और "वह" कहकर जो वर्षभर पहिलेके देवदत्तकी जो अवस्था जानी इस बीचके लम्बे समयमें वह एक हो रहा आया ऐसा जो पूर्वउत्तर पर्यायमें रहने वाला जो एकत्व है वह प्रत्यभिज्ञानका विषय है अथवा सादृश्य आदिकमें देखिये। यह रोझ गौके सदृश है। तो वर्तमान है रोझ और पूर्व विज्ञात है गौ, इन दोनोंके प्रसंगमें सम्बन्धमें जो सदृशता है वह सदृशता प्रत्यभिज्ञानका विषय है। प्रत्यभिज्ञानका विषय इन्द्रिय और पदार्थसे सम्बद्ध पदार्थ नही हैं। प्रत्यक्ष तो वर्तमानको ही ग्रहण करता है। और, जो यह कहे कि स्मरण करने वाले पुरुषके भी पहिले देखे हुए पदार्थके प्रतिभाससे उत्पन्न हुई जो मति है वह चक्षुसे सम्बद्ध होनेपर प्रत्यक्ष बन जाती है। यह भी कहना गलत है क्योंकि इन्द्रियजन्य ज्ञान स्मृतिके विषयके पूर्वरूपसे ग्रहण करने वाले होते हैं यह नियम नहीं है। प्रत्यक्षसे तो जब चाहे हो, तब भी अभिमुख और नियमित पदार्थका बोध

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

हुआ है तब वह प्रत्यक्ष है। प्रत्यभिज्ञानमें न तो प्रत्यक्षका विषयभूत पदार्थ आया, किन्तु दोनों ज्ञानोंसे जाने हुएमें जो एक नई बात जानी जा रही है वह सम्बंधित सादृश्य आदि विषय होता है प्रत्यभिज्ञानमें।

प्रत्यभिज्ञानके अभावमें लोकव्यवहार व प्रवृत्तिके उच्छेदका प्रसंग – देखिये! प्रत्यभिज्ञान प्रमाण अलगसे न माना जाय प्रत्यक्ष स्मृति आदिकसे भिन्न न माना जाय तो फिर लोकव्यवहार भी समाप्त हो जायगा किसीको उधार दिया रुपया पैसा, अब हम उससे तब ही ले सकते हैं जब एकत्व प्रत्यभिज्ञान बने कि यह वही पुरुष है जिसे उधार दिया था। केवल प्रत्यक्षसे लेनदेनका व्यवहार नहीं बन सकता है। तो लेनदेनका व्यवहार न बने अथवा कुछ भी व्यवहार न बने कोई चीज है जिससे रोटी बन जाती है, चाहे इस ज्ञानका बारबार उपयोग न करे लेकिन यह हर समय झलक देती रहती है। प्रत्यक्षज्ञानका विषय अलग कोई न माना जाय तो न कोई व्यवहार बन सकता न कोई कहीं आ जा सकता। जैसे मान लो आज अमुक गाँव जाना है तो एक प्रत्यभिज्ञान बना हुआ है कि उस गाँव जाना है जिस गाँवका हमने प्रोग्राम बनाया या जिस गाँवको हमने कई बार देखा। तो चलना बोलना सब कुछ प्रत्यभिज्ञान बिना नहीं बन सकता। किसी मनुष्यसे बोला ही कैसे जायगा। बोलते तभी हैं जब कोई प्रयोजन हो और प्रयोजन प्रत्यभिज्ञान बिना नहीं बन सकता। यह मेरा वही साथी है जो इस इस प्रकारसे रहता है। यह हमारा काम देगा या हमें इससे सुविधा है। कुछ भी बात प्रत्यभिज्ञानमें आये तब हमारे बोलचालका व्यवहार होता है। या केवल प्रत्यक्ष ही प्रत्यक्ष रहे तो कैसे बोला जायगा। प्रयोजन भी नहीं रह सकता। सब नये नये हैं। फिर तो एकत्व माना ही नहीं जा सकता है। तो प्रत्यभिज्ञान ज्ञान माने बिना न तो लोक व्यवहार सध सकता और न गुजारा ही हो सकता है।

प्रत्यक्षमें स्मृतिके विषयभूत पूर्वरूपकी ग्राहकताका अभाव – इन्द्रिय ज्ञान स्मृतिके विषयके पूर्वरूपको ग्रहण करने वाला नहीं है। फिर इन्द्रियजज्ञान कैसे उसका प्रतिभास करेगा। पहिले देखे हुए पदार्थका विज्ञान करना ही तो उसका प्रतिभास कहा जाता है और उसका ऐसा प्रतिभास यदि हो गया तो इन्द्रियज्ञानके परोक्ष अर्थ ही तो ग्रहण किया फिर इन्द्रियज प्रत्यक्षमें स्पष्ट प्रतिभासपना तो नहीं रहा। मानलो कि इन इन्द्रियोंने स्मृतिका सहारा लेकर जाना पर जो जाना वह इस प्रत्यक्ष ने जो भी जाना वह अस्पष्ट ही तो जाना। इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे जैसा एक देश विशद ज्ञान होता है वैसा विशद ज्ञान तो नहीं हो सका इस कारण स्मृति ज्ञान का विषय अन्य है। सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका विषय अन्य है और प्रत्यभिज्ञानका विषय अन्य है। यदि स्मृतिके विषय स्वभावरूपसे जान लिया जाय तो स्मरणका विषयभूत पूर्वस्वभाव वर्तमानरूपसे प्रतिभासित हो गया तब यह विपर्यय ज्ञान हो गया। जितने

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

भी प्रत्यभिज्ञान हो रहे हैं प्रत्यक्ष फिर तो सब विपरीतख्याति हो जयेंगे ।

वैशद्यका अभाव होनेसे प्रत्यभिज्ञानकी प्रत्यक्षरूपताकी असिद्धि – भैया ! विशद जो लक्षण बताया है प्रत्यक्षका उसकी जरा याद करो । अन्य ज्ञानोंके व्यवधान बिना जो ज्ञान होता है उसे विशद ज्ञान कहते हैं । यह स्पष्ट ज्ञानकी परिभाषा जो ज्ञान किसी अन्य ज्ञानकी अपेक्षा रखकर बने वह ज्ञान स्पष्ट नहीं हो सकता । जैसे स्मरण ज्ञान पूर्व प्रत्यक्षकी अपेक्षा करके होता है याने अन्य ज्ञानकी अपेक्षा रखता है इसलिये स्मरणमें आया हुआ पदार्थ दिखने वाले पदार्थकी तरह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता । प्रत्यभिज्ञानमें भी स्मरण और दर्शन इन ज्ञानोंकी अपेक्षा पड़ी है इसलिए प्रत्यभिज्ञानका विषय भी विषद (स्पष्ट) नहीं हो सकता । प्रत्यक्षका विषय आंखोंसे जो दीखा तुरन्त जो जाना, इस ज्ञानने अन्य किसी भी ज्ञानकी अपेक्षा नहीं की तभी यह विशद है । जो मुख्य प्रत्यक्ष होते हैं उनमें भी यही बात है । अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, ये ज्ञान भी अन्य ज्ञानोंकी अपेक्षा लेकर नहीं जाना करते, ये भी अन्य ज्ञानोंकी अपेक्षा बिना अपने आप स्पष्ट जान लेते हैं इसलिए प्रतीत्यन्तरके व्यवधानसे रहित जो प्रतिभास होता उसे विशदज्ञान कहते हैं । यह वैशद्य निर्मलता नहीं है प्रत्यभिज्ञानमें इसलिए प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं कहा जा सकता है । इस तरह यह प्रत्यभिज्ञान स्मरणसे और प्रत्यक्षसे एक अलग अनूठा ज्ञान हुआ है वह प्रत्यभिज्ञान इस प्रयोगमें जानना चाहिये । वह ही है यह, यह मेरे सदृश है, यह उससे विलक्षण है, यह उससे छोटा है यह उससे बड़ा है, यह उससे दूर है, यह उससे निकट है यह जो एक सींग वाला है सो गैंडा है आदि अनेक प्रकारोंमें दर्शन और स्मरणके बीच जो जोड़ रूप ज्ञान हैं वे सब ज्ञान प्रत्यभिज्ञान नामसे बड़ा महत्त्व रखने वाला ज्ञान है जिससे शास्त्र प्रवचन स्वाध्याय आदिक ये सब चल रहे हैं । तो प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्षज्ञान नहीं हो सकता है यह स्वतंत्र प्रमाण है ।

ज्ञानके भेदोंका सैद्धान्तिक पद्धतिके प्रकरणोंमें समन्वय – दार्शनिक पद्धतिमें ज्ञानके दो भेद किये गए प्रथम एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष । प्रत्यक्ष ज्ञानके दो भेद किये गए हैं एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष दूसरा मुख्य प्रत्यक्ष । सांव्यवहारिक प्रत्यक्षमें आभिनिबोधिक ज्ञानका जो प्रथम भेद है मति उसे माना गया है और मुख्य प्रत्यक्षमें अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान ये तीन ज्ञान लिए गए हैं । अब शेष बचे हुए स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क, अनुमान और आगम ये ५ परोक्ष माने गए हैं । इन ५ में सिद्धान्तदृष्टिसे स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमानका प्रथम भेद स्वार्थानुमान ये तो आभिनिबोधिक ज्ञानके भेद हैं अर्थात् मतिज्ञानके प्रकार हैं । परार्थानुमान तथा आगम ये दो श्रुतज्ञानके भेद हैं । इनमेंसे प्रत्यभिज्ञान प्रमाणके इस प्रकरणमें अब उदाहरण देकर प्रत्यभिज्ञानके प्रकार दिखाये जा रहे हैं । जिन उदाहरणोंसे सर्वसाधारण मनुष्योंको भी स्पष्ट बोध हो जायगा ।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

यथा स एवायं देवदत्तः ॥ ६ ॥
गोसदृशो गवयः ॥ ७ ॥
गोविलक्षणो महिषः ॥ ८ ॥
इदमस्माद्दूरम् ॥ ९ ॥
वृक्षोऽयमित्यादि ॥ १० ॥

एकत्व प्रत्यभिज्ञान और सादृश्य प्रत्यभिज्ञानके उदाहरण -जैसे कि यह वही देवदत्त है, यह है एकत्व प्रत्यभिज्ञानका उदाहरण। जो देवदत्त पहिले किसी समय जान लिया गया था वही देवदत्त अब सामने आया है। तो वर्तमान देवदत्त पर्यायको देखकर पूर्व देवदत्त पर्यायका स्मरण करके उन दोनोंके बीचमें भी यह वही का वही था, इस प्रकार एकत्वका संकलन हुआ है इस प्रत्यभिज्ञानमें। प्रत्यभिज्ञानका जो लक्षण है, दर्शन और स्मरण है कारण जिसमें ऐसे संकलनको अर्थात् योगात्मक ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, सो यहाँ वर्तमान देवदत्तके दर्शन और पूर्वपरिज्ञान देवदत्तके स्मरणके कारणसे इन दोनों पर्यायोंके बीच हुए एकत्वका परिज्ञान हुआ है। दूसरा उदाहरण है सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका। यह रोझ गायके सदृश है। कोई मनुष्य जङ्गलमेंसे गुजर रहा था, वहाँ रोझ दौड़ता हुआ दीखा तो उस रोझको देखकर इस पुरुषको गायका स्मरण हो आया। और रोझके दर्शन और गायके स्मरणके कारणसे उन दोनोंके बीच सदृशताका ज्ञान कर लिया यह रोझ गायके सदृश है। इस परिज्ञानमें दर्शन तो हुआ रोझका और स्मरण हुआ गायका। तो रोझके दर्शन और गायके स्मरणके कारणसे उनमें सदृशताका योग कर दिया गया है। यह रोझ गायके सदृश है। इस सादृश्यको न तो प्रत्यक्ष ही जान सकता था जो कुछ जाना गया सदृशताका परिचय और न ही स्मरणके द्वारा सदृशताका परिचय होता है। सदृशताका परिचय सादृश्य प्रत्यभिज्ञानसे हुआ करता है।

वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान व प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानके उदाहरण—तीसरा उदाहरण दिया है वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानका। भैंसेको देखकर गायका स्मरण करके उनमें विलक्षणताका परिज्ञान किया गया है। यह भैंसा गायसे विलक्षण है। यहां भी दर्शन तो हुआ है भैंसाका और स्मरण हुआ है गायका। भैंसेका दर्शन करके गायका स्मरण करके इन दोनों ज्ञानोंके कारणसे उत्पन्न हुआ जो इन दोनोंकी विलक्षणताका ज्ञान वह है वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान। इसमें वैलक्षण्यका योग किया गया है। इन दोनों में विलक्षणता है, विभिन्नता है। चौथा उदाहरण किया गया है प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानका। यह इससे दूर है अथवा यह उससे दूर है। कहने वाला जहाँ बैठा है उस की दृष्टिमें जो एक माध्यम स्थान बना है उससे जितनी दूर यह पदार्थ है जिसके बारे में कहते हैं उससे दूर वह द्वितीय पदार्थ है जिसका कि स्मरण किया जा रहा। यहां दर्शन और स्मरणके कारणसे जो दूरीका प्रतियोग किया गया है वह है प्रतियोगी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रत्यभिज्ञान । जैसे इस धर्मशालाके स्थानसे यह लगा हुआ मंदिर पास है और बड़ा मंदिर यहांसे दूर है तो बड़े मंदिरका स्मरण करके और छोटे मंदिरके बारेमें कहना कि यह मंदिर बड़े मंदिरसे पास है । तो यह निकटताका प्रतिभोग बताया गया है । यह न तो केवल प्रत्यक्षज्ञानका विषय है और न स्मरणका विषय है। प्रत्यक्षमें है छोटा मंदिर और स्मरणमें है बड़ा मंदिर । तो इस प्रत्यभिज्ञानमें न तो छोटा मंदिर विषय-भूत हुआ न बड़ा मंदिर विषयभूत हुआ । किन्तु उसकी दूरी विषयभूत हुयी ।

शेष प्रत्यभिज्ञानोंकी लाक्षण्यरूपता – ५ वें उदाहरणमें बचे हुए शेष समस्त प्रत्यभिज्ञान लगा लेना चाहिए । यह शाखामान वृक्ष है, एक सींग वाला यह है गण्डक हस्ती इत्यादिक लक्षण लक्ष्य वाले अनेक विज्ञान लगा लिए जाते हैं । यह लेख उस लेखसे स्पष्ट है, अच्छा है यह प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान हुआ । इसका उत्तरपत्र उसके उत्तरपत्रसे अच्छा है, यह प्रतियोग प्रत्यभिज्ञान है । इस जगहसे तो फलाना बाग ध्यानके लिए अच्छा है, ये सब प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान कहलाते हैं । प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानोंमें विषयोंके प्रकारकी सीमा नहीं है इसलिए उसकी कोई मुद्रा नहीं बन पाती है । जैसे कि एकत्व सादृश्य वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानकी एक मुद्रा है इस तरह प्रति-योगी प्रत्यभिज्ञानकी एक समान मुद्रा नही है । इसी प्रकार लक्षणोंसे लक्ष्यके परिज्ञान में, लक्षण्यप्रत्यभिज्ञानमें भी अनेक मुद्रा हैं ।

प्रत्यभिज्ञान प्रमाणकी असिद्धिकी आशङ्का – यहां क्षणिकवादी शङ्का कर रहा है कि 'स एव अयं' वह ही यह है आदिक जो प्रत्यभिज्ञान बना है वह ज्ञान नही है । स इस उल्लेख वाला ज्ञान तो स्मरण ज्ञान है और अयं शब्दसे जिसका उल्लेख किया गया है यह प्रत्यक्ष प्रमाण है । तो यह दो प्रमाणोंका समूह है प्रत्यक्ष और स्मरण । प्रत्यक्ष और स्मरण ज्ञानोंसे व्यतिरिक्त कोई ज्ञान नही है जो प्रत्यभि-ज्ञान शब्दसे कहा जाय और ऐसा भी नही है कि प्रत्यक्ष और स्मरण दोनों ज्ञानोंकी एकता हो जाय । दो ज्ञान हैं भिन्न भिन्न ज्ञान हैं, भिन्न भिन्न विषय हैं, दो ज्ञान मिल कर किसी एक ज्ञानरूप नहीं बन सकते हैं । यदि इस तरह दो ज्ञानोंसे एक ज्ञान बना दिया जाय अर्थात् प्रत्यक्ष और स्मरणसे प्रत्यभिज्ञान बना दिया जाय तो प्रत्यक्ष और अनुमानको भी एक ज्ञान बना डालो । क्षणिकवादी कह रहे हैं कि प्रत्यभिज्ञान नाम का कोई स्वतन्त्र ज्ञान नही है । यदि कहो कि स्मरणज्ञानमें और प्रत्यक्षज्ञानमें स्पष्ट और अस्पष्टका फर्क है, प्रत्यक्षमें तो स्पष्ट बोध है, स्मरणमें अस्पष्ट बोध है इस कारण भेद है और इसी प्रकार प्रत्यभिज्ञानसे तो अस्पष्ट बोध है और प्रत्यक्षसे स्पष्ट बोध है, भेद तो बना हुआ है । तो कहते हैं इसी प्रकार प्रत्यक्ष और अनुमानमें भी भेद है । प्रयोजन यह है कि प्रत्यभिज्ञान नामका कोई प्रमाण अलगसे नही है क्षणिकवादी प्रत्य-भिज्ञानको इस कारण भी प्रमाण नहीं मान सकते कि प्रत्यभिज्ञान नामका यदि कोई प्रमाण मान लिया जाय तो फिर पदार्थ नित्य सिद्ध हो जायगा । यह वही है इसमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

नित्यपना आया ना। तब तो सारा ही क्षणिकवाद उलट जायगा। क्षणिकवादके सिद्धान्तमें प्रत्यभिज्ञान नामका कोई प्रमाण नहीं है।

प्रत्यक्ष और स्मरणसे व्यतिरिक्त प्रत्यभिज्ञानकी सिद्धि—उक्त शंकाका अब उत्तर देते हैं कि प्रत्यभिज्ञान नामका प्रमाण है उसका विषय प्रत्यक्ष और स्मरण के विषयसे जुदा है। स्मरण और प्रत्यक्षज्ञानसे उत्पन्न हुआ जो पूर्व उत्तर पर्यायमें रहने वाला एक द्रव्य तद्विषयक जो संकलन ज्ञान है उसका विषय एकत्व है अर्थात् प्रत्यभिज्ञानने पूर्व और उत्तर पर्यायमें रहने वाले एकत्वका ज्ञान किया है यह एकत्व प्रत्यक्षका विषय नहीं बन सकता। क्योंकि प्रत्यक्ष तो वर्तमान मात्र पर्यायको विषय करता है। यह पूर्वोत्तर पर्यायवर्ती द्रव्य स्मरणका विषय नहीं बन सकता, क्योंकि स्मरण तो केवल अतीत पर्यायको ही ग्रहण करता है। वर्तमान और अतीत पर्यायके बीच रहने वाला जो एक आधार है,एकत्व है उसे प्रत्यभिज्ञानने विषय किया। यदि कहो कि प्रत्यक्ष और स्मरण दोनोंसे जो संस्कार उत्पन्न हुआ उस संस्कारजनित कल्पना वाले ज्ञानसे एकत्व जाना गया है। वास्तविक कोई प्रत्यभिज्ञान नहीं। कहते हैं कि संस्कारजनित ज्ञान सही, उसीका नाम तो अत्यभिज्ञान है। अब जो एकत्व जाना गया वह कल्पना रूप है या वास्तविक है यह विषय दूसरा है। सो प्रमाणसे विचारनेपर एकत्व वास्तविक सिद्ध होता है।

प्रत्यभिज्ञान प्रमाण न माननेपर अनुमान प्रमाणकी व्यर्थता—प्रत्यभिज्ञान प्रामाण्यके प्रसंगमें दूसरी बात यह है कि प्रत्यभिज्ञान यदि न माना जाय तो क्षणिकवादमें जो यह अनुमान बनाया गया है यत सत् तत् सर्वं क्षणिक। जो सत् है वह सब क्षणिक है। यही क्या ? जितने भी अनुमान बनाये जायें, सब व्यर्थ हो जायेंगे यह प्रकृत अनुमान कहना यों व्यर्थ है कि क्षणिकवादमें दो प्रमाण माने गए हैं प्रत्यक्ष और अनुमान। तो प्रत्यक्ष तो क्षणिकको विषय करता है और अनुमान एकत्वकी प्रतीतिके निराकरणको करता है पदार्थ देखा प्रत्यक्षसे जाना तो क्या जाना ? क्षणिक जाना। जानते ही तो नष्ठ हो गया। और, ऐसा ही क्यों ? पहिले नष्ट होता फिर जाना जाता। प्रत्यक्ष ज्ञान उस समय नहीं उत्पन्न होता जिस समय कोई पदार्थ है। क्योंकि पदार्थ तो तब हुआ क्षणिक होनेसे जिस क्षणमें सत् बना। वह एक क्षण ही रहकर विलीन हो गया। अब द्वितीय क्षणमें हमारे ज्ञानने उसे परखा। जब वस्तु न रही तब प्रत्यक्षने जाना जिस समय वस्तु है वह उसके स्वरूप नाशका क्षण है। उसे पहिले बन जाने दे तब तो जानेगा ज्ञान। वह बना कि मिटा ? तब जाना प्रत्यक्षने। तो प्रत्यक्ष ज्ञान तो क्षणक्षयको विषय करता है किन्तु अनुमान ज्ञान क्षणक्षयको विषय करने वाला नहीं माना गया, किन्तु इस पदार्थमें एकत्वकी कल्पना हो बैठती है जीवों को कि यह वही है, उसको निराकृत करनेके लिए अनुमान बनाया गया है। अनुमानसे क्षणिक सिद्ध नहीं किया किन्तु अक्षणिक नहीं है यह सिद्ध किया है। तो इस प्रकार

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

अनुमान एकत्वकी प्रतीतिका निराकरण करनेके लिए बनाया जाता है, पदर्थोंको क्षणिक समझनेके लिए ज्ञान नही बनता, क्योंकि पदार्थोंकी क्षणिकता तो प्रत्यक्षसे ही सिद्ध होती है ऐसा क्षणिकवादमें माना गया है। अब एकत्व तुम मानते नही तो निराकरण किसका करते ? जब कुछ एकत्व नही है तो उसका निराकरण न बनेगा और एकत्व का निराकरण ही अनुमानका प्रयोजन है। तब अनुमान प्रमाण व्यर्थ हुआ।

अनुमान प्रमाणमें समारोप व्यवच्छेद मात्रकी अप्रयोजकता—यदि कहो कि अनुमान ज्ञान संशय, विपर्यय, अनध्यवसायको दूर करनेके लिए बनाया गया है यह बात भी ठीक नही है क्योंकि यह वही है इस प्रकारके एकत्वकी प्रतीतिके बिना तो संशय विपर्यय भी सम्भव नहीं हो सकते। यदि समारोपकी सिद्धिके लिए मानते हो कि यह वही है इसलिये ज्ञान हुआ करता है। तो सिद्ध हो गया ना कि प्रत्यक्ष और स्मरणसे भिन्न कुछ एकत्व ज्ञान है। फिर यह निषेध करना कि प्रत्यभिज्ञान अर्थात् एकत्वका ज्ञान करने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष और स्मरणसे भिन्न कुछ नहीं है", यह युक्त न रहा। और यह कहना कि समारोपके निषेधके लिए अनुमान बनाया जाता है। एकत्व कुछ नहीं है। इस की प्रतीति गलत है क्योंकि अनुमान समारोपके निषेधके लिए है। एकत्वके निषेधके लिए नहीं है सो कहना भी गलत है। समारोप केवल प्रत्यक्षमें नहीं होता अथवा स्मरणमें ही नहीं होता। किन्तु सर्वत्र समारोप सम्भव है। प्रत्यभिज्ञानमें भी संशय हो बैठता है। संशय, विपर्यय, अनध्यवसायको समारोप कहते हैं। सभी ज्ञानोंमें ये संशय आदिक सम्भव है। जैसे हाथके नाखून काट दिया। अब १५ दिन बाद जो नाखून बढ़ गए, उस बढ़े हुए नाखूनको देखकर कहना कि यह वही नाखून है पर क्या है वही ? वह तो कटकर कहींका कहीं चला गया था। तो यह विपर्यय हो गया। यह कहना चाहिये था कि यह नाखून उसके सदृश है जो १५ दिन पहिले काट दिया गया था। हो तो सदृश प्रत्यभिज्ञान और कह दिया कोई एकत्व प्रत्यभिज्ञान तो विपर्यय हुआ। कोई दो लड़के एक साथ उत्पन्न हुए जिनकी सकल भी बिल्कुल एक सी है। उनका नाम भी कुछ रख दिया। मानो एक लड़केका नाम है देवेन्द्र और एक का नाम है सुरेन्द्र। अब देवेन्द्र नामक लड़केको देखकर कोई यह कहे कि यह देवेन्द्रके समान है तो यह सदोष ज्ञान है ना ? यह विपरीत हो गया और देवेन्द्रको ही देखकर कहा कि यह सुरेन्द्र ही है तो वह भी विपर्यय हो गया। तो प्रत्यभिज्ञान आदिकमें भी समारोप चला करता है, इसलिए यह कहना व्यर्थ है कि अनुमान प्रमाण समारोपके निषेधके लिए बनाया गया है। जैसे प्रत्यक्षका विषय है ऐसे ही स्मरणका भी स्वतंत्र विषय है और प्रत्यभिज्ञानका भी स्वतंत्र विषय है।

प्रत्यभिज्ञान प्रमाण न माननेपर प्रत्यक्ष और अनुमानकी भी अप्रमाणताका प्रसंग—अब एक अन्य बात यह है कि प्रत्यभिज्ञानका निषेध करनेपर फिर तुम यह कैसे कह सकते हो कि अभ्यास दशामें और अनभ्यास दशामें प्रत्यक्ष

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

और अनुमानके प्रामाण्य की सिद्धि स्वतः और परतः होती है। प्रत्यक्षमें प्रामाण्य स्वतः माना है क्षणिकवादने और अनुमानमें परतः माना है। किसी तरह माननेमें प्रत्यभिज्ञानको नहीं माननेपर प्रत्यक्ष भी अप्रमाण हो जायगा। यह अनुमान भी अप्रमाण हो जाएगा। कैसे ? जैसे २० हाथ दूर खड़े रहकर चमकती हुई सीपको सीप जाना और फिर आगे बढ़कर उस सीपको हाथमें उगकर वह कहता है कि जो हमने जाना था वही यह निकल आया। हमने सीप जाना था सो देखो यह सीप ही पायी गई। तो इस ज्ञानसे, प्रत्यक्षसे प्रमाणकी दृढ़ता आयी कि जो प्रत्यक्षसे जाना था वह बिल्कुल सही है। तो यह दृढ़ता एकत्वने करायी कि नहीं ? जो देखा था वही पाया, इसमें एकत्व हुआ ना विषय। अब एकत्व तुम मानते नही तो फिर प्रत्यक्षमें अविसम्वादता कैसे सिद्ध करोगे। जैसे दो आदमी खड़े हुए हैं जिनमें एक कह रहा कि वह सीप है, दूसरा विवाद करने लगा —अजी नहीं, तुम्हें भ्रम हो गया है। जब दूसरेको उस उस चीजके निकट ले जाकर उस सीपको उठाकर दिखाया बताया कि यह है ना सीप लो हमने जो समझा था वह सही था ना। जो देखा था वही पाया गया ना, तो एकत्वका ज्ञान कराकर प्रत्यक्षकी प्रमाणताको दृढ़ कराया गया है, इसी प्रकार अनुमानमें भी, इस कमरेमें अग्नि जल रही है—धुवां होनेसे, ये ज्ञान किया अग्निका। किसीने विवाद उठाया कि जाड़ेके दिन हैं। यह भाप उठ रही है। तुम्हें व्यर्थका भ्रम हो गया है। तो उसका हाथ पकड़कर कमरेमें ले जाकर दिखा दिया — लो यह है ना अग्नि। जिसका अनुमान किया था वही यह पायी गई। तो एकत्वका परिज्ञान करा कर उस अनुमानमें भी अविसम्वादता सिद्ध कर दी गई है। एकत्वका ज्ञान न मानोगे तो ज्ञानकी प्रमाणतामें अविसम्वादता सिद्ध नहीं कर सकते। फिर प्रमाणका यह लक्षण करना कि अविसम्वादीकी ज्ञान प्रमाण होता है यह व्यर्थ ठहरा। इससे प्रत्यभिज्ञान नामक ज्ञान वास्तविक प्रमाणभूत है। इसका विषय प्रत्यक्ष और स्मरणके विषयसे बिल्कुल भिन्न विषय है। प्रत्यक्षसे जाना, वर्तमान स्मरणसे जाना अतीत और प्रत्यभिज्ञानसे जाना वर्तमान और अतीतके बीच एकत्व या उनमें सादृश्य आदि। इससे प्रत्यभिज्ञान, नामक ज्ञान वास्तविक प्रमाणभूत रहता है।

ज्ञानमात्र आत्माके परिणमनोंकी चर्चा —आत्मा ज्ञानमात्र है। योगियोंके ध्यानके लिए आत्माकी ज्ञानमात्रताका परिचय बहुत महत्त्वशाली है। हम अपने बारे में अन्य अन्यरूपसे बोध करते रहें तो मेरा बोधरूपमें आना नही बन सकता है। और जब अपनेको ज्ञानमात्र हूँ ऐसी प्रतीति रखे रहें और ऐसा ही उपयोग बनायें तब चूँकि जानने वाला भी ज्ञान है और जिसे जाना गया है वह भी ज्ञानस्वरूप है, तो जब जानने वाला ज्ञान हुआ और ज्ञेय भी ज्ञानस्वरूप हुआ तो ज्ञान और ज्ञेयका एकत्व हो जाता है उस समय निर्विकल्पता होती है तो ऐसे ज्ञानमात्र आत्माका संसारमें किस किस प्रकारसे ज्ञान परिणमन होता है उसका यह प्रकरण चल रहा है। आत्मा ज्ञानरूप है और चूँकि इस समयमें आत्मा कर्मबद्ध है। ज्ञानावरण कर्मका सम्बन्ध है तो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

ज्ञानावरणके क्षयोपशमके अनुसार आत्माके ज्ञानका प्रकाश चल रहा है, तो वह ज्ञान-प्रकाश जो ज्ञानावरणके क्षयोपशमके होनेपर होता है उसके भेद कितने हैं ? उन भेदों का यह प्रकरण है । ज्ञान दो प्रकारके हैं —प्रत्यक्ष और परोक्ष । प्रत्यक्ष दो प्रकारके हैं एक देश प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष । सकल प्रत्यक्ष तो क्षायिक ज्ञान है । ज्ञानावरण का क्षय होनेपर सकल प्रत्यक्ष प्रकट होता है । एक देश प्रत्यक्ष क्षायोपशमिक ज्ञान है और परोक्ष प्रमाण सब क्षायोपशमिक ज्ञान हैं । यहां परोक्षके भेदोंकी बात चल रही है । परोक्ष प्रमाण, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान, इन ५ प्रकारोंमें पड़ा होता है । स्मृति उसे कहते हैं कि जिसे पहिले जाना है उसकी याद होना । तो जैसे स्मृति प्रत्यक्षसे अलग प्रमाण है इसी प्रकार प्रत्यभिज्ञान भी प्रत्यक्षसे अलग प्रमाण है । प्रत्यभिज्ञान उसे कहते हैं कि पहिले जानी हुई चीज और सामने पड़ी हुई चीज, इससे सम्बन्ध रखने वाली किसी बातका ज्ञान करना जैसे यह वही देवदत्त है जिसे कलकत्तामें देखा था । तो इस प्रत्यभिज्ञानमें न तो अतीतसे जाना न वर्तमानसे किन्तु अतीत और वर्तमान वस्तुके विषयमें जो एकत्व है उस तत्त्वका जाना । इसी प्रकार सादृश्य प्रत्यभिज्ञानमें चलें यह रोझ गायके समान है । बनमें जाते हुए पुरुषको रोझ दीखा, उस प्रसंगमें यह ज्ञान जगा कि यह रोझ तो बिल्कुल गायके समान है । तो इस प्रत्यभिज्ञानके विषयमें न तो रोझ आया और न गाय आयी, किन्तु यह रोझ गायके समान है यहां रोझ और गायसे सम्बन्धित जो सदृशता है उसका ज्ञान हुआ इसी तरह वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानमें न वर्तमानका ज्ञान है न अतीतका किन्तु अतीत और वर्तमानसे सम्बन्धित किसी तत्त्वका ज्ञान है । जैसे यह भैंस गायसे बिल्कुल विपरीत है । भैंसा बैलसे बिल्कुल अलग होता है । इसमें न भैंसाका ज्ञान कराया गया न गाय का । ज्ञान तो दोनोंके हुए, पर इस प्रत्यभिज्ञानमें इन दोनोंके सम्बन्धमें बड़ी हुई जो भिन्नता है उसका ज्ञान किया गया है, इसी प्रकार जब प्रतियोगी ज्ञान करते हैं, यह भैया उससे तीन वर्ष बड़ा है तो इसमें यह भैया, न "वह" ज्ञानमें आया न बड़े भैया का ज्ञान किया किन्तु ज्ञानको तुलनामें जो तीन वर्षका बड़ापन है वह ज्ञानमें आया । तो प्रत्यभिज्ञान वर्तमान और अतीत इनसे सम्बन्ध रखने वाले तत्त्वका ज्ञान कराता है ।

क्षणिकवादमें प्रत्यभिज्ञानकी अमान्यता प्रत्यभिज्ञानको क्षणिकवादी लोग नहीं मानते । क्षणिकवादियोंके यहां दो ज्ञान माने गए हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान । जितने भी सविकल्प ज्ञान हैं वे सब अनुमान बताये गये हैं । चौकीको देखकर समझा कि यह चौकी है तो यह ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है क्षणिकवादमें, किन्तु अनुमान ज्ञान है क्षणिकवादमें प्रत्यक्ष ज्ञानका स्वरूप इस तरह करीब-करीब समझो । जैसे जैन सिद्धान्त दर्शनका स्वरूप मानता है । निर्विकल्प दर्शन होता है । दर्शनमें सामान्य प्रतिभास कहा गया है । वस्तुके सम्बन्धमें यदि जरा भी बोध बनाया कि दर्शन नहीं रहा, क्षणिकवादमें किसी पदार्थके सम्बन्धमें अगर कुछ समझा गया तो वह प्रत्यक्ष नहीं रहा, अनुमान बन गया । प्रत्यक्षज्ञान उनको निर्विकल्प है और उसकी युक्ति देते

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

हैं कि जब जिस समयमें पदार्थ है उस समयमें तो निश्चय नहीं हो पाता है और जिस समय निश्चय हो पाता है उस समय वह पदार्थ नहीं रहता क्योंकि सर्व क्षणिक है। तो प्रत्यक्ष कहाँ होता है ? जब पदार्थ था तब निश्चय नहीं हुआ, जब निश्चय हुआ तब पदार्थ न रहा, तो निश्चयको प्रत्यक्ष नहीं कहा गया। तो जो निर्विकल्प ज्ञानको प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं और सविकल्प ज्ञानको अनुमान प्रमाण मानते हैं उनके यहां प्रत्यभिज्ञान नहीं माना गया। प्रत्यभिज्ञान मान लेनेपर क्षणिकवादका घात होता है क्योंकि यह कहा जाय कि यह वही पुरुष है जिसे कलकत्तामें देखा था तो इससे यह सिद्ध होगा कि यह क्षणिक नहीं है। यह एक वर्षसे यही बना आया है। यह क्षणिक वादको कहां मंजूर है। तो उनसे कहा जा रहा है कि जो लोग प्रत्यभिज्ञान नहीं मानते हैं वे नैरात्म्यभावनाका अभ्यास क्यों करते हैं क्योंकि उसकी तुक ही नहीं है।

क्षणिकवादमें संसार और मुक्तिकी एक झांकी क्षणिकवादी लोग यह कहते हैं कि यदि कोई ध्यान रखता है कि यह मैं वही हूँ जो पहिले था, तो वह संसार में रुलेगा। जो आत्मदर्शन करेगा वह संसारमें रुलेगा। यह क्षणिकवादके मुक्तिके उपायोंके प्रकरणमें कहा है। जो आत्मा न मानेगा वह संसारसे तिर जायगा। क्षणिक वादियोंने ऐसा क्यों माना ? तो उनका सिद्धान्त है कि जब आत्मा क्षणिक है, क्षण, क्षणमें नया नया आत्मा होता है तो तत्त्व तो यह है, और कोई माने कि मैं वही हूँ, मैं आत्मा हूँ ऐसा जो दर्शन करेगा ख्याल बनायेगा, वह तभी तो ख्याल बना सकता जब कि वह क्षणिक न रहे। कुछ समय तो रहे। और कुछ समय रहा आत्मा तो क्षणिकवाद रहा नहीं। तो जो आत्मा मानता है, आत्माका दर्शन करता है वह मैं हूँ, वही मैं हूँ, इस प्रकार जो अपने आत्माकी प्रतीति रखता है। वह संसारमें भटकता है, दुःखी होता है। और जो यह समझता है कि आत्मा क्षणिक है प्रतिक्षण आत्मा नष्ट होता रहता है, आत्मा कई समय रहता ही नहीं, इस प्रकार जो नैरात्म्यकी भावना भाये वही इस संसारसे मुक्त हो सकता है ऐसा क्षणिकवादियोंका सिद्धान्त है। तो उनसे कहा जा रहा कि नैरात्म्यकी भावनाका अभ्यास क्यों कराया जा रहा है। भावनाका अभ्यास तो तब कराना चाहिये कि जब कुछ विवाद हो, आपत्ति हो, स्वामित्व हो। जब आत्मा क्षणिक ही है और प्रत्यभिज्ञान होता ही नहीं है—मैं वही हूँ ऐसा बोध क्यों करवा रहे हो ? यदि यह कहो कि पीछे आत्म दर्शन मिट जायगा यह तो फल है। आत्मदर्शन होना संसार है और आत्मा नहीं है इस प्रकारका बोध होना यह मुक्तिका मार्ग है ऐसा क्षणिकवादमें जो कहा है उनसे कहा जा रहा है कि जब प्रत्यभिज्ञान मानो तब तो यह उपाय लोगोंको बतावो कि भाई मैं आत्मा वही हूँ, मैं सदा नहीं रहता हूं ऐसा अभ्यास करो, यह कहना तब युक्त है जब प्रत्यभिज्ञान होता हो प्रत्यभिज्ञान तुम मानते नहीं।

सोऽहंके बोधकी असिद्धिसे विघात—यदि कहो कि लोगोंको ऐसी प्रतीति

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

तो हो रही है कि मैं वह हूँ प्रत्येक मनुष्यके चित्तमें यह ध्यान तो जग रहा है कि मैं यह हूं। मैं वह हूँ ऐसा बोध तो सभीको होता है। कहते हैं कि बस यही तो हम कह रहे हैं कि उसी बोधका नाम प्रत्यभिज्ञान है। प्रत्यभिज्ञान प्रमाणका तुम निषेध नहीं कर सकते। और तुम्हारे यहाँ सोहं ज्ञान यों नहीं बन सकता कि प्रत्यभिज्ञान तुम मानते नहीं। 'सः' यह तो है स्मरण और 'अहं' यह है प्रत्यक्ष। तो दोके सिवाय तुमने तीसरी बात मानी नहीं, तो तुम्हारे यहां यह बोध सिद्ध नहीं हो सकता कि मैं वह हूँ, और जब बोध नहीं हो सकता कि मैं वही आत्मा हूं जो पहिले था तो तुम्हारे यहां आश्रव तत्त्वकी सिद्धि नहीं हो सकती। क्षणिकवादी लोग कर्मोंका आश्रव यह बकते हैं कि अपने आपके बारेमें यह ध्यान रखना कि मैं वह हूँ इससे ध्यानका आश्रव होता है। देखिये ! सुननेमें ऐसा लगता है कि जो बात मुक्तिका उपाय है वह तो कही जा रही संसारका उपाय और जो संसारका उपाय है उसे वे कह रहे मुक्तिका उपाय ! क्षणिकवादका सिद्धान्त है कि यह मानना कि यह मैं वह हूं, मैं आत्मा हूं अविनाशी हूं, इस प्रकारका ध्यान जो रखेगा उसके रागादिक आश्रव चलेंगे, संसारमें रुलेगा। तो प्रत्यभिज्ञान जो लोग नहीं मान रहे उनके यह ज्ञान कैसे बन सकता है कि मैं वह हूं जो पहिले था, आगे रहूँगा। जब प्रत्यभिज्ञान नहीं माना तो आश्रव भी नहीं बन सकता। तब मुक्ति उपायकी बात करना व्यर्थ है। न्यायशास्त्रमें ज्ञान प्रमाणकी विस्तृत रूपसे चर्चा यों की गई है कि हम वस्तुका जो कुछ भी स्वरूप निर्णय करें उसका निर्णय करनेकी हममें कला तो आये। कैसे हम उसे सच समझें उसके लिये प्रमाणों की चर्चा है। प्रत्यभिज्ञान भी एक प्रमाण है। प्रत्यभिज्ञान न हो तो संसारका व्यवहार और मुक्तिका उपाय ये सब कुछ भी नहीं बन सकते। जिसको कुछ पैसा उधार दिया है उसके सम्बन्धमें जब यह ज्ञान होगा कि यह वही पुरुष है जिसे उधार दिया था तभी तो आप मानेंगे। उधार लेने वाला जब यह समझेगा कि यह वही सेठ है जिससे उधार लिया था, तभी तो बात बनेगी। तो प्रत्यभिज्ञान बिना संसारका व्यवहार नहीं बन सकता और न मुक्तिका उपाय बन सकता। हम वस्तुस्वरूपके ज्ञानका अभ्यास करते हैं, पढ़ते हैं रोज गुरुसे तो प्रत्यभिज्ञान नहीं है तो कहांके गुरु और कहां के शिष्य। तो प्रत्यभिज्ञान बिना यहांकी सब बातें कुछ भी नहीं चल सकती हैं। इससे प्रत्यभिज्ञान मानना ही होगा।

पर्यायोंमें एकत्व सम्भवके सम्बन्धमें क्षणिकवादियोंकी आशङ्का - अब यहां क्षणिकवादी शङ्काके रूपमें कह रहे हैं कि प्रत्यभिज्ञान उसे कहते हैं कि पूर्व पर्याय और उत्तर पर्यायमें जो एकत्वका ग्रहण है उसका नाम प्रत्यभिज्ञान है लेकिन पूर्व पर्याय और उत्तर पर्यायमें एकत्व सम्भव ही नहीं है। पूर्व पर्याय स्वतंत्र है उत्तर पर्याय स्वतंत्र है। पूर्व और उत्तर पर्यायमें जब एकत्व ही नहीं है तो प्रत्यभिज्ञान कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि प्रत्यक्षसे देखो तो सब क्षणिक हैं इस प्रकारका ज्ञान होता है। प्रत्येक पदार्थ एक समय रहता है दूसरे समय नहीं रहता है, यह तो जान रहा है प्रत्यक्ष

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

ज्ञान क्योंकि प्रत्यक्षज्ञानका स्वरूप है कि अपने कालमें नियत अर्थको जाने। पदार्थका काल है एक समयमात्र। तो प्रत्यक्षने तो केवल विनश्वर चीज जानी, नष्ट होने वाली वस्तुको जाना, तो उसमें प्रत्यभिज्ञान कैसे सम्भव है? उत्तर देते हैं कि सर्वथा क्षणिक पदार्थ हुआ ही नहीं करता। पदार्थ है और वह अनन्तात्मक है। जो है वह कभी नष्ट नहीं होता। उसकी पर्यायें बदलती रहती हैं। मैं आत्मा हूं तो अनादिसे हूं, अनन्त काल तक रहने वाला हूँ, इसकी क्षण क्षणमें पर्यायें बदलती रहती हैं. मैं आत्मा सदा काल रहता हूं ऐसा माननेसे संसार हो जायगा। यों संदेह न रखिये क्षणिकवादी लोगो! किन्तु जो क्षणिक पर्यायें हैं उन पर्यायोंमें यह मैं हूं इस प्रकारकी बुद्धि होने से संसार होता है। पर्यायोंमें द्रव्यकी बुद्धि होनेसे संसार है। कहीं द्रव्यको अविनाशी त्रैकालिक माननेसे संसार नहीं है। मूल बात तो यह है कि पर्यायको द्रव्य माननेसे संसार परिभ्रमण होता है। इसका इलाज क्षणिकवादियोंने ऐसा सोचा कि पर्यायमात्र को द्रव्य मानलें, इसके आगे कोई द्रव्य है ही नहीं तो अपने आप यह बात बन जायगी कि हम किसी भी पर्यायको किसी भी स्थितिमें यह मैं हूं ऐसा न सोच सकेंगे, लेकिन यस्तुस्वरूपके विरुद्ध उपाय निकालनेसे काम नहीं बनता। पदार्थ जैसा है वैसा ही निर्णय करके उसमें फिर मुक्तिका उपाय ढूंढना चाहिये। मैं आत्मा सदाकाल हूं और स्वभावमात्र हूं, सहज शक्तिमात्र हूं।

ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको माननेपर अहङ्कार ममकार व कर्तृत्वबुद्धिके अभावकी सुगमतया सिद्धि—अपने आपको केवल ज्ञानमात्र हूं, ऐसा भाव बना लिया तो केवल ज्ञानमात्र हूं ऐसी दृढतम अवधारणा होनेपर वे सब बातें अपने आप आ जाती हैं जो कि हमें अपनी उन्नतिके लिए चाहियें। जैसे मेरा धन नहीं, मेरा घर नहीं, मेरा परिवार नहीं, यह बात ज्ञानमात्र आत्माको स्वीकार करनेपर आ जाती है। यह ज्ञानमात्र आत्मा जो आकाशवत् निर्लेप भावमात्र, जिसको न कोई पकड़ सकता, जिसे न कोई छेद सकता, न कोई भेद सकता, इस प्रकारका अपूर्व ज्ञानमात्र आत्मा, उसका यहाँपर कौन है? कहाँ परिवार है इस ज्ञानमात्र भावका? जिस सकलमें हम परिजनोंको निरखते हैं, जिन सूरतोंको देखकर हम यह निर्णय करते हैं कि यह मेरी माता है पिता है, भाई है आदि क्या वे इस आत्मासे कुछ सम्बन्ध रखते हैं? यह मैं अत्यन्त स्वतन्त्र ज्ञानमात्र हूं ऐसा निर्णय होनेपर यह बात स्वतः सहज बन जाती है कि परद्रव्योंमें ममकार नहीं रहता। उपदेश किया जाता है कि परद्रव्योंमें कर्तृत्व बुद्धि मत करो और इसके लिये बहुत-बहुत चिन्तन करना पड़ता है, लेकिन मैं ज्ञानमात्र हूं, इस प्रकारका निर्णय हो जानेपर परद्रव्योंके प्रति कर्तृत्वका भाव सुगमतया हो जाता है। यह मैं ज्ञानमात्र केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हूं यह परको छू सकता तो है नहीं, परको ग्रहण कर नहीं सकता, परको करेगा क्या? यह बात बिल्कुल सत्य है कि कोई भी जीव किसी भी परपदार्थको परिणतिको नहीं करता, किन्तु मात्र अपनेमें अपने भाव बनाता है। अपनेमें अपने भाव बनानेके अतिरिक्त हम आप आत्मा और कुछ भी काम

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

नही कर रहे। तो ऐसा भावमात्र ज्ञानमात्र मैं आत्मा कहाँ किसी परका कर्ता हूँ ? उपदेश दिया जाता है कि तुम शरीरको आत्मा मत मानो कि यह मैं हूं, पर्यायको मत मानो कि यह मैं हूं, यह बात उसके सुगमतया बन जाती है जो अपने आपको ज्ञानमात्र प्रतीतिमें लिए हुए है। मैं ज्ञानमात्र हूं इस ज्ञानमात्र आत्माके देह कहाँ है ? इसके आवरण कहाँ है ? यह तो आकाशवत् अमूर्त तत्त्व है, एक चैतन्यकी विशेषता जरूर है। ज्ञानमात्र अपनेको स्वीकार कर लेनेपर परद्रव्योंमें अहङ्कार सगाधु हो जाता है।

ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी उपलब्धिसे अभोक्तृत्वभाव व ध्यानकी सुगम तया सिद्धि— उपदेश दिया जाता है कि तुम पर द्रव्योंको भोगनेका विकल्प मत करो। मैं किसी भी पर द्रव्यको भोगता नही हूँ मैं किसी भी परका भोक्ता नहीं हूँ, यह बात उसके सुगमतया बनती है जो अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव कर रहा है। मैं ज्ञानमात्र हूं। इस ज्ञानमात्र मेरेका भोग ही कहाँ है बाहर ? जो विकल्प करता हूं. बस वही भोग है। अपनेमें भावोंको भोग रहा हूँ। ज्ञानमात्र आत्माकी सुधि होने पर मैं ज्ञानमात्र आत्माको ही करता हूँ ऐसी खबर होनेपर नहीं भोगता हूं यह निर्णय कर ही लेते हैं यह बात लुगमतया बन जाती है। जब मैं अपनेको भोगता हूं तब मैं किसी पर पदार्थकी आशक्ति क्यों करूं ? जब मैं भावमात्र हूँ, भावोंको ही करता हूं, भावोंको ही भोगता हूँ, भावोंके सिवाय अन्य कुछ मेरा है नही, तब बाहर मुझे कुछ ढूँढनेकी क्या जरूरत रही। तब तो अपने आपमें ही खोजना चाहिये। हम आत्म-साधनाके आदेश पढ़ते हैं, उपदेश दिया जाता है कि ध्यान करो, यहाँ वहाँ चित्त न लगावो व्यर्थके विकल्प मत करो। यह बात उसके सुगमतया बन जाती है जो इस बातपर डटा है कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। यथार्थता भी यही है, और इसी यथार्थतापर डट जाय कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, निर्णय करें, अन्य बाहरी बातोंसे कुछ प्रयोजन न रखे तो उसके यह ध्यान सुगमतया सिद्ध हो जाता है। जिस ध्यानमें विकल्प नही जगता। केवल शुद्ध सहज ज्ञायकस्वरूप आत्मतत्त्व जिसके अनुभवमें चलता है, स्वानुभव, ज्ञानानुभव वह बात उस जीवमें स्वत: प्रकट हो जाती है जो अपनेको ज्ञानमात्र प्रतीति में लिए हुए है और ज्ञानमात्र हूँ ऐसा ही निरन्तर अनुभव करनेका लक्ष्य बनाये। ऐसा सम्यग्ज्ञान ऐसी ज्ञान परिणति हम आपके बनी रहे, उसमें बाधायें न आ सकें, ऐसी बात यदि कुछ दिन भी बनी रहे तो ऐसा अलौकिक अनुभव होगा जिस अनुभवके प्रसादसे सदाके लिये जन्ममरणकी परम्परा कट जायगी। जीव मुक्त हो जायगा। हमें ऐसा उपाय बना लेना चाहिये। यह तो है एक सारभूत व्यवसाय और अन्य अन्य प्रकारके कार्योंमें लगे रहना ये हैं सब व्यर्थके कार्य। इस ही ज्ञानमात्र आत्माके परि-णमनोंको न्यायशास्त्रमें कि किस किस रूपमें यह बात प्रकट होती है यह बताया जायगा।

अविसंवादकता होनेसे प्रत्यभिज्ञानकी प्रमाणरूपता—प्रत्यभिज्ञानको

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रमाण न माननेमें क्षणिकवादियोंकी यह युक्ति थी कि चूंकि पदार्थ विनश्वर हैं, एक समय ही ठहरने वाले हैं तब प्रत्यक्षका विषय उस पदार्थके रहनेके समयमें ही नियत है फिर वह एकत्वको कैसे जान सके ? यह पदार्थ वही है यह ज्ञान तो तब बन सकता था जब कि पदार्थ विनश्वर न होता उसके उत्तरमें कहा जा रहा है कि प्रत्यक्षसे ही लोगोंको अविनाशी रूपमें पदार्थोंकी प्रतीति हो रही है। और ऐसा अनुभव हो रहा है। जीवनमें कितने समागम पहिले मिले और वे ही जब आज मिलते हैं तो प्रत्यभिज्ञान होता है। यह वही पुरुष तो है। प्रत्यभिज्ञानमें फिर क्या विवाद रहा ? इसलिए प्रत्यभिज्ञान नियमसे प्रमाणरूप है क्योंकि जो विषय है प्रत्यभिज्ञानका, प्रत्यभिज्ञान उसे ग्रहण करता है उसमें कोई विसम्वाद नहीं है। जैसे प्रत्यक्षसे अग्नि देखते हैं तो प्रत्यक्ष क्यों प्रमाण हैं ? इसलिए कि प्रत्यक्षका जो जाना उसमें विवाद नहीं उठता। इसी तरह प्रत्यभिज्ञानसे जो जाना उसमें भी तो विवाद नहीं आता। यह उसका ही तो लड़का है। बहुत दिनोंसे देखते आये —यह वही लड़का है ऐसा जो भीतर बोध होता है इसमें भी विवाद नहीं है।

एक ज्ञानमें अनेक आकार आ सकनेके सम्बन्धमें चर्चा—क्षणिकवादियोंका यह कहना भी अयुक्त है कि प्रत्यभिज्ञानके विषयमें दो आकार आते हैं। एक तो "यह" और दूसरा "वही" है। दो आकार एक ज्ञानमें समा नहीं सकते। एक ज्ञानमें एक ही आकार आ सकता है। इस कारण प्रत्यभिज्ञान प्रमाण नहीं बन सकता, यह कहना उनका यों अयुक्त है कि ऐसे तो उनका प्रत्यक्ष भी नहीं बन सकता। क्योंकि प्रत्यक्षमें भी अनेक आकार आ गये। रंग आ रहा, पदार्थका आकार आ रहा उसकी लम्बाई चौड़ाई आ रही, और जिस पदार्थको खा रहे हों उसका रस भी, आ रहा, गंध भी ज्ञानमें आ रहा। तो यों नीलादिक अनेक आकारोंसे आक्रान्त एक चित्र ज्ञानमें भी प्रमाणत्व नहीं बन सकता जैसा कि क्षणिकवादियोंने माना। प्रत्यक्षमें जब अनेक आकार आ जाते हैं तो प्रत्यभिज्ञान प्रमाणमें यदि दो आकार आ जायें—एक प्रत्यक्ष वाला एक स्मरण वाला, तो इनमें कौनसा विरोध है ?

प्रत्यक्ष और स्मृतिके आकारोंके परस्पर प्रवेशरूप व अप्रवेशरूपसे ज्ञानमें आनेकी चर्चा—अब शंकाकार कहता है कि प्रत्यभिज्ञानकी मुद्रा यह है सः एव अयं, यह वही है तो इसमें दो आकार आये —स्मरण वाला "यह" और प्रत्यक्ष वाला "वह"। तो ये दो आकार परस्पर एक दूसरेमें प्रवेश करने रूपसे प्रतिभास रहे हैं या ये दोनों आकार एक दूसरेमें प्रवेश नहीं कर रहे इस रूपमें प्रतिभासमान हैं। प्रत्यभिज्ञानमें जो दो आकार माने हैं, क्या वे दो आकार एक दूसरेमें प्रवेश करके आते हैं या बिना प्रवेश किये हुये आते हैं। यदि कहो कि वे दो आकार एक दूसरेमें प्रवेश कर जाते हैं तो जब प्रवेश करेंगे तो एक कोई आकार ज्ञानमें आया। दो कैसे ज्ञानमें जायेंगे ? "यह वही है" इसमें हैं दो आकार, प्रत्यक्ष वाला "यह" और स्मरण वाला

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

"यही" तो ये दो आकार यदि एक दूसरेमें समा गये फिर ज्ञानमें आया तो ज्ञानमें एक आकार कौन रहेगा ? यदि कहो कि वे दोनों आकार एक दूसरेमें समा नहीं सकते तो इसका अर्थ यह है कि परस्पर भिन्न दो आकारोंका प्रतिभास होना चाहिये । पर प्रत्यभिज्ञानमें दो आकारोंका प्रतिभास कहाँ है । वह तो एकत्वका ज्ञान रहा है । प्रत्यक्षमें "यह जानता है" यह है स्मरणमें यह जानता कि "वह है" किन्तु यह वही है प्रत्यभिज्ञानका विषय प्रत्यभिज्ञानका विषय प्रत्यक्षके और स्मरणके विषयसे जुदा है । जैनियोंसे कहा जा रहा है कि यदि तुम यह मानोगे कि दो प्रतिभासोंका एक ज्ञान आधार है प्रत्यभिज्ञानमें प्रतिभास तो दो हो रहे हैं किन्तु उनका आधार एक ज्ञान है तो शंकाकार उत्तर देता है कि यह बात ठीक न बनेगी, क्योंकि दो प्रतिभासोंका एक आधार नहीं बन सकता । भला "यह" है प्रत्यक्ष और "वही" यह है परोक्ष तो परोक्ष और अपरोक्षरूप आकार एक ज्ञानमें कैसे आ जायगा ? यदि परोक्ष और अपरोक्ष प्रतिभास भी एक ज्ञानमें आ सकते हैं माना जाय तो जितने दुनिया भरमें ज्ञान हैं वे सब एक ज्ञानमें आ जायें यह प्रसंग आ पड़ेगा । इससे प्रत्यभिज्ञानकी कोई व्यवस्था नही बन सकती । शंकाकारके इस कथनका अब उत्तर सुनिये—कि वहाँ जो दो आकार हैं परोक्ष और अपरोक्ष वे कथंचित् एक दूसरेमें प्रवेश करनेके रूपसे ज्ञान आया करते हैं । प्रवेश तो उन दोनों आकारोंका इस दृष्टिसे है कि प्रत्यभिज्ञानमें प्रत्यक्ष और परोक्षसे सम्बन्धित एकत्व विषयमें आया । और यह विषय तब बन पाता है जब स्मरण और प्रत्यक्ष दोनों एक जगह आयें । इसलिये कथंचित् परस्पर प्रवेश है और सर्वथा प्रवेश यों नहीं है कि प्रत्यक्षका विषय है विशद और परोक्षका विषय है अविशद । प्रत्यभिज्ञान भी परोक्ष ज्ञान है । तो प्रत्यक्ष और परोक्षमें पाया जाने वाला जो एकत्व है वह परोक्षज्ञान है । वहां दोनों आकार सर्वथा प्रविष्ट नहीं होते ।

एक ज्ञानको बहुविधज्ञान माने बिना चित्राद्वैतकी भी असिद्धि— अब शंकाकार जरा यह बताये कि यदि दो आकार एक आत्मामें नही आ सकते, एक ज्ञान में नही आ सकते तो तुम्हारा चित्रज्ञान कैसे बनेगा ? क्षणिकवादमें चित्राद्वैत माना गया है व विज्ञानाद्वैत माना गया है । विज्ञानाद्वैतमें तो सिर्फ एक ज्ञान ज्ञान मात्र है किन्तु जिन बौद्धोंका चित्राद्वैत सिद्धान्त है वे मानते हैं कि एक ज्ञानमें चित्र विचित्र नीला पीला आदिक अनेक पदार्थ एक साथ आते हैं और वह ज्ञान चित्रित हो जाता है । तो चित्रित ज्ञानमें अनेक आकार एक साथ आयें तभी तो चित्रज्ञान बन सकता है । तुम यहां प्रत्यभिज्ञानमें दो आकार भी नही मानना चाहते और अपने चित्रज्ञानमें दुनिया भरके पदार्थोंका आकार मान लेते हो । यदि अनेक आकार एक आत्मामें न प्रतिभाससे जायें तो चित्रज्ञान कैसे बन सकता है ? क्योंकि नीला पीला आदिक जितने प्रतिभास हैं परस्पर यदि इनका प्रवेश है तो ये सब एकरूप बन जायेंगे । फिर चित्रता क्या रही ? जैसे कि दो विकल्प किये थे प्रत्यभिज्ञानमें दोनों आकार एक दूसरेमें प्रवेश करते हैं या नही ? तो हम भी पूछते हैं कि तुम्हारे उस चित्र प्रत्यक्षज्ञानमें नीला पीला

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

आदिक आकार परस्परमें प्रवेश करते हैं या नही ? यदि परस्परमें प्रवेश करें तो चित्रता ही क्या रही ? यदि कहो कि वे परस्पर प्रवेश नहीं करते तो चित्रता क्या रही ? ये भिन्न-भिन्न सतान नीला पीला आदिक प्रतिभास, ये जुदे जुदे प्रतिभासनेमें आ गये । यदि यह कहो कि भले ही ये नीले पीले आदिक अनेक पदार्थ हैं किन्तु एक ज्ञानमें तो आ जाते हैं सब ? कहते हैं कि यही बात प्रत्यभिज्ञानमें कह लीजिए । प्रत्यभिज्ञानमें भी ये दोनों आकार एक साथ आ गये ।

प्रत्यभिज्ञानकी बहूपयोगिता हम आप प्रत्यभिज्ञान से ज्यादह काम लेते रहते हैं पर इस ओर ख्याल नही करते । हमारा आपका परस्परका सारा व्यवहार प्रत्यभिज्ञानपर आधारित है । आपको देखते ही आपसे बड़े प्रेमसे हम मिले तो प्रत्यभिज्ञान हुआ तभी तो हम मिले । यह मेरा वही परिचित मित्र है । सामायिक, पूजन आदि करना, भोजन बनाना आदिक सभी बातें प्रत्यभिज्ञानपर आधारित हैं । प्रत्यभिज्ञान बिना हम थोड़ा चल भी नही सकते । यहांसे उठकर अपने-अपने स्थानपर लोग अभी जायेंगे तो प्रत्यभिज्ञान न हो तो कैसे लोग जायेंगे ? कोई प्रश्न करता है अध्ययन करता है, पढ़ता है, प्रत्यभिज्ञान न हो तो ये कुछ भी सम्भव नही हैं । स्मृति जिसके उपयोगमें आती है उससे कम प्रत्यभिज्ञान उपयोगमें आता हो सो बात नही है । रात दिन हमारे कार्योंमें, व्यवहारमें प्रत्यभिज्ञान चलता रहता है । बिना पढ़े लिखे लोगों की बात तो दूर रहो, अनेक पढ़े लिखे लोग भी प्रत्यभिज्ञानकी बात ही नही समझते कि यह हमारे कितना निरन्तर काममें आता है । स्वाध्याय कर रहे हैं, पढ़ रहे हैं, उसका अर्थ समझ रहे हैं, यह बात प्रत्यभिज्ञानके बिना नही बन सकती । जैसा अब पढ़ा वैसा ही इससे पहिले भी पढ़ा था । इसका यही अर्थ हम पहिले भी समझते थे । तो पहलेकी समझ और वर्तमानका अध्ययन इन दोनोंका सम्बन्ध है तब ना स्वाध्याय बना । तो प्रत्यभिज्ञान बन गया । स्मृतिमें तो केवल स्मरण ही स्मरण रहा 'वह' । और प्रत्यभिज्ञानमें प्रत्यक्ष और स्मृतिका जोड़ रहता है 'यह वही है' तो प्रत्यभिज्ञान परोक्ष प्रमाण है और हम आपके जीवनमें बहुत काममें आता है, उपयोगमें रहता है । प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण कैसे कह दिया जाय ?

प्रत्यभिज्ञानकी झांकी— अब शंकाकार कह रहा है कि प्रत्यभिज्ञानमें दो प्रत्यक्ष ही तो आये — एक पहिलेका प्रत्यक्ष और एक वर्तमानका प्रत्यक्ष । तो पहिलेका जो दर्शन है वह भी इस ध्रुव एकत्वमें प्रवृत्ति नहीं करता और वर्तमानका जो प्रत्यक्ष है वह भी ध्रुव एकत्वमें प्रवृत्ति नही करता । दोनोंका अपना न्यारा न्यारा विषय है । तो फिर किसी स्मरणकी सहायता लेकर भी एकत्व प्रत्यभिज्ञानको यह प्रत्यक्ष कैसे पैदा कर सकता है । जैसे किसी सुगंधित वस्तुका ख्याल करनेसे सुगंधित वस्तुके स्मरणकी सहायता लेकर क्या ये आँखें गंधका भी ज्ञान कर लेंगी ? तो जैसे सुगंधित वस्तुके स्मरणकी सहायता लेकर भी आँखें गंधका ज्ञान नही कर सकतीं इसी प्रकारसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

स्मरणकी सहायता लेकर भी प्रत्यक्ष प्रत्यभिज्ञानको उत्पन्न नहीं कर सकता उक्त शंका का अब उत्तर देते हैं कि यह भी तुम्हारा कथनमात्र है। सब लोग बुद्धिसे स्पष्ट समझ रहे हैं उस पदार्थके एकत्वको। किसी भी पुरुषको दूरसे आता हुआ देखकर आप तुरन्त ख्याल करते हैं कि यह फला व्यक्ति है, इसमें प्रत्यभिज्ञान बराबर गुप्त रूपमें काम कर रहा, लेकिन लोग सीधे यह समझते हैं कि हमने प्रत्यक्षज्ञानसे काम लिया। प्रत्यभिज्ञान बिना आप परिचय नही कर सकते कि यह वही पुरुष है। किसी भी रिस्तेदारको देखकर जो आप यह ज्ञान कर लेते हैं कि यह फूफा जी आये तो इस ज्ञानमें प्रत्यभिज्ञानने झट काम कर दिया कि यह वही है। स्मरण भी आ गया, प्रत्यक्ष भी हो गया। इतनी फुर्तीसे प्रत्यभिज्ञानने काम किया कि हम उसके इस उपयोगको समझते नहीं और कहते हैं कि हमने प्रत्यक्षसे समझा। तो जिसके बिना हमारा आहार, विहार, परिचय, व्यापार, लेन-देन कुछ भी नही बन सकता, उस प्रत्यभिज्ञान को हम अप्रमाण कैसे कहदें ?

ज्ञानस्वरूप आत्माके विकासोंमें एक प्रत्यभिज्ञानरूप विकास –देखिये, मूलमें तो आत्मा ज्ञानस्वरूप है। जिस किसी आध्यात्मिक पुरुषको सब प्रकारके निर्णय के पश्चात् केवल ज्ञानसामान्यात्मक आत्मतत्त्वमें समा जानेकी धुनि लगी है उसको तो इन विकल्पोंकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन यहां जिन्हें इन सब आत्माके परिणमनों का परिचय नही है उसको इस आत्मतत्त्वमें प्रवेश करनेमें सुविधा नहीं मिल सकती। हम ज्ञानस्वरूप आत्मा किस किस स्थितिमें किस किस रूपसे परिणमते हैं, यह अपनी ही तो कथा की जा रही है। हम अपनी बात समझना, कठिन मानें और इस ओरसे प्रमाद करके स्वच्छन्द होकर पर तत्त्वोंकी ओर ही उपयोगको दौड़ाते रहें तो यह मोह का ही तो प्रभाव है जो हम अपनी बात नहीं समझ सकें। यह मैं ज्ञानस्वरूप किस रूपसे ज्ञान करता रहता हूं, यह ही कथन यहाँ चल रहा है। चूंकि यह कर्मोंसे बद्ध है, इन्द्रियोंसे जकड़ा हुआ है ऐसी स्थितिमें इन्द्रिय और मनकी सहायता पाकर यह ज्ञान विकासी हो रहा है। यद्यपि ज्ञान ज्ञानसे ही विकसित हो रहा है, इन जड़ इन्द्रियोंसे विकसित नहीं हो रहा, किन्तु वर्तमान स्थितिमें ऐसा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कि इन्द्रिय और मन तो निमित्त हैं और स्मृति ज्ञान आदिक ज्ञान विकास ये नैमित्तिक परिणमन हैं। तो इस स्थितिमें हमारे ज्ञान अधूरे रह जाते हैं। उन अधूरे ज्ञानोंमें जो केवल स्मरणरूप ज्ञान है उसे तो स्मृति कहा है और जो प्रत्यक्ष और स्मरणके जोड़रूप ज्ञान है उसे प्रत्यभिज्ञान कहा है। यह उसके समान है, यह उससे बिल्कुल निराला है, यह उससे बड़ा है, यह उससे दूर है ये सब बातें प्रत्यभिज्ञानसे सम्बन्धित हैं और ऐसे ये ज्ञान जीवोंके रोज रोज हुआ करते हैं। तो जो बात प्रमाणों से विज्ञात है उसमें क्या सन्देह करना प्रमाणसे जानी हुई वस्तुको अनेक युक्तियां देकर भी अन्यथा नहीं बनाया जा सकता। अगर प्रमाणसे जाने हुए पदार्थमें भी यथा तथा युक्ति देकर उन्हें अन्यथा बनाया जाय तब तो कोई व्यवहार ही नहीं चल सकता।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

अन्यथा बनाया ही नहीं जा सकता। हाथपर अग्नि धरकर कोई समझता रहे कि यह अग्नि गर्म है और मुखसे कहे कि यह अग्नि बड़ी ठंडी लगती है, तो यह बात कैसे हो सकती है। रस्सी पड़ी थी सामने और समझ लिया साँप। अब यह वस्तु स्वरूपके विरुद्ध बात जानी गई इसलिये अप्रमाण है। लेकिन हिम्मत बनाकर पास जाकर उसे गौरसे देखा तो समझमें आया कि यह तो रस्सी ही है। तो अब इस यथार्थ ज्ञान करने वालेको कोई कितना ही बहकावे कि नहीं, नहीं यह तो साँप है, यह खायेगा, इसे हाथमें मत लो, तो इसे कौन मान लेगा? प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है। उसमें जो जाना, जो विषयमें आया उसमें किसी भी प्रकारका विसम्वाद नहीं है। और, फिर सहकारी पदार्थोंकी शक्ति भी अचिन्त्य है। किस प्रकारका क्षयोपशम पाकर, किस प्रकार मनकी प्रवृत्ति होनेपर यह प्रत्यभिज्ञान बनता है, यह उसकी एक विधि है।

उपादान निमित्तकी एक प्रासंगिक चर्चा—पदार्थोंमें सबमें अपनी अपनी शक्तियाँ है। कोई निमित्तभूत पदार्थ है। शक्तियां दो पदार्थके नातेसे उनकी अपनी अपनी हैं अलग-अलग। अब निमित्त कहना, उपादान कहना, यह आपेक्षित कथन हो जाता है। वस्तुस्थिति तो यह है कि परिणमने वाले पदार्थ स्वयं अपनी ऐसी कला रखते हैं कि अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाकर स्वयं परिणमते हैं। ऐसे परिणमनमें निमित्तने शक्ति नहीं सौंपी, निमित्तने अपना कुछ उसमें दिया लिया नहीं, यह सम्बन्ध स्पष्ट है। इसमें विवाद क्या कि परिणमने वाले पदार्थ अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाकर अपनी कलासे अनुरूप परिणम जाते हैं। दृष्टान्तके लिये ले लो। आप तखतपर बैठे हुये हैं। तखत इतना मजबूत होना चाहिये—यह तो है एक निमित्तकी बात। अन्यथा कमजोर, टूटा हुआ सड़ा हुआ तखत हो तो उसपर आपके बैठनेकी बात नहीं बन सकती। तो वह तखत मजबूत है यह तो है निमित्तकी बात, लेकिन आप इस तखतपर बैठ गये तो आपके इस बैठनेकी क्रियामें, आपके इस बैठनेकी परिस्थितिमें इस तखतने अपने आपमेंसे कौनसा गुण निकालकर आपमें डाला कि आप बैठे? उसने अपना कौनसा प्रभाव, शक्ति, परिणति आपमें डाली? यहां तो यह स्पष्ट समझमें आ रहा कि आपमें स्वयं सोमर्थ्य है, कला है उस ढंगसे बैठनेकी तो तखतका आश्रय पाकर आप इस तरहसे बैठ गये। तखत या अन्य पदार्थ आश्रयमें न होता तो आप न बैठ सकते थे। इतनेपर भी आप अपनी कलाका उपयोग जिस निमित्तको पाकर कर सके हैं उसको निमित्त कहा जाता है। इस प्रकारकी दृष्टि रखकर जो पदार्थोंके परिणमन का निर्णय रखता है उसको मोह नहीं सताता। वह जानता है कि मेरेमें जो कुछ भी हम कषायरूप अपने आपमें अपनी परिणति कर रहे हैं उसमें कला मेरी है। अपराध मेरा है, परिणति मेरी है। आश्रयभूत किसी परद्रव्यका अपराध नहीं है। जब हम ही ऐसी योग्यता वाले हैं तो इस प्रकारका विवाद कर लेते हैं। तो हमारे दुःखमें हमारा ही अपराध कारण है। इस प्रकारकी दृष्टि रखने वाला पुरुष व्याकुल नहीं होता, और जो यह समझता है कि इस निमित्तने मुझे सताया है। जहां ऐसी दृष्टि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

बनी वहां फिर उस दुःखको मेटनेका इलाज भी नही बन पाता, क्योंकि दूसरेका हम कुछ कर सकते नही, और मान रखा है कि उसने मुझे सताया है, तो अब इसका इलाज किया ? यदि यह ध्यान रखते कि मैं अपनी ही कल्पनासे अपनेको सता रहा हूँ तो यह यत्न भी कर सकता है कि उस कल्पनाको ज्ञान द्वारा दूर करदे। तो विपरीत ज्ञानमें कष्टसे छूटनेका इलाज नही होता। इससे वस्तुका यथार्थ ज्ञान रखें और इसमें जो कुछ बात है, कला है उसका हम परिज्ञान बनायें, अपने आपकी चर्चायें, अपने आपके निकट रहनेमें जो प्रसन्नता होती है वह प्रसन्नता अन्य किसी पर वस्तुकी आशामें, आधीनतामें नही हो सकती। यह प्रत्यभिज्ञानकी चर्चा चल रही है। अब भीतर निरखते जाइये कि हम प्रत्यभिज्ञान प्रमाणके द्वारा कितने काम निकलते हैं। ऐसे उपयोगी प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण नहीं कहा जा सकता।

एकत्वकी प्रत्यभिज्ञाके सम्बन्धमें शंकासमाधान—क्षणिकवादी केवल दो प्रमाण मानते हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। जितने सविकल्प ज्ञान है वे तो हैं सब अनुमान और जो निर्विकल्प ज्ञान हैं वे हैं उनके प्रत्यक्ष। चौकीको निरखकर चौकी समझ लिया तो वह अनुमान ज्ञान है, सविकल्प ज्ञान है और निरखते ही कोई विकल्प न उठा और जो कुछ प्रतिभास होता है वह है प्रत्यक्षज्ञान। तो ऐसे केवल दो ही प्रमाणों का मानने वाले क्षणिकवादी कह रहे हैं कि प्रत्यभिज्ञान नामका कोई प्रमाण नही है क्योंकि प्रत्यभिज्ञानमें दो प्रमाण आया करते हैं—प्रत्यक्ष और स्मरण। और, स्मरण भी क्या है ? पूर्व प्रत्यक्ष। तब दो ज्ञान हुये पूर्व प्रत्यक्ष और वर्तमान प्रत्यक्ष। पूर्व प्रत्यक्ष भी वस्तुके एकत्वको ग्रहण नहीं करता और वर्तमान प्रत्यक्ष भी एकत्वको ग्रहण नहीं कर रहा। एक वर्षसे वही है ऐसा जो एकत्व है उसे न तो पूर्व प्रत्यक्षने जाना और न वर्तमान प्रत्यक्षने जाना। तब प्रत्यभिज्ञान प्रमाण बन ही नहीं सकता। प्रत्यभिज्ञान प्रमाण उसका नाम है कि जैसे किसी पुरुषको देखकर ऐसा ज्ञान करना कि यह वही पुरुष है जिसे अमुक समय देखा था तो पहिलेका ज्ञात पदार्थ और अबका ज्ञात पदार्थ इन दोनोंमें जो सदा वर्तमान एकत्व जाने वह है एकत्व प्रत्यभिज्ञान, तो स्मरणकी सहायतासे भी प्रत्यक्ष एकत्वको नहीं जान सकता। ऐसा कहने वालोंके प्रति कह रहे हैं कि इस तरह तो हम यह भी कह देंगे कि असर्वज्ञका ज्ञान कितना ही अभ्यास विशेषकी सहायता ले जाय पर सर्वज्ञके ज्ञानको उत्पन्न नही कर सकता। क्षणिकवादी लोग क्षण क्षणमें पदार्थको मानते हैं किन्तु सर्वज्ञ मानते हैं। वह सर्वज्ञ उनका कैसा है और कौन सर्वज्ञ त्रिकालको जानता, किसे जानता और वही एक यदि त्रिकाल रहता है तो उसमें क्षणिकपना नहीं रहा और पदार्थका त्रिकालपना मानते हैं तो उनका क्षणिकपना समाप्त, तो क्षणिकपना मानकर भी त्रिकाल सर्वज्ञपना माना है। तो सर्वज्ञका ज्ञान बना कैसे गया यह उनसे प्रश्न किया जा रहा है। पहिले तो वह असर्वज्ञ था, अल्पज्ञ था, अब अल्पज्ञके ज्ञानने सर्वज्ञके ज्ञानको उत्पन्न कैसे कर दिया ? तो इस विषयमें क्षणक्षयवादका मन्तव्य है कि नैरात्म्यभावनाका अभ्यास किया

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

जाता है। मैं शाश्वत नहीं हूँ ऐसा अभ्यास बनाया जाता है। तो जैसे स्मरणकी सहायता पाकर भी प्रत्यक्ष ज्ञान एकत्वको प्रत्यभिज्ञानको उत्पन्न नहीं कर सकता उसी तरह अभ्यासकी सहायता पाकर भी अल्पज्ञका ज्ञान सर्वज्ञके ज्ञानको उत्पन्न न कर सकेगा। और, फिर दर्शनका भी तो विषय एकत्व है। प्रत्यक्षने क्या जाना ? एक क्षणमें जाना। निर्विकल्प वस्तुको जाना तो आखिर एकत्वको ही तो जाना। नानापनेको तो नहीं जाना। तो एकत्व विषयपनकी मनाई कैसे की जा सकती है ?

एकत्वकी प्रतीतिसिद्धता और देखिये—एकान्ततः अनित्यपना तो किसी जगह प्रतीतिमें आता नहीं। जो कुछ दिखता है वह वर्षोंसे है और तुम कहते हो कि क्षण क्षणमें नष्ट होता है। जैसे दीपक जलता है तो उसमें एक-एक बूंद आ आकर दीपक जल रहा है। लोगोंको यह भ्रम रहता है कि दीपक वही है, पर वहाँ नया नया दीपक बन रहा है तो जैसे नवीन तैल बिन्दुके दीपकोंमें एक दीपक है ऐसा लोग भ्रम करते हैं इसी तरह क्षण क्षणमें नवीन नवीन आत्मा उत्पन्न होते रहते हैं और उनकी संतानमें लोग यह भ्रम कर लेते हैं कि आत्मा वही है। सुनते हुये तो अच्छा सा लगता है कि ठीक ही तो कह रहे हैं लेकिन यह दृष्टान्त प्रसंगके अनुरूप नहीं है। पदार्थ तो मूल कुछ मान लो। वह तैल बूंद है तो वह तैल बूँदका मूल पदार्थ इस समय तैलरूपमें है, फिर वह दीपकरूपमें हुआ, फिर धुवांके रूपमें हुआ। अन्य अन्य रूप बदले मगर मूलका जो पदार्थ है वह कभी नष्ट नहीं होता। पर्यायको ही द्रव्य पूरा मानकर दृष्टान्त दिया जाता है। क्षणिकवादमें आत्माके बारेमें भी जैसे कि यह बात पायी जाती है कि कभी क्रोधी है आत्मा। कभी मानी है, कभी छल कपटमें है, कभी लोभमें है, कभी शान्त है। तो एक-एक अवस्थामें रहने वाले आत्माको उस ही अवस्थामें पूरा मान लिया। जैसे क्रोधी न रहा आत्मा तो उनका कथन है कि वह आत्मा ही नहीं रहा। अब यह दूसरा आत्मा पैदा हुआ। इस तरह सर्वथा अनित्य पदार्थ किसीको प्रतीत भी नहीं होता। तो जैसे प्रत्यक्षके द्वारा वर्तमान पर्यायके आधाररूप से पदार्थकी एकता प्रतीतिमें आती है इसी प्रकार स्मरणकी सहायता लेकर प्रत्यक्षसे उत्पन्न हुए प्रत्यभिज्ञानके द्वारा स्मरणमें आयी हुई पर्याय और प्रत्यक्षमें आयी हुई पर्याय इन दोनोंके आधाररूपसे जो एकत्व है वह प्रतीतिमें आया है। जैसे यह वही मनुष्य है जो ८ वर्ष पहिले छोटा बच्चा था। तो क्या जाना हमनेकी ८ वर्ष पहिलेके बच्चेकी पर्यायमें और आजके जवान किशोरकी पर्यायमें इन दोनोंके आधारमें रहने वाला जो एक जीव है, मनुष्य है उसको ग्रहण किया है। तो प्रत्यभिज्ञानका विषय कैसे नहीं है ? अवश्य है।

एकत्व विपरीत ज्ञान होनेपर सर्वत्र विपरीत ज्ञान माननेका अनौचित्य अब यहां क्षणिकवादी शङ्का कर रहा है कि जैसे नख काट दिये जाते हैं या बाल काट दिये जाते हैं और १०-१५ दिन बादमें फिर वे बढ़ आते हैं तो लोग यही कहते हैं कि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

ये तो वही बाल हैं अथवा ये तो वही नख हैं जो पहिले थे। किन्तु यह तो बताओ कि वे बाल अथवा नख वही कैसे हैं ? अरे वे तो कहींके कहीं काटकर फेंक दिये गये थे। अब तो ये नख अथवा केश दूसरे हैं। तो जैसे दूसरे नख अथवा केशोंमें लोग एकत्वका भ्रम करते हैं इसी तरह सर्वत्र एकत्वका भ्रम करते हैं। प्रत्यभिज्ञान कोई चीज नहीं है तथा जैसे केश कट गये वे तो कहींके कहीं फेंक दिये गये अब नये केश उगे तो लोग यह नहीं कहते हैं कि पहिले कटे हुए केशोंकी तरह ये केश हैं। ऐसा लोग बोलते ही नही हैं। केश कट गये फिर भी लोग कहते कि ये वही बाल हैं जो पहिले थे। ऐसा झूठ तो बोलते हैं कि ये वही बाल हैं पर ऐसा सत्य नही बोलते कि जो बाल पहिले कट गये थे उसी तरहके ये बाल उगे हैं। तो जैसे इन बालोंमें एकत्व नहीं है जो बाल थे वे दूसरे थे अब जो उगे वे दूसरे हैं। जो एकत्व विषय न होकर भी जैसे लोग यहां एकत्वका ज्ञान करते हैं इसी तरह सब जगह एकत्व विषय नही है मगर भ्रमवश एकत्वका ज्ञान करते हैं। इसलिये प्रत्यभिज्ञानका कोई विषय नही है। एक क्षणका ही एकान्त सही है। इसपर उत्तर देते हैं कि यह तो एक बदलती चीज हो गयी। तो सादृश्य प्रत्यभिज्ञान था, उसे लोगोंने एकत्व प्रत्यभिज्ञानमें ढाल दिया। बाल कट गए और नये बाल उत्पन्न हो गए तो वहां सादृश्य प्रत्यभिज्ञान है। अब दूसरी बात है कि लोग उलायतमें या उस समझे हुए विषयमें ऐसा रूढ़िमें कह बैठते हैं कि ये वही बाल हैं। यदि शब्दोंको ही पकड़कर मिथ्या कहते हो तो हो जाने दो मिथ्या, अगर एक जगह मिथ्या हो जायगा तो सब जगह तो मिथ्या न हो जायगा। जैसे किसी समय सीपको चाँदी जान लिया तो इसका अर्थ यह नही है कि चांदीको जब हम चांदी भी जानते रहें तो वह भी मिथ्या हो जाय ! सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाणभूत है और एकत्व भी प्रमाणभूत है। एक जगह एकत्वको सादृश्यरूपमें समझ लिया या सादृश्यको एक रूपमें समझ लिया तो सब जगह विपरीतपना न हो जायगा। अगर यों मानों तो प्रत्यक्ष भी भ्रान्त हो जायगा। यदि किसी प्रत्यक्षमें भ्रम आ गया जैसे प्रत्यक्षसे देख तो रहे हैं दूरका ठूठ कुछ अंधेरे उजेलेमें और समझ रहे हैं पुरुष तो प्रत्यक्ष अगर एक जगह झूठ बन गया तो इसका अर्थ यह नही है कि सब जगह झूठ है। सफेद शङ्ख में यदि एक पुरुषने पीला शङ्ख जान लिया और उसी पुरुषने यदि स्वर्णको भी पीला जाना तो इसके मायने भ्रान्त तो नही हो गया। शङ्ख सफेद है उसे पीला समझना विपरीत ज्ञान है, पर ऐसा तो नही है कि स्वर्णको भी पीला समझे, तो वह भी विपरीत ज्ञान कहलाये ! तो जहां प्रत्यभिज्ञानाभास है वहां प्रत्यभिज्ञानाभास है और जहां सत्य प्रत्यभिज्ञान है वहां बराबर सत्य प्रत्यभिज्ञान है।

प्रत्यभिज्ञान प्रमाणके अभावमें अनुमान प्रमाणकी भी असिद्धि—सीधी सी बात है कि यदि प्रत्यभिज्ञान न मानोगे तो अनुमानकी भी सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि अनुमान प्रमाण बनता कब है कि पहिले वर्तमानका ख्याल आये और फिर वर्तमानमें देखे हुयेकी सदृशता जाने तो वहाँ प्रत्यभिज्ञान हुआ तब अनुमान बना।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

जैसे पहिले यह परिचय था, समझ थी कि जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहां अग्नि होती है। रसोईघरमें धुवाँ था, अग्नि जल रही थी। तो उस हीकी तरह इस पर्वतमें धुवाँ उठ रहा है तो यहां अग्नि होना चाहिये। तो साधनसे साध्यका जो ज्ञान करते हैं तो पहिले ज्ञात किया हुआ साधन साध्यका स्मरण होता है तब ज्ञान होता है और उस स्मरण सादृश्यमें उस एकत्वको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। तो प्रत्यभिज्ञान माने बिना अनुमान प्रमाणकी भी सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे एक पुरुषने पहिले धुवाँ देखा और अग्निसे उत्पन्न होता हुआ पुनः देखा वही पुरुष जब उस धुवेंके समान किसी जगह नया धुवाँ देखता है तभी तो अग्निका ज्ञान सम्भव है। तो प्रत्यभिज्ञान पहिले हुआ तब सन्निधान हुआ। प्रत्यभिज्ञान हम आप सबके जीवनमें इतना व्यापक ज्ञान चल रहा है कि हर बातमें प्रत्यभिज्ञान मदद करता है। भोजन करते हैं तो प्रत्यभिज्ञान होता रहता है। निशकतासे दाल चावलका कौर खानेको उठा लेते हैं, तो पहिले बोध है कि इस तरहका इसमें स्वाद है सुख है तो पहिले बोधमें और अबके जाने हुए उसमें सदृशताका बोध बराबर बना हुआ है तब तो खाते हैं। आप झट अपने कमरेमें जाकर, घुस जाते हैं, मंदिर पहुँच जाते हैं, दूसरोंसे बोलने लगते हैं, चलना बोलना उठना खाना पीना आदिक समस्त व्यवहारोंमें प्रत्यभिज्ञान बराबर लगा हुआ है। तो प्रत्यभिज्ञानके बिना अनुमान प्रमाण भी नही बन सकता। जब तक सादृश्य प्रत्यभिज्ञान न बने तब तक अनुमान नही बन सकता। इस कारणसे जिसे अनुमान प्रमाणको मानना है, उसमें साधन और साध्यके सम्बन्धको मानना है, उसे प्रत्यभिज्ञान प्रथम मानना ही पड़ेगा। जैसे स्पष्ट याने देखे हुये पदार्थ प्रमाणभूत हैं इसी प्रकार पहिल देखे हुए पदार्थोंका स्मरण होना भी प्रमाणभूत है और इसी प्रकार पहिले स्मरण किये हुए पदार्थमें और वर्तमानमें देखे जा रहे पदार्थमें एकत्व समझना, भिन्नता समझना, छोटा बड़ा समझना, ये सब प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाणभूत हैं।

प्रत्यभिज्ञानसे अबाधित व्यवहार—इस प्रत्यभिज्ञानका लोग बराबर व्यवहार करते हुये चले जा रहे हैं। एक अक्षरको देखकर झट वह समझा कि यह वह अक्षर है और दो तीन अक्षरोंका पद देखकर झट यह ज्ञानमें आता कि इसका यह भाव है, यह प्रत्यभिज्ञान बिना हो सकता है क्या ? जो हमने पहिले पढ़ा, जिसका हमें अभ्यास बना उसको सहायतासे हम उसका स्वाध्याय करते हैं और उसका अर्थ समझते हैं। जैसे कोई पुरुष आत्माका मना करे कि मैं आत्मा नहीं हूँ तो मैं आत्मा नही हूं ऐसा समझा किसने ? ऐसी समझ किसमें बनी कि मैं आत्मा नही हूँ। यह भी तो एक समझ है, आत्मा हूँ यह भी समझ है। मैं आत्मा नही हूं यह भी समझ है। जगतमें कोई आत्मा है ही नही यह भी एक समझ है। तो जो समझ है वही तो आत्मा है। जिसमें समझ है यही तो आत्मा है। तो आत्माका निषेध भी आत्मा ही कर रहा है। तो जिस ज्ञानके द्वारा हम आत्माका निषेध करनेका उपयोग बनाते हैं, जिस उपयोगके द्वारा हम आत्माका नास्तित्व सिद्ध करते हैं उस उपयोगको माने नही यह कहाँ तक

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

युक्त है। तो इसी तरह प्रत्येक मनुष्य प्रत्यभिज्ञानके द्वारा सारे व्यवहार कर रहा है। प्रत्यभिज्ञानसे तो देखो प्रत्यक्ष भी काम कर रहा है। प्रत्यक्षमें देखा और झट समझ गये कि यह थाली है तो पहिले उसको जाना था अनेक बार और थाली है ऐसा निर्णय बना था उसकी कुछ मदद इस समय मिल रही है कि नही मिल रही है। जो यह समझकर कि यह थाली है ऐसा जो समझ रहा है इस समझमें पहिली समझकी सहायता है कि नही, यह तो प्रत्यभिज्ञानकी पद्धति है। जो योगी पुरुष आत्मतत्त्वका ध्यान करने शीघ्र बैठ जाते हैं, निशंक बैठ जाते हैं उन्हें यह पता है कि आत्मा अमूर्त ज्ञान मय आनन्दस्वरूप है और इस तरह दृष्टिसे झट ध्यानमें आ जाता है। इन बातोंका संस्कार पड़ा है उन संस्कारोंकी सहायता लेकर झट आत्माका ध्यान करने बैठ जाते हैं तो इस परिणतिमें उनकी प्रत्यभिज्ञाने काम किया या नही ? तो प्रत्यभिज्ञान प्रमाण माने बिना आप कुछ सिद्ध कर ही नही सकते। तो प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणकी भाँति निर्विरोध निःसन्देह प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है। प्रत्यभिज्ञान शब्दमें तीन शब्द लगे हैं—प्रति, अभि, ज्ञान। प्रति शब्दसे तो उस पर्यायको लिया जो पूर्वमें समझा था। उसके प्रति और अभि शब्दसे समझ लिया जो अभिमुख पदार्थ है, सामने पदार्थ है तो पूर्वज्ञात पदार्थके प्रति और अभिमुख रहने वाले पदार्थके सम्बन्धमें जो एकत्व सादृश्य वैलक्षण्य अथवा छोटे बड़े दूर समीप आदि ज्ञान किये जाते हैं उसका नाम है प्रत्यभिज्ञान। ऐसा ज्ञान सब मनुष्योंके होता है और प्रतीतिसिद्ध है। प्रतीतिसिद्धज्ञान का अपलाप करने लगे तब कुछ भी बात सिद्ध नही की जा सकती है। हम झट विश्वासके साथ अपने आत्माकी ओर झुकते हैं और क्लेश समाप्त करते हैं, विशुद्ध आनन्द भोगते हैं। इसको उसका पूर्ण निर्णय है कि किस तरह झुका जाता है और किस तरह आनन्द लिया जाता है। उसके स्मरणकी सहायतासे हम झट इस ही योग को करनेके लिए तैयार हो जाते हैं. तो प्रत्यभिज्ञान अच्छे कामोंमें, बुरे कामोंमें, ध्यान साधनामें भक्तिपाठमें, लोकव्यापारमें, अपने खानपानमें सर्वत्र काम कर रहा है। उस प्रत्यभिज्ञानको किसी भी प्रकार मना नही किया जा सकता।

प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण सिद्ध करनेमें शंकाकारके चार विकल्प—जो लोग प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण मानते हैं उनसे पूछा जा रहा है कि प्रत्यभिज्ञानमें अप्रमाणता किस कारणसे समझ रहे हो। क्या प्रत्यभिज्ञान गृहीतग्रही है अर्थात् पहिले ग्रहण किये हुए पदार्थको ही प्रत्यभिज्ञान जानता है क्या इस वजहसे अप्रमाण कहते हो क्योंकि धारावाही ज्ञान अप्रमाण कहा गया है। जो प्रमाणसे निश्चित हो चुका वह पूर्व अर्थ बन गया। उसका जानना प्रमाणभूत नहीं आता। अपूर्व अर्थके निश्चयको प्रमाण कहा है। तो क्या प्रत्यभिज्ञान पहिले जाने हुए पदार्थको जानता है इस कारण अप्रमाण है यह आपकी मंसा है या इस कारण अप्रमाण समझते हो कि प्रत्यभिज्ञान स्मरणके बाद होता है अथवा प्रत्यभिज्ञान शब्दाकारको धारण किए हुए है। प्रत्यभिज्ञानकी बुद्धिमें स एव अयं यह वही है अथवा रोझके सदृश गाय है आदिक

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

जो शब्दाकार आते हैं प्रत्यभिज्ञान बुद्धिमें, या बाधित होता है किसी प्रमाणके द्वारा, इस कारण अप्रमाण है। यों चार विकल्पोंमें पूछा जा रहा है।

गृहीतग्राही होनेसे प्रत्यभिज्ञान अप्रमाण है इस विकल्पकी अयुक्तता– गृहीतग्राही होनेसे प्रत्यभिज्ञान अप्रमाण है यह विकल्प तो अयुक्त है अर्थात् गृहीतग्राही होनेसे प्रत्यभिज्ञानका विषय न तो प्रत्यक्ष गृहीत पदार्थ है और न स्मृति गृहीत पदार्थ है, किन्तु स्मृति और प्रत्यक्ष दोनोंसे ग्रहणमें आने योग्य एक द्रव्य प्रत्यभिज्ञानका विषय है। यह वही है इस ज्ञानमें न तो 'यह" प्रत्यभिज्ञानके ग्रहणमें आता है और न 'वह' प्रत्यभिज्ञानके ग्रहणमें आता है। प्रत्यभिज्ञानका विषय गृहीतग्राही नहीं हैं क्योंकि प्रत्यक्ष और स्मरण दोनोंका जो विषयभूत पर्याय है उसके आधारमें रहने वाला जो एकत्व सादृश्य आदिक धर्म है वह प्रत्यभिज्ञानका विषय है। सो यद्यपि प्रत्यभिज्ञान ने जिस एकत्वको ग्रहण किया उस एकत्वका प्रत्यक्ष और स्मरणसे जाने हुये के साथ सम्बन्ध है अतएव कथंचित पूर्वार्थ है, ग्रहण किया हुआ भी कह सकते हैं क्योंकि प्रत्यभिज्ञानसे वही तो जाना, उसके ही सम्बन्धमें तो जाना जैसा कि प्रत्यक्ष और स्मरणने जाना। फिर भी सूक्ष्मदृष्टिसे देखें तो प्रत्यभिज्ञानका विषय उन दोनों विषयोंसे कुछ अलग है। इस कारण अप्रमाण नहीं है, क्योंकि इस तरह थोड़ा भी सम्बन्ध निरखकर अप्रमाण मानते रहेंगे तो अनुमान ज्ञानको भी अप्रमाण मानना पड़ेगा, क्योंकि अनुमान ज्ञानमें जो कुछ जाना है वह सर्वथा अपूर्व अर्थ नहीं है। धुवाँ देखा और उसे निरखकर अग्निका ज्ञान किया तो धुवां भी आप पचासों बार जान चुके, अग्नि भी जान चुके और जानी हुई चीजको ही अब जान रहे हो तो यह पूर्वार्थ ही तो हुआ। तो अनुमानमें जो जाना वह सर्वथा अर्थ तो नहीं है। यदि सर्वथा ही नया हो तो अनुमान जान नहीं सकता। जिस सम्बन्धमें हमें पहिलेसे परिचय न हो, न देखी हुई चीज हो सामने तो उसका अनुमान भी नहीं बन सकता। तो यों अनुमान ज्ञानमें जो विषय आया वह भी कथंचित् पूर्वार्थ है। सर्वथा अपूर्व उसे भी नहीं कह सकते, क्योंकि जो तर्क नामका प्रमाण है उसका विषय है यह साध्य साधन सामान्य धुवाँ देखकर जो अग्निका ज्ञान किया तो उसमें तर्क प्रमाणने सहयोग दिया ना। झट समझ गया भीतर ही भीतर कि जहाँ जहां धुवां होता है वहां वहां अग्नि होती है। तो तर्क ज्ञानसे जाना न यह और जाना अग्नि सामान्य। यह तो नहीं कहा जा रहा कि जहाँ जहाँ धुवां होता है वहां वहां लकड़ीकी आग होती है अथवा पत्थरकी आग होती है। आग सामान्यका अविनाभाव है। तो तर्क ज्ञानसे जो विषय किया है उससे कथंचित अभिन्न ही तो है यह पर्वतकी अग्नि जिसका अनुमान किया जा रहा है। अनुमान प्रमाणमें जिसे जाना जा रहा है वह तर्क ज्ञानसे पहिले ही जाना जा चुका था। तो तर्क विषयसे अभिन्न है। यह अनुमानसे आया हुआ साध्य यद्यपि अनुमानमें कथंचिद देश कालके विशेषसे विषयमें भेद हुआ मगर जाना तो उस होको जिसको तर्क ज्ञानने समझा दिया था इस कारण वह भी पूर्वार्थ सिद्ध हो जाता है। तो अनुमान

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

भी प्रमाण नहीं बन सकता। गृहीतग्राहीका यदि ऐसा अर्थ लगाया जाय कि जो थोड़ा बहुत भी अंश किसी अन्य प्रमाणको जान ले उसके बारेमें जाने सो गृहीतग्राही है और अप्रमाण है। यों कहनेपर तो आप कुछ भी प्रमाण नहीं व्यवस्थित कर सकते, इससे यह कहना युक्त नहीं है कि गृहीतग्राही होनेसे प्रत्यभिज्ञान अप्रमाण होता है।

स्मरणानन्तर होनेसे प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण माननेपर सिद्धान्त-विघात—अब दूसरे पक्षकी बात सुनो। स्मरणके अनन्तर हुआ है यह प्रत्यभिज्ञान इस कारण अप्रमाण कहना युक्त नहीं है। स्मरणके अनन्तर होने वाले ज्ञानको अप्रमाण कहने पर जब रूपके स्मरणके बाद रसका सम्बन्ध हो जाय तो उस समय जो रसज्ञान उत्पन्न हुआ है वह भी अप्रमाण हो बैठेगा क्योंकि तुमने तो नियम बना रखा है कि स्मरणके बाद अनेक ज्ञान होते हैं और प्रमाणभूत होते हैं। रूपके स्मरण करने के बाद यदि कोई चीज रखी जाय और उसमें जो रसका ज्ञान हुआ क्या वह अप्रमाण है, प्रमाणभूत है? उसका अनुभव करते हैं, आनन्द लेते हैं। रोज-रोज भोजन करते हैं लोग और उसी भोजनको आज भी किया और उसमें जो स्वाद आया, ज्ञान हुआ क्या वह गृहीतग्राही है? नहीं, प्रमाणभूत है। अरे कल खाया था, कल गृहीत हुआ था उसके बाद तो विस्मरण भी हो गया। नई इच्छा जगी और फिर भोजन खाया। उसमें जो ज्ञान हुआ वह अप्रमाणभूत नहीं है। तो स्मरणके बाद जो ज्ञान होता है वह अप्रमाण है यह कोई युक्तिसंगत बात नहीं है। रस ज्ञानसे पहले जो स्मरण ज्ञान होता है उसको क्षणिकवादियोंने समनन्तर कारण माना है अर्थात् जिस ज्ञानके बाद लगातार दूसरा ज्ञान होता है उस दूसरे ज्ञानका कारण पूर्वज्ञान है क्योंकि ज्ञानाद्वैत सिद्धान्तमें ज्ञानसे ज्ञानरूपता मानी गई है। ज्ञानसे पहिले जो ज्ञान था वह समनन्तर कारण कहा जाता है अर्थात् अनन्तर उत्पन्न हुए ज्ञानका कारण! तो रूपके स्मरणके बाद फिर जो रस चखा उस रसज्ञानकी उत्पत्ति स्मरणके बाद हुई फिर भी प्रमाणभूत है। जैसे कोई अंधेरेमें आम दे दे कि इसे चखो! तो आमको चूसने वाला पुरुष रूपका ख्याल तो कर ही लेता है—हरा, पीला जैसा है, तो रूप स्मरण रस ज्ञानका समनन्तर कारण बना और प्रमाण है इस कारण यह नहीं कह सकते कि स्मरणके बाद होने वाले ज्ञान अप्रमाण हैं। अब शङ्काकार कह रहा है कि यहां तो रूपस्मरणके बाद जो रसज्ञान हुआ है इस प्रसङ्गमें तो बोधरूपसे समनन्तर कारण है और तुम्हारे प्रत्यभिज्ञानमें जो विषय आया वह स्मरणके रूपसे समनन्तर कारण है। तो रूपके बाद रसज्ञान होना यह तो स्मरणके बाद नहीं हुआ किन्तु बोधके बाद हुआ और तुम्हारा प्रत्यभिज्ञान स्मरणके बाद हुआ? उत्तर देते हैं कि यह कहना अयुक्त है क्योंकि चाहे स्मरणरूप हो, जो जो भी हैं वे बोधरूप तो होते ही हैं ऐसा नहीं कह सकते कि स्मरण तो बोधरूप नहीं होता और अन्य बोधरूप होते। इस कारण तुम्हारा रूपस्मरणके बाद होने वाला रसज्ञान भी स्मरणके बाद हुआ और प्रत्यभिज्ञान भी स्मरणके बाद हुआ। तुम्हारा प्रमाण है

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

रसज्ञान तो प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है।

स्मरणानन्तरभावी होनेसे प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण माननेपर अनुमान के प्रमाणत्वकी असिद्धि देखिये! स्मरणके अनन्तर होने मात्रसे प्रमाण न माना जाय प्रत्यभिज्ञानको तो अनुमान भी प्रमाण नही बन सकता है। पर्वतमें धुवां देखकर अग्निका ज्ञान किया कि जहां जहां धुवां होता है वहां वहां अग्नि होती है। तो स्मरण के बाद ज्ञान होनेसे यदि अप्रमाणता मान ली जाय तो अनुमान भी प्रमाण नही बन सकता। अब न्यायग्रन्थके अनुसार भी देखलो कि साधन और साध्यके सम्बन्धके बाद ही अनुमान ज्ञान उत्पन्न होता है। धुवांको देखकर जो अग्निका ज्ञान हुआ तो पहिले तो देखा गया धुवां और धुवां देखकर एकदम हुआ साध्य-साधनके सम्बन्धका ज्ञान कि जहां-जहां धुवां होता है वहां वहां अग्नि हुआ करती है उस सम्बन्धका हुआ स्मरण, यह सम्बन्ध बिल्कुल सही है। हमने इस जगह भी देखा, उस जगह भी देखा ये सब बातें भूल जाती हैं ज्ञानमें। तो साध्य-साधनके सम्बन्धके स्मरणके बाद ही अनुमान ज्ञान होता है। तो स्मरणके बाद होने वाले ज्ञानको अप्रमाण कहेंगे तो अनुमान ज्ञान भी अप्रमाण बन जायगा। क्योंकि बतलावो ना है यह सच बात कि सम्बन्धके स्मरण के बाद ही अनुमान ज्ञान बना! यदि ऐसा न होता तो फिर दृष्टान्त देनेकी क्या जरूरत थी? इस पर्वतमें अग्नि है, धुवां होनेसे जैसेकि रसोईघर। रसोईघर ऐसा जो सपक्षका दृष्टान्त दिया वह तो सम्बन्ध दिखानेके लिए ही दिया। इससे सिद्ध है कि सम्बन्धके स्मरणके बाद अनुमान ज्ञान बनता है। तब प्रत्यभिज्ञानको अप्रमाण स्मरण के बाद होनेके कारण नही कह सकते।

शब्दाकारधारी होनेसे प्रत्यभिज्ञानके अप्रमाणत्वके विकल्पकी असमीक्षिताभिधानता—शब्दाकारको धारण करता है प्रत्यभिज्ञान इस कारण अप्रमाण है। यह तीसरा पक्ष भी युक्त नही है, क्योंकि ज्ञान शब्दाकारको नही धारण करता। भले ही ज्ञानके साथ साथ इसकी गुनगुनाहटके शब्द आते रहते हैं मगर पौद्गलिक चीज है शब्द और ज्ञान है चेतनका धर्म। चेतनका धर्म ज्ञान शब्दके आकारको धारण करे यह बात दुक्त नही है और यह भी युक्त नही है कि जितने भी पदार्थ हैं वे सब शब्दमय हैं। शब्द ही रूप है। शब्दोंके सिवाय न चेतन पदार्थ है न अचेतन पदार्थ। ये तो मनगढंत कल्पनायें हैं। ज्ञान शब्दाकारको धारण नही करता इस कारण यह नहीं कह सकते कि शब्दाकारधारी होनेसे ज्ञान अप्रमाण होता है। पदार्थोंने शब्दको कुछ धारण किया है क्या? सामने जो पदार्थ दिख रहे हैं ये जैसे हैं दिख रहे हैं इनमें शब्दाकार कहां पाया जाता? इनका संयोग वियोग हुआ परस्परमें उस समय भाषा वर्गणा जातिके पौद्गलिक स्कंध वचनरूप परिणम जाते हैं। वचनरूप परिणमन होने में भी यह दिखने वाले स्कंधोंका शब्दपरिणमन नही है किन्तु भाषावर्गणा जातिके पुद्गल स्कंधोंका शब्दरूप परिणमन है। ज्ञानमें तो शब्दकी बात ही नही है। प्रत्यभि-

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

होनेसे अप्रमाण है, यह कहना अयुक्त है।

प्रत्यभिज्ञानप्रमाणकी अबाध्यमानता—अब चौथे पक्षके विषयमें सुनो! प्रत्यभिज्ञान बाध्यमान है इस कारण अप्रमाण है, यह कहना युक्त नहीं। प्रत्यभिज्ञान किससे बाधा आती है बतलावो? प्रत्यभिज्ञानमें जो विषय निर्णीत किया है उसका बाधक प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान उसे जानता है जो सामने हो। किसी देवदत्तको देखकर ऐसा ज्ञान करना कि यह वही देवदत्त है जिसे १ वर्ष पहिले देखा था। इस ज्ञानमें जो कुछ विषय आया वह विषय प्रत्यक्षका नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष तो सामने आये हुए पदार्थको ही जानता है। जो जिस विषयमें प्रवृत्ति नहीं करता वह उसका न साधक होता न बाधक। जैसे रूप ज्ञानका रस ज्ञान न साधक है न बाधक। आमको चखा और स्वाद लिया। उस स्वादको लेकर कोई यह कहे कि आम पीला होता है तो यह झूठ बात है। आम तो मीठा होता है तो रूपज्ञान जुदी चीज है, रसज्ञान जुदी चीज है। इसी तरह प्रत्यभिज्ञानका विषय अलग है प्रत्यक्षका विषय अलग है। प्रत्यक्ष प्रत्यभिज्ञानके विषयमें बाधक नहीं हो सकता। अनुमान भी प्रत्यभिज्ञानके विषयमें बाधक नहीं है क्योंकि अनुमानकी प्रवृत्ति प्रत्यभिज्ञानके विषयमें नहीं होती। साधनसे साध्यके ज्ञान होनेका नाम अनुमान है। तो अनुमानने अनुमेयको जाना एकत्व सादृश्यको नहीं जाना। जंगलमें रोझको देखकर यह कोई ध्यान करे कि यह तो गायके समान जानवर है। तो क्या यह अनुमानका विषय है? यह प्रत्यभिज्ञानका विषय है। अनुमान ज्ञान प्रत्यभिज्ञानके विषयके सम्बन्धमें कभी भी बाधक बन ही नहीं सकता इस कारण यह निर्णय रखना चाहिये कि प्रत्यभिज्ञान प्रमाण है क्योंकि समस्त बाधासे रहित है। जैसे—प्रत्यभिज्ञान प्रमाण है क्योंकि इसमें कोई बाधा नहीं आ रही। आँखोंसे देखा कि यह घड़ी है तो यह ज्ञान प्रमाण है क्योंकि इसमें कोई बाधक नहीं हो रहा। इसी तरह प्रत्यभिज्ञानके द्वारा जब जाना कि यह वही देवदत्त है या यह रोझ गायके समान है, यह भैया उस बड़े भैयासे ३ वर्ष छोटा है आदिक जो भी बात ज्ञानमें आती हैं बिल्कुल सही हैं। उनमें कोई बाधक नहीं बन रहा। इससे एकत्व प्रत्यभिज्ञान प्रमाणभूत है। और इसी तरह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाणभूत है। जैसे जाना कि वह रोझ गायके समान है तो गाय और रोझमें जो सामान्य धर्म ज्ञानमें आया। जिस दृष्टिको हम समानता कहते हैं उस समानताका ज्ञान प्रमाण है। सादृश्य प्रत्यभिज्ञानके विषयमें भी कोई बाधा देने वाला प्रमाण नहीं है। तथा यह सम्वादक भी है अर्थात् विवादरहित कार्यकारी ज्ञानको पुष्ट करने वाला प्रयोजनको सिद्ध करने वाला भी है। जैसे कोई रोगी शहदका त्याग किये हुए है तो वैद्यने बताया कि शहदकी तरह गुण मिश्रीकी चासनीमें है तो उसका जो बोध हुआ वह कल्याणकारी है। तो प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्षकी तरह पुष्ट ज्ञान है, स्मरणकी तरह पुष्ट ज्ञान है। अनुमानकी तरह अविसम्वादी ज्ञान है। जिस ज्ञानसे हम रात दिन व्यवहार बना रहे हैं, धर्ममार्गमें भी अपना कार्य निकाल रहे हैं उस

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

ज्ञानको अप्रमाण कहना यह तो बड़े दुःस[illegible] [illegible]त है। अन्य प्रमाणोंकी भाँति प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है।

सादृश्यकी सिद्धिके सम्बन्धमें शंका समाधान—एकत्व प्रत्यभिज्ञानमें तो एक ही पदार्थकी पूर्व उत्तर पर्यायके आधारकी एकता देखी जाती है और सादृश्य प्रत्यभिज्ञानमें भिन्न-भिन्न दो पदार्थोंमें गुण आकार आदिककी समता देखी जाती है। इस प्रसंगमें शंकाकार कह रहा है कि जो समानता है वह उन दो पदार्थोंसे भिन्न है या अभिन्न ? जैसे रोझको देखकर यह ज्ञान हुआ कि यह गायके समान है तो वह समानता रोझसे भिन्न ? या अभिन्न है गायसे भिन्न है। यदि भिन्न कहते हो कि वह समानता गायसे रोझसे भिन्न है तो उसकी समानता ही क्या कहलायी ? यदि कहो कि अभिन्न है तो या तो रोझ रह गया या गाय। कोई सादृश्य तो रहा नहीं। तो पदार्थोंकी सदृशता न भिन्न है न अभिन्न इस कारण सादृश्यको विषय करने वाले प्रत्यभिज्ञानमें बाधा आती है। विसम्वाद होता है इस कारण प्रत्यभिज्ञान सिद्ध ही नहीं होता। इसका उत्तर दिया जा रहा है, सादृश्यका क्या स्वरूप है, सादृश्यका अर्थ क्या है और सादृश्य प्रत्यक्षसे भी सिद्ध है अनुमानसे भी [illegible]द्ध है, ये सब बातें एक विवरण सहित आगे बतावेंगे लेकिन यहाँ इतनाही समझो कि समानताका बोध सबका निर्विवाद हो रहा है। दो जुलजुवा बच्चोंको देखकर सभी कहते कि ये दोनों बच्चे एक समान हैं तो सदृशताका बोध सबको बराबर निर्वाध हो रहा है इसकी असिद्धि नहीं है। कदाचित एक साथ उत्पन्न हुए एकसे आकारके दो पुत्रोंमें जिनका कुछ नाम रख लो, एकका नाम राम और दूसरेका नाम भरत। अब वे दोनों एकसे आकारके हैं और किसी समय रामको देखकर कोई यह कह दे कि देखो वह रामके समान है तो यह गलत हुआ ना। राम ही तो है और कहा जा रहा कि यह रामके समान है। तो एक जगह यदि सादृश्य प्रत्यभिज्ञान गलत हो गया तो इसके मायने यह नहीं है कि सब जगह गलत हो गया। इससे जिस प्रकार एकत्व प्रत्यभिज्ञान प्रमाण सिद्ध है इसी तरह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान सिद्ध है। प्रत्यभिज्ञानमें दो ज्ञेयोंके सम्बन्धकी बात जानी जाती है। चाहे वह सम्बन्ध ऐकतारूपसे किया हो चाहे सदृशता रूपसे किया हो चाहे विसदृशतासे किया हो या प्रतियोगितासे किया हो वे सब प्रत्यभिज्ञान कहलाते हैं।

सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका अनुमानमें अनन्तर्भाव—शंकाकार कहता है कि प्रत्यभिज्ञानको मानता कौन नहीं, हम भी मानते हैं मगर वह अनुमान प्रमाण है, प्रत्यभिज्ञान कोई जुदा प्रमाण हो सो बात नहीं। अनुमानरूपसे प्रत्यभिज्ञानको माना जाता है। यह वही देवदत्त है यह ज्ञान अनुमान है। प्रत्यभिज्ञान नहीं। या यह रोझ गायके सदृश है यह भी प्रत्यभिज्ञान नहीं, अनुमान है। किस प्रकारसे यह ज्ञान अनुमान कहलाता है सो सुनिये। पूर्व क्षणमें और उत्तर क्षणमें दो पदार्थ देखे गये। जैसे पहिले देखा था गाय और अब देख रहे हैं रोझ तो उनमें जो एक सादृश्य दिख रहा है वह

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रत्यक्षसे दोनों प्रत्यक्षोंसे ही जाना जा रहा है। जब गायको देखा था तब वही आकार देखा गया था, अब रोझको देख रहे हैं तो वही आकार दिख रहा है। तो यह सादृश्य तो प्रत्यक्षसे जाना गया लेकिन जो पुरुष ऐसा जानकर भी सादृश्यका व्यवहार नहीं करता है उसको अनुमानसे समझना चाहिये कि यह रोझ पहिले जानी हुई गायके समान आकारकी यहाँ उपलब्धि है। तो देखो साधन बन गया। साधनसे साध्यके ज्ञान होने को अनुमान कहते हैं। गायके समान आकारकी उपलब्धि होनेसे यह रोझ गायके समान है। अनुमान बन गया ना फिर सादृश्य प्रत्यभिज्ञान क्या रहा? इस शंकाका अब उत्तर देते हैं कि इस तरह माननेपर तो अनुमानमें भी अनवस्था हो जायगी। पर्वत में जो धुवां दिख रहा है उसमें ऐसा ज्ञान किया जा रहा कि पहिले जाने हुये धूमके समान यह धूम है। इस प्रकार जो साधनका ज्ञान बना, है यद्यपि यह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान, अनुमान करते समय धुवां देखकर जो झट यह बोध हो जाता है कि यह धुवां उन सब धुवोंके समान है जिनको हमने देखा था यह है सादृश्य प्रत्यभिज्ञान तुम कर रहे हो अनुमान, तो उसमें भी रहने वाले जो सदृशताका धर्म है उसका भी अनुमान बनाना पड़ेगा। जैसे पर्वतका धुवां पहिले देखे धुवेंके समान है क्योंकि पहिले देखे हुए धुवोंकी तरहका आकार है। तो अब इसका अनुमान बनावें कि यह धुवां सदृश आकार होनेके कारण समान है क्योंकि सदृश आकार है इसमें फिर जो भी सदृश आकारका हेतु देखा वहाँ भी अनुमान बनाया जावे तो वहाँ अनुमानकी अवस्था नहीं रह सकती। यदि तुम पदार्थमें होने वाली समानताके व्यवहारको इस हेतुसे सिद्ध कर रहे हो कि यह सदृश आकार होनेसे समान है तो सदृश आकारमें भी तुम किस तरह व्यवहार बनावोगे? दूसरा सदृश धर्म दिखाकर तो अनवस्था हो जायगी। यदि पदार्थमें सदृशता सिद्ध करोगे तो अन्योन्याश्रय दोष हो जायगा इस कारण सादृश्य प्रत्यभिज्ञानको अनुमान न समझना चाहिये, वह एक स्वतंत्र ज्ञान है। जैसे एकत्व प्रत्यभिज्ञानका व्यवहार बहुत होता रहता है, किन्तु अत्यन्त अधिक उपयोग होनेपर भी लोग उसकी आलोचना नहीं कर पाते हैं इसी तरह सादृश्य प्रत्यभिज्ञानका भी व्यवहार अधिक होता रहता है। खिचड़ी पक रही है और पकनेके बाद चावल टटोला तो वह घुल गया तो झट यह ज्ञान हो गया कि चावल पक गया। इसके बीच सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी हो गया पर लोग ख्याल नहीं रखते। रोज खिचड़ी पकाते थे, इस तरह घुल जाती थी और पकी कहलाती थी यह सब ज्ञानमें आया कि नहीं? जिस समय पके हुए चावलको टटोला तो एकत्व प्रत्यभिज्ञानकी तरह बात बातमें सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी चल रहा है। इतना तो विस्तृत उपयोग होता है जिसपर भी न माने कोई तो मत माने, पर इसका उपयोग छोड़ दे कोई तो व्यवहार भी अपना नहीं बना सकता।

सादृश्यप्रत्यभिज्ञानका उपमानमें अनन्तर्भाव—अब जो कि उपमान प्रमाणको मानता है वह शंका कर रहा है कि जब हमने रोझ देखा तो चूंकि हमने गाय भी देखा था और गायके देखनेसे एक धारणा मनमें बना ली थी। तो गायके

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

देखनेसे बनायी है घ रणा जिसने ऐसा जब रोझको देखता हूँ तो रोझके देखनेसे तुरन्त गायका स्मरण हो आता है और तब इस प्रकारके आकारका ज्ञान बनता है कि वह उसके समान है या यह मेरे समान है। तो यह ज्ञान तो उपमान हुआ। उपादान प्रमाण कहते उसे हैं कि जहाँ एक अर्थकी दूसरे अर्थसे उपमा दी जाय। समानता दिखाई जाय तो यह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान उपमान प्रमाण हुआ यह कोई अलग प्रमाण नही है, क्योंकि उपमानका प्रमेय होता है क्या? समानतासे सहित पदार्थ अथवा पदार्थमें रहने वाली समानता यह है उपमानका विषय। तो यों उपमान तो सही है पर सादृश्य प्रत्यभिज्ञान कोई प्रमाण नही है। उत्तर देते हैं कि यह तुम्हारा कथन बिना विचारा हुआ है। विचार करनेपर तो तुम ऐसा नही कह सकते। प्रत्यभिज्ञान होता है सकलनात्मक ज्ञान, कि जिस एकत्व प्रत्यभिज्ञानमें पूर्व और उत्तर पर्यायमें एकत्वका संकलन किया गया था तो सादृश्य प्रत्यभिज्ञानमें एक पदार्थका और पूर्व विज्ञान दूसरे पदार्थमें जो सदृशता है उसका संकलन किया है इसलिए सादृश्य प्रत्यभिज्ञानपनेको नही छोड़ रहा। जैसे यह वह ही है इसमें उत्तर पर्यायकी पूर्व पर्यायके साथ एकताकी प्रतीति करायी जा रही है और वह प्रत्यभिज्ञान है इसी प्रकार प्रथम देखे हुए पदार्थका पूर्व देखे हुए पदार्थका पूर्व देखे हुये पदार्थके साथ सदृशताकी प्रतीति करायी जाती है। यह उसके समान है तो वहां हुआ एकत्वका संकलन और यहां होता है सदृशताका संकलन। तो जैसे पूर्व पर्याय और उत्तर पर्याय सम्बन्धी ज्ञानोंमें जो एकत्व समझमें आया वह एकत्व जाना गया इसी तरह वर्तमान पदार्थमें और पूर्व विज्ञात पदार्थमें जो सदृशता है वह सदृशता जानी गयी है। यदि ऐसा कहोगे कि एकत्वका ज्ञान तो प्रत्यभिज्ञान है यह हम मान लेंगे पर सादृश्यज्ञान तो अनुमान ही है। ऐसा कहोगे तो तुम यह बतलावो कि विसदृशताका ज्ञान हुआ तो वह किस नाम का प्रमाण है। जैसे रोझ देखकर रोझ देखने वाले पुरुषको गाय देखनेसे जो संस्कार बना हुआ था उससे यह समझता है कि यह रोझ गायके समान हैं तो इसी प्रकार उसने भैंसको देखा था और भैंसके देखनेसे उसके आकारका संस्कार भी बनाया था। वही पुरुष रोझ देखकर जो यह ज्ञान करता है कि यह रोझ भैंससे बिल्कुल विलक्षण है तो विलक्षणताकी भी तो प्रतीति हुआ करती है। जैसे एक पदार्थमें दूसरे पदार्थकी प्रतीति होती है इसी प्रकार विसदृशताकी भी प्रतीति होती है। तो विलक्षणताकी जो प्रतीति होती है, यह एकत्व प्रत्यभिज्ञानमें भी नही गया और उपमान प्रमाणमें भी नही गया, जो तुमने प्रमाण माना उसीमें रुचि होवेकी एकत्व मानते और उपमान भी प्रत्यभिज्ञान भी तो यह बतावो कि यह वैलक्षण्यज्ञान किस ज्ञानमें सामिल होना क्योंकि इसका विषय न अनुमान है न सदृशता। जो प्रमाणकी संख्या मानते हैं अनुमान प्रमाणवादी, उनकी संख्याका विघात हो जायगा ना, इससे सही बात मान लो कि संकलात्मक ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। चाहे वह एकत्वका संकलन करे चाहे सदृशताका चाहे विसदृशताका।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

सादृश्य और वैलक्षण्यका विधान—शंकाकार कह रहा है कि सदृशताके अभावका नाम विसदृशता है। समानता न जची उसीका नाम विसदृशता है। तो वह विसदृशता अभावनामका विषय है। सदृशताका अभाव जाना गया और अभावकाजानना अभाव प्रमाणमें बनता है। मीमांसक सिद्धान्तमें प्रत्यक्ष, अनुमान, अर्थापत्ति, उपमान, और अभाव ये प्रमाण माने गए हैं। तो जो असद्भाव है, अभावरूप है उसको अभाव प्रमाण जानता है तो विसदृशता सदृशताका अभाव है तो विसदृशताका ज्ञान अभावप्रमाणसे हो जायगा। जो यह पूछा गया था कि यह रोझ भैंससे बिसदृश है। यह ज्ञान किस ज्ञानमें भी नहीं आया और अनुमानमें भी नहीं आया इसपर शंकाकार कह रहा है कि अभाव प्रमाणमें आ गया। और इस से फिर प्रमाणोंकी संख्याका विघात भी नहीं होता। इसपर उत्तर देते हैं कि जिसे तुम कहते हो कि सदृशताके अभावका नाम विसदृशता है। तब तो वही दोष। या अब बतलावो वैलक्षण्यका ज्ञान किस प्रमाणमें अन्तर्भाव करोगे? शङ्काकार कहता है कि विसदृशता उसे कहते हैं कि जो सदृशता बतावे। कई चीजें हैं उनमें आकार गुण आदिक समान पाये जायें, उन गुणोंको बताना, मिलाना इसका नाम है सादृश्य। वह कैसे वैलक्षण्यका अभाव बन जायगा? सादृश्य विधिरूप है, वैलक्षण्यके अभावरूप नहीं है। इसपर उत्तर देते हैं कि वैलक्षण्य भी इस रूपमें मानलो कि अनेक धर्मोंमें विसदृशरूपसे बताना, फिर वह कैसे सादृश्यके अभाव मात्र बन जायगा, वैलक्षण्य विधिरूप है। उन अनेक पदार्थोंमें जो आकार नहीं मिलता था उन आकारोंको बताया जा रहा है। इससे वैलक्षण्य ज्ञानको अभाव प्रमाणमें सामिल नहीं किया जा सकता। जैसे सादृश्य प्रत्यभिज्ञान एक विधिरूप है, एकत्व प्रत्यभिज्ञान विधिरूप है इसी प्रकार वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान भी विधिरूप है।

यौगाभिमत उपमान प्रमाणमें सादृश्यप्रत्यभिज्ञानका अनन्तर्भाव—अब इस समय उपमान प्रमाण मानने वाला एक दूसरा सैद्धान्तिक जो थोड़ा लक्षणमें अन्तर मानता है प्रश्न कर रहा है कि यह रोझ गायके समान है, ऐसा जो ज्ञान किया गया है वह अनुमान प्रमाण ही तो है। किस तरह? यह रोझ गायकी तरह है, इस प्रकार उपमानरूप वचनका जिसने संस्कार बनाया है फिर वनमें रोझको देखता है तो रोझको देखकर झट यह ज्ञान करता कि यह है रोझ शब्दसे समझा जाने वाला पदार्थ। इस तरह संज्ञा और संज्ञी वचन और अर्थ इसके सम्बन्धका ज्ञान करनेका नाम उपमान है। उपमान ही प्रमाण तो हुआ। अब इस शङ्काका उत्तर देते हैं। उत्तर सुननेसे पहिले थोड़ा यह जान जायें कि मीमांसकके उपमानमें और नैयायिकके उपमानमें अंतर क्या है? मीमांसकके उपमान प्रमाणसे तो रोझको देखकर झट यह ज्ञान हुआ कि यह गायकी तरह है तो गायकी समानताका ज्ञान कर लिया जायगा, पर नैयायिकके उपमानमें क्या बात आई? इस पुरुषने सुन रखा था कि रोझ गायकी तरह होता है और गायको पहिले अनेक बार जाना है। अब वही पुरुष जो वनमें जाकर रोझको देखता

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

है तो उपका ज्ञान इस ढङ्गमें होता कि ओह यह है रोझ शब्दके द्वारा जाना गया पदार्थ । यह उपमानमें अन्तर आया । तुमने संज्ञा और संज्ञीके सम्बन्धका ज्ञान किया, इस ढंगसे अप्रमाण जाना किसी भी प्रकार माना जाय यह सदृशताका ज्ञान उपमान प्रमाणमें नहीं आता । बल्कि उपमान प्रमाण सादृश्य प्रत्यभिज्ञानमें सामिल किया जाना चाहिये ऐसा क्योंकि सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी कोई अलग प्रमाण नही है किन्तु प्रत्यभिज्ञान प्रमाणका भेद है । मूलमें ज्ञान वह माना जाना चाहिये कि जिसमें भेद सब मूलमें गर्भित हो जाँय । उत्तरमें कहे जा रहे हैं कि जैसे एक समय घटका ज्ञान करने वाले पुरुषको फिर घट दिख जाय वही घट तो यह ज्ञान करता है कि यह वही घट है ऐसा ज्ञान प्रत्यभिज्ञान है ना । तो इसी तरह गायके समान रोझ इस शब्दमें वाच्य वाचक सम्बन्धको जानकर फिर रोझके देखनेसे जो साम्यका ज्ञान हुआ है वह भी प्रत्यभिज्ञान ही है । नैयायिकके उपमान प्रमाणके सिद्धान्तमें यह माना जाता है कि जिसे पहिले नही जाना उसके दर्शन होनेसे तो स्मृति कहलाती है और जिसका सम्बन्ध पहिले जान लिया उसका ज्ञान होनेसे उपमान कहलाता है ऐसा भेद नहीं है । जहाँ भी दो पदार्थोंमें दो परिणतियोंमें किसी बातका टिकाव किया जाय, संकलन किया जाय वे सब प्रत्यभिज्ञान होते हैं । प्रत्यभिज्ञानका सामान्य लक्षण यह है दर्शन और स्मरणके कारणसे संकलनात्मक ज्ञान है वह प्रत्यभिज्ञान है यह लक्षण एकत्व प्रत्यभिज्ञानमें भी घटित है और सादृश्य वैलक्षण्य प्रतियोगि आदिकमें भी घटित है । एक का हुआ दर्शन दूसरेका हुआ स्मरण उन दोनों पदार्थोंमें ही किसी धर्मका संकलन सो प्रत्यभिज्ञान है । यों एकत्व प्रत्यभिज्ञानकी तरह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण और प्रमाणभूत है ।

वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानका उपमान प्रमाणमें अनन्तर्भाव - जो लोग प्रत्यभिज्ञानको प्रमाण मानते और उसका अन्तर्भाव उपमान प्रमाणमें किया करते हैं उनसे पूछा जा रहा है कि वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानको तुम उपमानमें अन्तर्भाव कर नही सकते, अन्य किसमें करोगे ? शंकाकारने बताया था कि वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान भी उपमानमें गर्भित होता है । सो यदि गायसे विलक्षण भैंस आदिकके देखनेसे जो यह बोध होता है कि यह गाय नहीं है तो इसमें जो संज्ञा संज्ञीके सम्बन्धके निषेधका ज्ञान हुआ उसे यदि उपमान कहते हो उपमान प्रमाणवादी नैयायिकोंसे कहा जा रहा है कि जैसे गाय की तरह रोझ होता है ऐसी बात सुनकर रोझको देखनेपर ओह यह है गाय शब्दके द्वारा वाच्य अर्थ इसे उपमान कहते हैं क्योंकि संज्ञा और संज्ञीका सम्बन्ध बन गया इसी तरह यह नही है रोझ ऐसा जो संज्ञा संज्ञीके सम्बन्धका निषेध है वह भी उपमान है ऐसा यदि मानोगे तो तुम्हें अपने ही सिद्धान्तको बदलना होगा । तुम्हारे ही सिद्धान्तका घात होगा क्योंकि तुम्हारे अर्थात् शंकाकारके सिद्धान्तमें बताया गया है कि प्रसिद्धार्थसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम् । पहिले जाने हुए पदार्थमें जो धर्म रहता है उस धर्मसे वर्तमान साध्यकी सिद्धि कर लेना इसका नाम उपमान है । जैसे रोझ दिख

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

जानेपर यह जान लेना कि यह है रोझ शब्दके द्वारा वाच्य पदार्थ । तो लो इसमें वैलक्षण्यकी बात तो जरा भी नहीं आयी और तुमने वैलक्षण्यको भी उपमानमें मान लिया तो यह सिद्धान्तका घात हो गया । यदि कहो कि ज्ञात अर्थके सादृश्यसे भी उपमान होता है और ज्ञात पदार्थकी विलक्षणतासे भी उपमान होता है तो इस सूत्रमें कुछ शब्द बढ़ा देना चाहिये । अथवा एक सूत्र और बढ़ादें कि प्रसिद्धार्थवैधर्म्याच्च साध्यसाधनमुपमानम् । अथवा दोनों ही बातें आ जायें उपमानके लक्षणमें सदृशताकी भी बात आ जाय और विसदृशताकी बात आ जाय और उसे बना बैठे यों प्रसिद्धार्थैकत्वात्साध्यसाधनमुपमाम् । अर्थात् पहिले ज्ञात किया हुए अर्थकी एकता उसके सम्बन्ध में कुछ भी बातसे साध्यका साधन कर लेना उपमान है, इतने पर भी प्रत्यभिज्ञानका प्रत्यक्षमें अन्तर्भाव तो अयुक्त ही है और उपमान प्रमाणमें यदि प्रत्यभिज्ञान जैसे ही लक्षणके शब्द बोल दें तो फिर कहने भरका भेद है । ज्ञात तो वही हुआ जिसे तुम उपमानसे कहते हम प्रत्यभिज्ञान शब्दसे कहते । और उपमान शब्द देकर कितने ही लक्षण बतलाये वह शब्द ही ऐसा है कि उसमें सब लक्षण आ ही नहीं सकते हैं । प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान उसमें कैसे बता सकेंगे ।

प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानका उपमान प्रमाणमें अनन्तर्भाव--देखिये—अपने निकट जो मकान है जैसे अपने घरसे करीब ५० गज दूरीपर सेठका मकान है तो उसको निरखकर एक संस्कार बन गया कि यह है मकान । फिर किसी दूसरेके मकान की बात कही जाय जो कि एक फर्लांग दूर हो तो उसे देख करके यह कहा जाता है कि यह उस मकानसे दूर है । यहाँ पर प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान है । निकट वाला मकान और दूर रहने वाला मकान । उसमें प्रतियोगी कौन है ? बीचकी जमीनसे दूर ज्ञात हुआ अन्य मकान । जमीनसे जानी हुई दूरीको प्रतियोगी कहते हैं मुकाबले वालेको । जैसे कहते हैं प्रतियोगिता पुरस्कार मायने मुकाबला करके किस बालकसे कौन बालक से कौन बालक श्रेष्ठ है ऐसा मुकाबला करके कोई ईनाम देते इसे कहते हैं प्रतियोगिता तो यों ही पास वाले मकानका मुकाबला दूर वालेसे किया जा रहा । जब यह ज्ञान हुआ कि यह इससे दूर है तो यह प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान है उसका कहां अन्तर्भाव किया जायगा ? उपमानके कितने ही लक्षणभेद कर लो । इसका अन्तर्भाव कहां होगा, अथवा आंवला खूब देखा और उससे संस्कार बन गया कि इतने बड़े होते हैं आंवले । और फिर देखा कैथ उसे देखकर यह कहना कि आँवला कैथसे छोटा होता है तो यहां छोटा आँवला देखनेसे जो आकारका संस्कार बनाया है उस जीवने अब देखा उससे विपरीत अर्थ उसके मुकाबले वाला उल्टा कैथ तो उसको देखनेसे कहता है कि यह इस से बड़ा है । ऐसा जो ज्ञान होता है उसे कौनसा प्रमाण कहोगे ? उपमान भी नहीं अनुमान भी नहीं, प्रत्यक्ष भी नहीं । कोई मानना पड़ेगा ना अलग प्रमाण ।

सम्बन्ध प्रतिपत्तिरूप प्रत्यभिज्ञानोंका उपमानमें अनन्तर्भाव--और भी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

देखिये । जो जीव वृक्षको नही जान रहा वह किसीसे पूछता है कि वृक्ष कैसा होता है तो वह उस पूछने वाले से कहता है कि शाखा पत्तों वाला वृक्ष होता है । अब इस वचनको सुनकर संस्कार बन गया जिसमें शाखायें फूटी हों, पत्ते होते हों, टहनी होती है वह पेड़ होता है । अथवा फोटो दिखाकर बता दिया कि ऐसा होता है पेड़ ! फिर उसने कहीं देखा शाखा आदिक वाले उस पदार्थको तो वह झट ख्याल करता है, ओह ! यह वृक्ष है, वृक्ष शब्दके द्वारा कहा गया पदार्थ । इस रूपसे जो संज्ञा संज्ञीका सम्बन्ध जाना जा रहा है इस ज्ञानको आप कौनसा प्रमाण बतावेंगे ? उपमान तो है नही, प्रत्यक्ष अनुमान आदिक भी नहीं । मानना पड़ेगा ना कोई अलगसे ज्ञान । कोई पुरुष नहीं जानता था कि गैंडा कैसा होता है । पूछा कि भाई गैंडा कैसा होता है ? तो किसीने बताया कि जिसका एक सींग निकला हो, मुखके आगेसे उसे गैंडा कहते हैं, इस बातको सुनकर उसे संस्कार बन गया कि गैंडा उसे कहते हैं जिसके मुखके आगेसे एक सींगसा निकला हो । और जब कभी अजायबघरमें वह गया और वहाँ मिल गया गैंडा तो उसे देखकर झट वह ख्याल कर लेता है—ओह ! यह है गैंडा शब्दके द्वारा वाच्य पदार्थ । तो यहाँ जो संज्ञा संज्ञीके सम्बन्धका ज्ञान हुआ उस ज्ञानको आप किस प्रमाणमें गर्भित करेंगे ? उपमान तो हो नही सकता । यह उपमान प्रमाणवादी नैयायिक उपमानको सीधा यों नही मानता कि जैसे रोझ दीखा और झट ज्ञान किया कि ओह ! यह तो गायके समान है । इस तरहका लक्षण मानते थे मीमांसक । नैयायिक तो यह मानते हैं कि पहिले सुन समझ रखा हो कि जो सींगवाले गायके समान आकार वाला हो वह रोझ होता है और फिर देखा जङ्गलमें रोझ तो उसे जो यह सम्बन्ध मिल गया कि रोझ शब्दके द्वारा कहा जाने वाला यह है जानवर इस रूपमें उपमान माना है । तो उन्ही शब्दोंको ढालकर पूछा जा रहा है कि इन ज्ञानोंको आप किस प्रमाणमें मानने हैं ? ये सब उपमान प्रमाणमें तो आ नहीं सकते क्योंकि ये जो दृष्टांत दिये जा रहे हैं प्रतियोगीके इन सभी दृष्टान्तोंमें प्रसिद्ध अर्थकी समानता नही है । यह इससे दूर है, यह कहलाता है गैंडा आदिक घटनाओंमें ज्ञान अर्थकी समानताकी बात ही नहीं कही जा रही । इससे तुम्हें यदि प्रमाणकी सही व्यवस्था बनानी है सभी प्रमाण आ जायें और ऊपपटांग प्रमाणकी संख्या बढ़े नही, यदि ऐसी व्यवस्थित प्रमाण व्यवस्था रखना चाहते हो तो तुम्हें प्रत्यभिज्ञानको प्रमाण मान लेना चाहिये नही तो प्रमाणके नम्बर तुम्हें बढ़ाने पड़ेंगे ।

स्मरण और प्रत्यभिज्ञानके प्रमाणत्वकी सिद्धि—यहाँ तक यह कहा गया कि जैसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है देखिये ! इसी प्रकार स्मृतिज्ञान भी प्रमाणभूत है । प्रत्यक्ष है एक देश विशद और स्मृति है अविशद लेकिन विसम्वाद इसमें भी नही है । जैसे जब किसी बातका स्मरण करते हैं तो क्या आप चित्तमें विसम्वाद भी रखते हैं ? निःशंक उसे वहाँ ही समझ लेते हैं । तो प्रत्यक्षकी भाँति स्मरण भी प्रमाण है और जैसे प्रत्यक्ष और स्मरण प्रमाण है इसी प्रकार

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रत्यक्ष और स्मरणके विषयभूत पदार्थोंमें एकता जानना सदृशता जानना विसदृशता जानना प्रतियोगिता समझना ये सारे प्रमाणभूत ज्ञान हैं और चूँकि ये सब प्रत्यक्ष और स्मरणके कारणसे उत्पन्न हुए ज्ञान हैं अतः सभी प्रत्यभिज्ञान । एकत्व प्रत्यभिज्ञानमें तो यह विषय बना था । जैसे कि यह वही देवदत्त है, यह और वहसे सम्बन्धित एकताको जाना एकत्व प्रत्यभिज्ञानने, सादृश्य प्रत्यभिज्ञानने । सादृश्य प्रत्यभिज्ञानकी यह मुद्रा है जैसे कि यह रोझ गायके समान है । इससे प्रत्यक्षसे जाने हुये रोझमें और स्मरणसे जाने हुए गायमें सदृशताका ज्ञान किया गया है । वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञानकी यह मुद्रा है जैसे कि यह रोझ भैंससे बिल्कुल अलग है । तो यहाँ प्रत्यक्ष से जाने हुये रोझमें और स्मरणसे जानी हुई भैंसमें विसदृशताका ज्ञान किया गया है । प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञानकी यह मुद्रा है जैसे यह मंदिर उस मकानसे पास है । प्रत्यक्षसे जाने गये मंदिर और स्मरणसे जाने गए मकानमें निकटताका मुकाबला किया है । यह है प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान । इसके अनेक तरहके उदाहरण बनते हैं । यह उससे दूर है, यह उससे छोटा है । यह उससे बड़ा है, ये सब प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान हैं । अब एक नया प्रत्यभिज्ञान सुनो – सम्बंध प्रति पत्तिरूपप्रत्यभिज्ञान, सुन रखा था कि सिंह ऐसा होता है जिसका मुख बिलावके समान किन्तु बड़ा, जिसके गर्दनपर बहुत लम्बे बाल । जिसकी पूछ लम्बी, ऐसा होता है सिंह । और जंगलमें जब कभी शेर दिख गया तो वहाँ जो यह ज्ञान हुआ – ओह यह है शेर शब्दके द्वारा वाच्य पदार्थ तो ऐसा जो सम्बन्धका बोध किया गया यह भी प्रत्यभिज्ञान है । तो इस प्रकार ये सारे प्रत्यभिज्ञान चूँकि मूलमें एक ही प्रकारकी विधि रखते हैं ये प्रत्यक्ष और स्मरणके कारण से संकलनात्मक हुए हैं इस कारण ये सभी प्रत्यभिज्ञान कहलाते हैं । यों स्मृति भी प्रमाण है और प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है । अब इसके बाद तीसरा परोक्ष प्रमाण है तर्क प्रमाणके कारण और स्वरूपको सूत्र कहते हैं ।

उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः (अध्याय ३ सूत्र नं० ११)

तर्क प्रमाणके कारण और स्वरूपका निरूपण – उपलम्भ और अनुपलम्भ है निमित्त जिससे ऐसा जो व्याप्ति ज्ञान है उसे तर्क कहते हैं । उपलम्भका अर्थ है साध्य साधनका सद्भाव । जहाँ साधन हो वहाँ साध्य पाया जाता है ऐसा सद्भाव बतानेका नाम उपलम्भ है । और जहाँ साध्य नहीं है वहां साधन भी नहीं होता । इस प्रकार अनुपलब्धिके निर्णय करनेका नाम है अनुपलम्भ अपने क्षयोपशमके अनुसार साध्य और साधनका उपलम्भ और अनुपलम्भ समझना, उसका दृढ़तर निश्चय और अनिश्चय होना अर्थात् साधनके सद्भावमें साध्यका होना साध्यके अभावमें साधनका न होना इस प्रकारका जो व्याप्तिज्ञान होता है उसे तर्कमें निर्णय है । पायी जाने वाली बात नहीं कह रहे । आप बराबर धुवां देखते रहें वह तर्क न कहलायगा किन्तु उसके सम्बन्धमें निर्णय हो कि जहां धुवां होता है वहां अग्नि होती है जहां अग्नि नहीं वहां

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

धुवां नही, ऐसे निर्णयको कहेंगे तर्क प्रमाण। यों कोई आदमी रोज रोज तो आग देखता रहे रोज–रोज धुवां देखता रहे तो यह तर्क ज्ञान नही है। उन दोनोंमें अविनाभावका सम्बन्ध समझना इसका नाम है तर्क ज्ञान। तो निर्णय होनेका नाम तर्क ज्ञान यह दोष कोई अब नही देख सकता कि जो अतीन्द्रिय पदार्थ है साध्य भी अतीन्द्रिय। जिसका निश्चय या आगमसे होता या अनुमानसे। प्रत्यक्षसे होता नही। तो उसका सम्बन्ध जानना तर्क ज्ञान न होगा क्योंकि उसकी उपलब्धि ही नहीं होती। यह दोष क्यों न आयगा ? यों कि यहाँ उपलब्धिका अर्थ निश्चय है, पकड़ना मिलना नही है। जैसे कहा कि इस प्राणीका पुण्य विशेष है क्योंकि पुण्य विशेष न होता तो विशिष्ट सुख आदिक इसे न मिलते। तो विशिष्ट सुख आदिकका सद्भाव पाया जानेसे पुण्यविशेषके अस्तित्वका निर्णय करना यह तर्क ज्ञानसे हुआ। वैसे तो सुख भी ग्रहण नही होता पुण्यविशेष भी ग्रहण नही होता, पर आगमसिद्ध है उसका तर्कसे निर्णय है अथवा ऐसा अनुमान किया कि सूर्यमें गमनशक्तिका सम्बन्ध है, सूर्यमें गति शक्ति है अन्यथा यह गति नहीं कर सकता था, उदय अस्त न होता। गतिमत्ता इसमें न बन सकती थी। इसमें गमनशक्तिकी उपलब्धि कहां है ? गमनशक्ति क्या प्रत्यक्षसे दीखती है ? नही ! लेकिन तर्क ज्ञान बराबर बन गया, क्योंकि निर्णय हो गया। तो सूत्रमें जो उपलम्भ और अनुपलम्भ जो दो शब्द दिये हैं उनका अर्थ निश्चय अनिश्चय है। साधनके होनेपर साध्यका निश्चय होना, साध्यके न होनेपर साधनका अनिश्चय होना ऐसा अर्थ करनेपर इस अतीन्द्रिय धर्मोंके अनुमानमें भी तर्क ज्ञानका लक्षण घटित हो जाता है। तो जैसे पुण्य विशेष आगमके सिवाय अन्य किससे तो नही जाना जा सकता। सूर्यमें गमन शक्तिका सम्बन्ध अनुमानके सिवाय और किसी प्रमाणसे तो नही जाना जा सकता। सूर्य चल रहा है क्योंकि एक दिशासे दूसरी दिशामें पहुंच गया, तो चलते भी नही देखा जा रहा है और अनुमानसे समझ लिया तो यों प्रत्यक्षसे उपलब्धि न भी हो तो भी उसके सम्बन्धमें ज्ञान हो जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि साध्य साधनके अविनाभावका नाम है व्याप्ति और व्याप्तिके ज्ञानको कहते हैं तर्क !

तर्ककी उपलम्भानुपलम्भनिमित्ततापर शङ्का समाधान—साध्यसाधनके अविनाभावका ज्ञान करना सो तर्क ज्ञान है, साधनके होनेपर साध्यका होना, साध्यके न होनेपर साधनका न होना ऐसे निर्णयका नाम तर्क प्रमाण है। इसपर शङ्काकार कहता है कि किसी पुरुषको बचपनमें तो साध्यसाधनके सद्भाव अभावका निर्णय था, अब वृद्धावस्थामें वह निर्णय विस्मृत हो गया लेकिन साधन सामने दिख रहा है तो स्वरूपकी उपलब्धि होनेपर भी पदार्थ सामने होनेपर भी अविनाभावका ज्ञान तो नही रहा साध्यके अभावमें यह साधन नही होता। इस प्रकारका उसे अब ध्यान नही रहा अधिक वृद्धावस्थामें अपनी ही सिद्धि भूल जाती है तो तर्क जैसी बात ध्यानमें न रहे, ऐसा हो ही जाता है लेकिन सामने कुछ चीज हो वह तो दीखेगी उसे ? तो साधन स्वरूप सामने प्राप्त होनेपर भी अविनाभावका ज्ञान नहीं है इससे उपलम्भ और अनुप-

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

लम्भ दो तर्क ज्ञानके सम्बन्धमें कैसे अबाधित हो सकते हैं। कहा था ना, कि साधनके उपलम्भमें साध्यका उपलम्भ होना और साध्यके उपलम्भमें साधनका अनुपलम्भ होना अर्थात् साध्यके होनेपर ही साधनका होना, साध्यके अभावमें न होना, यह बात वहां कैसे बन सके ? इससे तर्क ज्ञान प्रमाण है। अब इस शङ्काका उत्तर देते हैं कि तर्क ज्ञानमें स्मरण आदिक भी तो कारण हैं। याने धुवांको देखा जाना इतने मात्रसे तर्क ज्ञान नहीं होता किन्तु स्मरण होवे, प्रत्यभिज्ञान होवे, ये भी कारण पड़ते हैं। धुवां देखकर एक तो यह ख्याल आता है ओह ! ऐसा धुवाँ वहाँ भी देखा था और वहां अग्नि थी तो इसमें स्मरण भी होता है, प्रत्यभिज्ञान भी होता है, वह भी कारण पड़ता है। अब उस वृद्ध पुरुषको प्रत्यक्ष तो हो रहा है साधनका परस्पर नहीं चल रहा, इस कारणसे तर्क ज्ञान नहीं बन रहा। बारबार निश्चय और अनिश्चय होवे अर्थात् साधनके होनेपर साध्यका होना, साध्यके अनिश्चयमें साधनका अनिश्चय होना यह बात बार बार आवे जो कि स्मरणसे आती है और प्रत्यभिज्ञानसे आती है तो वह कारण होती है। इस प्रकार स्मरण आदिकमें भी तर्क ज्ञानका कारणपना है। तो कोई कहे कि जब तर्क ज्ञानमें स्मरण भी कारण है, प्रत्यभिज्ञान भी कारण है, तो यह बताते क्यों नहीं हो ? सूत्रमें तो सिर्फ इतना भर कह रखा कि उपलम्भ और अनुपलम्भके निमित्तसे व्याप्तिज्ञान होता है। स्मरण भी कहो, प्रत्यभिज्ञान भी कहो। उत्तर—यह दोष नहीं दे सकते। यह दोष इसलिए नहीं दे सकते कि उपलम्भ और और अनुपलम्भ तो मूल कारण हैं। इसलिए इसकी बात तो सूत्रमें कहनी ही पड़ेगी। और स्मरण प्रत्यभिज्ञान यह तो प्रकृत बात है, स्मरण और प्रत्यभिज्ञानके बिना उपलम्भ और अनुपलम्भ नहीं ज्ञात हो सकता। तो स्मरण आदिक उपलम्भ और अनुपलम्भके ज्ञानके कारण हैं सो प्रसिद्ध बात है इसलिए इसको कहा नहीं है, पर समझना चाहिए कि स्मरण और प्रत्यभिज्ञान भी सहायक है तर्कज्ञानके बनने में।

व्याप्तिज्ञानके असाधारण उपायभूत तथोपपत्ति व अन्यथानुपपत्तिके निरूपणका उपक्रम—तर्क कहो, ऊहापोह कहो, वकालत कहो सब एक ही बात है। तो जैसे कानून और युक्तियोंकी बात जाननेमें जो चिन्तन, मनन चलता है वह चिन्तन मनन कौन सा ज्ञान कहोगे ? प्रत्यक्ष नहीं, स्मृति नहीं, प्रत्यभिज्ञान नहीं। तर्क है और तभी तर्कका दूसरा नाम चिंता कहा गया है। चिन्ताके मायने हैं रंज नहीं, शोक नहीं। जो अनेक प्रकारसे सबन्ध चिन्तन होता। अविनाभावका विचार होता वह सब चिन्ता है, तर्क ज्ञान है। तो व्याप्तिके ज्ञानका नाम तर्क है ऐसा कहनेपर यह जिज्ञासा होती है कि व्याप्तिज्ञान आखिर किस तरहका हुआ करता है उसका है संक्षेपमें कि तथोत्पत्ति और अन्यथानुत्पत्ति इन दो विधियोंसे व्याप्तिका ज्ञान होता है। तथोत्पत्तिका अर्थ है तथा उत्पत्ति। साधनके होनेपर साध्यकी उत्पत्तिका नाम है तथोत्पत्ति। अन्यथानुत्पत्ति। अन्यथा ऐसा न हो तो अर्थात् साध्यके अभावमें साधनकी अनुत्पत्तिका नाम है अन्यथानुत्पत्ति। इसी विषयको सूत्रमें कहते हैं।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

इदमस्मिन् सत्येव भवति असति तु न भवत्येवेति ॥३-१२॥

तथोत्पत्ति व अन्यथानुपपत्तिकी मुद्रा—यह इसके होनेपर ही होता है और यह इसके न होनेपर नही ही होता है, इस प्रकारका ज्ञान होना सो व्याप्तिज्ञान है। अर्थात् साध्यके होनेपर ही साधन होता है तब तो साधन देखकर साध्यका निश्चय किया जायगा ना। अग्निके होनेपर ही धुवाँ होवे तब धुवाँ देखकर अग्निका ज्ञान बन सकेगा। यह तो है तथोत्पत्ति, जिसका फलित अर्थ है यह साधनके होनेपर साध्यका होना। वास्तविक प्रयोग तो यह है कि साध्यके होनेपर ही साधनका होना यह है तथोत्पत्ति। तब यह कहेंगे कि नियमसे यह साधन है। तो साध्यके न होनेपर साधन होता ही नही ऐसे ज्ञानका नाम है, अन्यथानुत्पत्ति। इन दोनोंका अर्थ एक ही है, पर जाननेकी पद्धति दो हैं। इससे यह निर्णय करिये कि साधनका स्वरूप बस अन्यथानुत्पत्ति है। इसका स्वरूप लोग भिन्न-भिन्न तरहसे मानते हैं, जिसका वर्णन अभी ही इस प्रसंगमें किया जायगा। लेकिन उनमें दोष सम्भव है। किन्तु, अन्यथानुत्पत्तिमें कोई दोष सम्भव नही है। साध्य न हो तो साधन होता ही नही है। तब ना साधन होनेपर यह निश्चक निर्णय करते हैं कि अवश्य साध्य है। इस प्रकार तथोत्पत्ति और अन्यथानुत्पत्तिसे व्याप्तिका ज्ञान होता है। देखिये—आत्मचिन्तन चला ना, तर्क वितर्क विचार हुआ ना। तो जहाँ चिन्तन चले। अविनाभावका सम्बन्ध जान जाय सो तर्क ज्ञान है।

प्रमाणसंख्या बनानेकी विधि—ज्ञान कितने होते हैं? इस सम्बन्धमें अनेक दार्शनिकोंने अपनी अपनी बात रखी और उसमें कुछ प्रमाण फालतू मान लिये गये, कुछ प्रमाण छोड़ दिये गए और अपनी संख्या बनाली। जैसे अभाव प्रमाण मानना, उपमान प्रमाण मानना ये सब फालतू बातें हैं क्योंकि अभाव प्रत्यक्षगम्य होता है, अनुमान आदि गम्य होता है। इन सब प्रमाणोंसे जैसा सद्भाव जाना जाता है वैसा ही अभाव जाना जाता है। उपमान मान लिया तो उपमानका विपरीत जो ज्ञान है उसको माना ही नही गया। उपमानमें सदृशता आई, किन्तु विसदृशताका कोई ज्ञान नही माना। अब स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क इनका जिकर ही नही। तो कितना व्यवस्थित ढङ्ग है ज्ञानके भेद बतानेमें कि कोई बात छूट न जाय और कोई बात दुबारा आ न जाय। इस प्रकारसे यह भेद किया गया है। परोक्षके भेद स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये ५ हैं। जिनमेंसे तर्क प्रमाणका यह प्रसङ्ग चल रहा है। अब जो ऊपर बताया है कि तथोपपत्ति और अन्यथानुत्पत्तिसे व्याप्तिका ज्ञान होता है तो इन दोनोंको किसी दृष्टान्तमें ढालकर किसी व्यक्तिके उदाहरणमें जमाकर जिससे कि सुखपूर्वक ज्ञान हो जाय सूत्र कहते हैं—

यथाग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च ॥ १३ ॥

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

तथोत्पत्ति व अन्यथानुपपत्तिका उदाहरण जैसे अग्निके होनेपर ही धुवां होता है यह हुआ तथोत्पत्ति और अग्निके अभावमें धुवाँ होता ही नही है यह हुआ अन्यथानुपपत्ति। यह हेतुके स्वरूपकी समीचीनता समझनेके लिए खास लक्षण है अनुमान प्रमाणमें जो हेतु दिया जाय उस हेतुमें गदि यह बात ढूँढनी है कि यह सच्चा हेतु है या नहीं, तो उसकी कुञ्जी अन्यथानुपपत्ति है। तर्कसे जानो कि इस साध्यके बिना यह हेतु नही हो तकता इस कारणसे यह हेतु सही है। अब यहां शङ्काकार कहता है कि तर्क ज्ञान तो अप्रमाण है फिर उसका कारण बताने, स्वरूप बतानेका परिश्रम क्यों कर रहे हो ? उत्तर देते हैं कि कैसे अप्रमाण है तर्क ज्ञान ? क्या वह गृहीतग्राही है, इस कारण अप्रमाण है ? या वह विसम्वाद मचाने वाला है या प्रमाण विषय परिशोधक है ? इससे अप्रमाण है। विकल्पोंका तात्पर्य यह है कि गृहीतग्राही उसे कहते हैं जो एक बार किसी प्रमाणको ग्रहण करले, उसे फिर दुबारा ग्रहण करना, जाने हुएको जानना, पीसे हुएको पीसना वह गृहीतग्राही है। जैसे गेहूँ पीसा गया और उस पीसे हुएको फिर पीसा गया तो उससे अच्छा बारीक आटा निकला तो इसमें कुछ बुरा तो नही हुआ। उस पिसे हुए आटेको पीसनेसे कुछ विशेषता नजर आई है तो उसे फालतू न कहा जायगा। फायतू तो तब कहा जाय जब उसमें कोई विशेषता न आये ! इसी तरह किसी पदार्थको भी ज्ञान जानले, अगर उसी पदार्थको कुछ विशेषताके साथ दूसरा ज्ञान जाने तो गृहीतग्राही नहीं है। जैसे कुछ जानकारी न हो और बारबार वही रटा करे तो गृहीतग्राही है। विसम्वाद मचाने वाले इस विकल्पका अर्थ है कि उसमें कोई विवाद उठाये, विकल्प मचे, कि कर्तव्यमूढ़ता आये, अनध्यवसाय जगे, संशय हो जाय, विपर्यय हो, कोई विसम्वाद हो उसके गायने है विसम्वाद ! तीसरे विकल्पका अर्थ है कि प्रमाणके विषयका परिशोधक अर्थात् जैसे अनुमान प्रमाणका जो विषय हो उसी विषयका समर्थन करे कोई तो उसे कहते हैं प्रमाण विषयपरिशोधक ! जो तर्क अप्रमाण है या विसम्वादी होनेसे अप्रमाण है अथवा प्रमाणके विषयका परिशोधक है, इससे अप्रमाण है।

प्रत्यक्ष द्वारा तर्कके विषयका ग्रहण किये जानेकी अशक्यता—गृहीतग्राही होनेसे तर्क अप्रमाण है यह विकल्प युक्तिसंगत नही है क्योंकि यदि तर्कका विषय किसी प्रमाणसे गृहीत है तो बताओ तो किस प्रमाणसे गृहीत है। साध्य और साधन की निर्बाधरूपसे समस्त रूपसे व्याप्ति ज्ञानका नाम तर्क है ना तो साध्य साधनकी व्याप्ति क्या प्रत्यक्षसे जानी जाती है या अनुमानसे। प्रत्यक्षसे तो किसी प्रकार भी न तो व्याप्ति नहीं जानी जा सकती। प्रत्यक्षसे तो जो सामने है वह जान लिया गया। अब यह इसके अभावमें न हुआ करे यह बात तो प्रत्यक्ष नही जानता। क्योंकि प्रत्यक्ष तो अविचारक है उसमें कल्पनायें नही उठा करती, प्रत्यक्ष निर्विकल्प है। यह तो सामने मौजूद मात्रको जानता है। दूर देशमें, दूर कालमें या सूक्ष्म बातमें प्रत्यक्षका अवलम्बन नहीं है। असन्निहित अर्थको प्रत्यक्ष नही जानता क्योंकि जो दूर

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

देशकी बात है, बहुत सूक्ष्म बात है उसके जाननेमें विशदता नहीं आती। जैसे यहां बैठे हुए श्रवण बेलगोलके बाहुबलिका स्मरण कर रहे हैं। ज्ञान सही है। विसम्वाद नहीं उत्पन्न हो रहा मगर ज्ञानमें विशदता नहीं है। जब बाहुबलि प्रतिमाके सामने आप हों तब विशदता है। तो प्रत्यक्षके द्वारा साध्य साधनकी व्याप्ति नहीं जानी जा सकती। साधन साध्य जैसे सत्व अनित्यत्व आदिक हैं ना, सो! सत्वका अनित्यके साथ व्याप्ति लगाते हो, जैसे धूमकी अग्निके साथ व्याप्ति लगाते हो तो ये सारीकी सारी बातें सत्ता होना, अनित्य होना, नित्य होना, अग्नि होना, आदिक उपस्थित पदार्थ की तरह प्रत्यक्षमें विशद रूपसे प्रतिभासमें नहीं आ रही। जैसे किसीने कहा कि सब कुछ क्षणिक है, सत्व होनेसे, तो सत्व भी तुम्हारे हाथपर धर दें, और अनित्यत्व भी तुम्हारे हाथपर धर दें कि देख लो। तो ये प्रत्यक्षसे ही जाने जा रहे यह बात इस समय क्षणिकवादियोंके प्रति कही जा रही है। इससे उन्हींके अनुभावके उदाहरण देकर बतला रहे हैं। यदि ये समस्त भाव प्रत्यक्षमें विशद हो जायें तो प्राणिमात्र सर्वज्ञ बन जायगा, क्योंकि तुम्हारे सत्वका प्रत्यक्ष कर लिया, क्षणिकत्व भी प्रत्यक्ष कर लिया तो सभी प्रत्यक्ष हो गए। फिर तो अनुमान प्रमाण भी अनर्थक हो जायगा। जब प्रत्यक्षसे ही उस वस्तुकी बात जान ली गयी तो अनुमान बनानेकी क्या जरूरत है। हाथपर अग्नि धर कर दिखा दे कोई, गर्म है और फिर भी अनुमान बनावे कि अग्नि गर्म होती है, तो अनुमान बनानेकी क्या आवश्यकता है? इससे तर्क ज्ञान गृहीतग्राही नहीं है और फिर प्रत्यक्ष तो अविचारक होता है। विचार कुछ नहीं रखता। विकल्प नहीं करता। प्रत्यक्षमें चिन्तन नहीं उठा करता। तो प्रत्यक्ष इस बुद्धिके व्यापारको करनेमें असमर्थ है कि वह सोचे कि जितने जो कुछ भी धूम हैं, चाहे इस देशमें हों अथवा अन्य देशमें हों आज हुये, पहिले थे, आगे होंगे, वे सब अग्निसे उत्पन्न होते हैं। अग्निके सिवाय अन्य पदार्थोंसे धुवां उत्पन्न नहीं होता। ऐसा विचार ऐसा व्यापार प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। प्रत्यक्ष तो मात्र सामने ठहरे हुए पदार्थमें व्यापार करता है। यदि कहो कि सामने रहने वाले पदार्थोंमें यदि प्रत्यक्षसे व्याप्ति जान ली फिर वही पुरुष वैसी ही सब चीजें संग्रहीत करके बुद्धिमें सबके उपसंहारसे व्याप्ति को जान लेता है? उत्तर देते हैं कि यह बात भली नहीं है उसमें सबका उपसंहार नहीं बन सकता। जहां जहां धुवां होता वहां वहां अग्नि होती। धुवां अग्निसे ही होता है अन्यसे नहीं होता, इस बातको प्रत्यक्ष जान गया। वह तो निर्विकल्प होता है। सामने देखकर भी यह समझना कि यह नीला है यहां तक तो प्रत्यक्ष है नहीं। जहां विकल्प उठते वह प्रत्यक्ष नहीं रहा। इस प्रत्यक्ष द्वारा तर्कके विषयको ग्रहण करनेकी बात कैसे हुई? तर्कका विषय ग्रहीतग्राही नहीं है और तर्क इस कारण प्रमाणभूत है।

प्रत्यक्षपृष्ठभावी विकल्पोंसे भी व्याप्तिका अग्रहण—यहां शङ्काकार शङ्का करता है कि साध्य साधनकी व्याप्तिका ज्ञान प्रत्यक्षसे नहीं हो पाया तो न सही

किन्तु प्रत्यक्षके बाद जो विकल्प उठते हैं उन विकल्पोंसे तो साध्य साधनकी व्याप्तिका ज्ञान हो जायगा, फिर तर्क नामक प्रमाण माननेकी क्या जरूरत है ? इसका उत्तर है कि प्रत्यक्षके बाद जो भी विकल्प उठते हैं उन विकल्पोंका उस ही एक वस्तुके विषयमें ही तो निर्णय चलता है सो उन विकल्पोंसे भी सबका उपसंहार करते हुए व्याप्ति ग्रहण नहीं होता जैसे कि जहाँ जहां धुवाँ होता है वहां वहाँ अग्नि होती है । सारे देश, सारे काल, सर्वत्र सर्वका उपसंहार करके जो व्याप्ति बनाई गई है वह प्रत्यक्षके बाद होने वाले शिलाका भी विषय नहीं है । और कदाचित् मान लो कि है विषय तो वह विकल्प इस ही ढङ्गका होगा जो कि प्रत्यक्ष ज्ञानसे जुदा है । उस ढंगका नाम तर्क ज्ञान है । प्रत्यक्ष तो सबका उपसंहार नहीं कर सकता और न व्याप्तिका ग्रहण कर सकता, क्योंकि प्रत्यक्षका साध्य साधनसे सम्बन्ध जोड़नेका काम नहीं है । जब सम्बन्ध निश्चित् न हो सका और फिर भी तुम प्रत्यक्षको ही व्याप्तिका ज्ञान मान बैठोगे तो अन्य देशान्तरोंमें साधन साध्यको जाना ही नहीं जा सकता । प्रत्यक्षसे व्याप्तिका ग्रहण होना असम्भव है ।

प्रत्यक्षसे कारणकार्यकी व्याप्तिके ग्रहणकी व कार्यके अकारणताकी आशङ्का अब शङ्काकार कह रहा है कि देखो ! धुवाँ जो है वह अग्निका कार्य है । वह धुवां अपने कार्य धर्मका अनुसरण करता है । कार्यका धर्म क्या है ? कारणके होनेपर होना, यह है कार्यका धर्म उसीको तो कार्य कहते हैं । तो जब हमने कार्यको देख लिया और कार्यका धर्म है यह कि कारणके होनेपर ही होना तो कार्यको प्रत्यक्ष से जानकर ही निर्णय तो हो गया कि अग्निके होनेपर ही धुवां होता है । कार्यका हमने प्रत्यक्षसे देखा और कार्यमें यह धर्म पड़ा हुआ है कि कारणके होनेपर ही होना । तो इसका अर्थ यह हुआ ना कि कार्यको देखकर इसकी व्याप्ति बन गई । किस तरह कि प्रत्यक्षसे तो देखा कार्य और कार्यमें पड़ा है यह धर्म, कि कारणके होनेपर ही होना । तो जब हमने प्रत्यक्षसे कार्यको देखा तो प्रत्यक्षसे ही व्याप्ति बन गयी, एक बात । दूसरी बात यह कहना है कि कभी-कभी कार्य कारणके अभाव होनेपर भी हो जाता है । जैसे सिगड़ीमें पत्थरके कोयलेकी आग जलायी । खूब धुवां उठता है और इसी बीच झट सिगड़ी उठाकर घर आये दूसरेके घरमें । वहांपर अब धुवां है और आग नहीं । तो कारणके अभावमें भी जब कार्य देखा जाता है तो कार्यपनेका भी तो उल्लंघन हो गया । फिर कार्यके साथ तुम्हारी व्याप्ति क्या ठहरी ? उत्तर देते हैं कि इस तरह कार्यको यदि अकारणक कहने लगे अर्थात् कार्य कारणके बिना भी हो जाता है । अग्नि न थी और लो कार्य हो गया, अग्नि हटा दी और लो कार्य बना हुआ है । सिगड़ी वहांसे उठाकर अलग घर दी पर कमरेमें धुवां बना हुआ है । कारणके होनेपर कार्य अगर होता तो कारणके हटानेपर कार्यको भी तो हट जाना चाहिये, इससे मालूम होता कि सब बातें अकारणक हैं । किसीके कारणसे कुछ नहीं होता, ऐसा माननेपर तो अग्निके हटनेपर धुवां अगर हो गया सो अकारणक है धुवाँ ।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

यों धुवांको अकारणक माना जाय तो धुवां अपने स्वभावसे जहाँ चाहे रहे तो कहीं धुवां हटाया नही जा सकता। सब जगह धुवां एकदम फैल जाना चाहिये क्योंकि धुवाँ अकारणक है। फिर धुवां किसी जगह हो यह क्यों ? वह तो फिर सभी जगह हो, एक बात। दूसरी बात यह है कि यह भी निश्चय न हो सकेगा कि अग्निके होनेपर ही धुवाँ होगा। और फिर, तीसरी बात—उस धुवेंको यों अकारणक मान लेंगे तो जो अकारणक है, जिसका कोई कारण नही है वह तो असत् है। जैसे गधेका सींग, असत् है क्यों असत् है कि उसका कोई कारण हो नही है। न कोई उपादान कारण है न कोई निमित्त कारण है। तो जैसे गधेका सींग कभी भी नही पाया जाता इसी इसी तरह धुवां भी कभी भी नही पाया जाना चाहिये। और, पाया जाय अगर धुवां तो सब जगह सब समय सर्व आकारोंसे पूरेमें फैलकर पाया जाना चाहिये क्योंकि धुवां अकारणक है। चौथी बात—कि धुवां स्वलक्षणात्मक हो गया आपकी निगाहमें, अकारणक है। शंकाकार क्षणिकवादी है और क्षणिकवादी धुवाँको ही क्या सारे पदार्थोंको अकारणक मानता है। जितने भी जो कुछ पदार्थ हैं वे अपने आप होते हैं, तुरन्त नष्ट हो जाते हैं, उनका कोई कारण नही है। तो धुवां एक भाव हो गया। स्वलक्षण हो गया। अब यदि स्वभाव स्वभाववान् पदार्थके अभावमें भी हो जाय तो पदार्थ निःस्वभाव हो जायगा। देखिये—अब धुवां स्वलक्षणरूप माननेपर स्वभावमें आया तो पदार्थके अभावमें यदि स्वभाव होने लगे तो इसका अर्थ यह है कि पदार्थ स्वभावित हो गया। और स्वभावका सत्त्व भी नही रहा। इससे यह शंका करना क्षणिकवादियोंको व्यर्थ है कि दुनियामें कार्य कुछ भी नहीं कहलाता। क्षणिकवाद सिद्धान्तमें कारण कार्यभाव नही माना। यदि कारण भाव व्यवस्थित ढंगसे मान लें तो क्षणिकता माननेमें बाधा आयगी और उनको केवल यह पड़ी है कि वस्तु क्षणिक सिद्ध हो। इसीपर उनका सिद्धान्त है। तो क्षणिक कहकर कार्यका निषेध करके ये तर्क ज्ञानको उड़ाना चाहते हैं कि तर्क नामका ज्ञान कुछ नही है। फिर प्रमाण किसे सिद्ध करना चाहते ?

प्रत्यक्षसे साध्यसाधनके सर्वोपसंहारकी अशक्यता - और जो यह कहा कि जो कुछ व्याप्ति समझी जाती है वह सब प्रत्यक्षसे जान ली जाती है, क्योंकि प्रत्यक्षसे देखा धुवां और धुवां माना गया है कार्य। कार्य होता है अपने धर्मको लिए हुए अर्थात् कारणके होनेपर होना यह कार्यका धर्म है। तो यह बात देखते ही जान ली गई तो व्याप्तिका ज्ञान प्रत्यक्षसे ही हो गया। यों यह बात नही कह सकते, क्योंकि प्रत्यक्षसे अगर व्याप्तिका ज्ञान मानते हो तो प्रत्यक्षसे तो एक ही जगहकी व्याप्ति बनी। जहां जहां धुवां होता है वहां वहां अग्नि होती है। इसमें सो प्रत्यक्षकी गति नही। यह तो सामने वाले पदार्थोंको ही देखेगा। तो निश्चयके समयमें जो चीज पायी जा रही है उस व्यापकके साथ ही व्याप्यकी व्याप्ति बन गई। फिर सब जगह तो न बनेगी। मान लो— प्रत्यक्षसे देखा था—रसोई घरमें जहाँ अग्नि भी थी, धुवाँ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

ओ था, व्याप्ति जान ली तो प्रत्यक्षसे वहींकी व्याप्ति जानी । अब यहींके धुवांके सदृश जो पर्वतमें धुवां दिख रहा उससे व्याप्ति तो न लग बैठेगी । यदि कहो कि उस धुवांके सदृश जो धुवां है उसमें व्याप्ति लग जायगी तो वह धुवां तो अपूर्व हो गया । पहिले जाना हुआ नही रहा, यह वही तो नही है तब गृहीतग्राही न रहा, गृहीतग्राही हो गया जिसे पहिले किसी अन्य प्रमाणसे न जाना था उसे जाना जा रहा। अगृहीतग्राहीको तो तुम प्रमाण मानते ही हो । जो किसी प्रमाणसे न जानी गयी हो ऐसी नई चीजको जानना उसे कहते हैं अगृहीतग्राही। जिसे पहिले जाना, जितने अंशमें जाना उतने अंशमें रटते रहना उसे कहते हैं गृहीतग्राही । तो जैसे पीसे हुए आटेको पीसना व्यर्थ है ऐसे ही जाने हुएको भी जानना व्यर्थ है । यदि उसका कुछ फल मिलता है तो समझना चाहिए कि हमने कुछ नये अंशोंमें जाना तब फल मिला । जैसे कि पीसनेसे यदि कुछ फायदा है तो समझना चाहिये कि कुछ नया काम हुआ, वही काम नही हुआ । उससे और बारीक पिस गया । यदि कहो कि प्रत्यक्षसे पहिले हमने किसी जगह धुवां और अग्निको व्याप्ति देखा था । मानो अग्निके होनेपर ही धुवां होता है यह व्याप्ति हमने वहां समझ रखी थी प्रत्यक्षसे, उससे फिर हम यहांके साध्यका अनुमान कर रहे हैं । पर्वतमें अग्नि है धुवां होनेसे । अब यह अनुमान कर रहे हैं ऐसा कहनेपर तो यह आपत्ति आयगी कि फिर विशेष इष्टानुमान बने अर्थात् रसोईघरमें यदि यह देखा था कि खैरकी लकड़ोकी आगका अनुमान बनाना चाहिये क्योंकि उससे अनुमान बना रहे, लेकिन इस धुवां साधनके अन्यदेशादिकमें रहने वाले ऐसे साध्यके साथ व्याप्ति है नहीं । प्रत्यक्षसे तर्कका विषय सिद्ध नहीं होता ।

स्मृति व प्रत्यभिज्ञानकी तरह तर्ककी भी प्रमाणसंगतता—देखो ! जैसे स्मृतिज्ञान प्रमाणभूत है । किसीका स्मरण हो तो उसमें क्या कुछ विसम्वाद भी होता है ? नही होता । प्रत्यभिज्ञानसे जाना -वह वही देवदत्त है. यह रोझ गायके समान है । यह रोझ भैंससे उल्टी है आदिक इसमें कोई विसम्वाद होते हैं क्या किसीसे, तो वह भी प्रमाण है । तर्क मायने सम्बन्ध प्रत्यति । चिन्तन करना, ऐसा न हो तो ऐसा न होगा । वकालतमें जितनी युक्तियाँ हैं, कानून हैं, जो कुछ हैं उनका तर्कसे अधिक सम्बन्ध है । तो तर्कका जो विषय है वह विषय प्रत्यक्षके द्वारा ग्रहणमें नही आता ।

साध्य साधनकी व्याप्तिका प्रत्यक्ष और अनुमान दोनोंसे ग्रहण अब शंकाकार कह रहा है कि परिशेषसे (फलितभावसे) एक निष्कर्ष रूपसे रसोईघरमें देखी हुई आगके समान, धुवांके समान व्यापक जो धूम है उससे पहाड़में भी वैसी ही अग्निका अनुमान करके उस अग्निकी व्याप्ति बन जायगी । तो उत्तरमें पूछते हैं कि उस पारिशेष्यका अर्थ क्या है ? क्या उस व्याप्तिको प्रत्यक्षसे जाना अथवा व्याप्तिको अनुमानसे जाना। प्रत्यक्षसे तो नही जाना क्योंकि अन्य देशमें रहने वाला जो अनुमेय पदार्थ है उसकी प्रत्यक्षसे जानकारी नहीं होती । अगर हो जाय पर्वतमें रहने वाली

To report error, please contact vikasnd@gmail.com   Version 1

आगकी प्रत्यक्षसे जानकारी हो गयी तो अनुमान कहना अनर्थक है उसकी आवश्यकता ही नही । यदि कहो कि अनुमानसे जाना हमने उनकी व्याप्ति तो व्याप्ति जान लें तब व्याप्ति बनेगी । यों इतरेतराश्रय दोष है । यदि अन्य अनुमानमें व्याप्ति जानोगे तो उस की व्याप्ति अन्य अनुमानसे, यों अनवस्था दोष होगा । इससे यह निर्णय हुआ कि साध्य और साधनके अविनाभावका ज्ञान प्रत्यक्षसे नही होता । अग्निके होनेपर ही धुवां होता है । अग्निके न होनेपर धुवां नहीं होता, इस प्रकारका निर्णय प्रत्यक्षके द्वारा नही होता । तर्कके द्वारा होता है । प्रत्यक्षने तो अग्नि देखा, तो अग्नि देखा । अब प्रत्यक्षका काम खतम । इसके आगे प्रत्यक्ष और काम नही करता । धुवां देखा तो धुवाँ दिख गया इसके आगे प्रत्यक्षका कोई काम नही । अब उन दोनोंकी व्याप्ति लेना, अविनाभाव समझना यह तो तर्क ज्ञानका काम है । प्रत्यक्षसे व्याप्ति नही जाना जाता, इसका अर्थ यह है कि साध्य और साधनके अविनाभाव सम्बन्धका ज्ञान नहीं होता, अविनाभाव सम्बन्धका नाम व्याप्ति है । अग्नि होनेपर ही धुवेंका होना इस का नाम व्याप्ति है । एकके साथ एकका जोड़ना, व्यापना, रहना इसको कहते हैं व्याप्ति यों प्रत्यक्षसे व्याप्तिका ज्ञान नहीं बन सका ।

अनुमानसे तर्कके विषयका अग्रहण—कोई कहे या यह तुम्हारा जो दूसरा विकल्प था कि तर्क ज्ञान गृहीतग्राही है क्योंकि उसका ग्रहण अनुमानसे हो जाता है । दूसरे विकल्पकी बात कहोगे तो वह भी युक्त नही है क्योंकि साध्य साधनका सर्व जगहके साध्य साधनका उपसंहार करते हुए व्याप्तिको स्पष्टतया जान जायें अनुमानसे, ऐसा अनुमानका विषय नही है । अनुमानका विषय तो प्रकृत पक्षमें साध्यकी सिद्धि करता है । पर्वतमें अग्नि है धुवां होनेसे, इस अनुमानका इतना विषय है कि पक्ष जो पर्वत है उसमें अग्नि सिद्ध कर देना, अनुमानका यह विषय नही है कि दुनियामें जहां जहां धुवां है वहाँ वहां अग्नि है या अग्निके न होनेपर धुवां नही है ऐसा ज्ञान कर लेना यह अनुमानका काम नही है । तब यह सिद्ध हो गया कि नही, तो न प्रत्यक्षमें सामर्थ्य है कि साध्य साधनका सर्वोपसंहार रूपसे व्याप्तिको जान जाय और न अनुमानमें सामर्थ्य है कि साध्य साधनके अविनाभावको सर्वोपसंहाररूपसे जान जाय । देखो इस समय सामने तीन ज्ञानोंकी चर्चा चल रही है प्रत्यक्ष, अनुमान और तर्क । खूब निरखलो तीनोंके भिन्न भिन्न विषय हैं । प्रत्यक्षका विषय है कि जो सामने है उसे तुरन्त जान जाय । अनुमानका विषय है कि पक्षमें साध्यको सिद्ध कर दे और तर्कका विषय है कि लोकमें सर्वत्र जहां जहां साधन है, साध्यका ज्ञान व्याप्ति बना दे । साध्यके न होनेपर साधनके न होनेका ज्ञान करा दे । यह बात न अनुमान कर सकता न प्रत्यक्ष कर सकता, यह तो तर्क ज्ञानसे ही सम्भव है । इससे तर्क ज्ञान गृहीतग्राही नही है । उसका विषय अलग है और वह बराबर प्रमाणभूत है ।

योगिप्रत्यक्षसे भी व्याप्तिके ज्ञानकी अशक्यता—ग्रन्थकार कहते हैं

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

कि हम लोगोंका प्रत्यक्ष व्याप्तिके जाननेमें सामर्थ्य नहीं रखता है सो योगियोंके प्रत्यक्ष के द्वारा व्याप्तिका ज्ञान हो जाता है इस कारण व्याप्तिका ज्ञान करनेके लिए तर्क नाम का प्रमाण नही माना जाना चाहिये। उत्तर देते हैं कि यह भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि योगियोंका भी प्रत्यक्ष आखिर प्रत्यक्ष ही तो है। प्रत्यक्ष अविचारक होता है अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञानमें विकल्प नही उठा करता है, न विचार चला करते हैं। तो प्रत्यक्ष विचार वाले विकल्प वाले व्यापारोंको करनेमें असमर्थ है। चाहे योगियोंका प्रत्यक्ष हो चाहे हम लोगोंका प्रत्यक्ष हो, प्रत्यक्षमें विचार व्यापार करनेकी सामर्थ्य नही है। और, फिर यह बतलावो कि व्याप्तिका ज्ञान करने वाले योगियोंका प्रत्यक्ष उत्पन्न कैसे हो गया। क्या विकल्प मात्रके अभ्याससे बन गया या अनुमानके अभ्याससे बन गया अर्थात् उन योगियोंने साध्य साधनके बारेमें विकल्पोंका अभ्यास किया है इस कारणसे योगियोंका प्रत्यक्ष व्याप्तिके ज्ञानको करने वाला बन गया या अनुमानका अभ्यास किया है, तब प्रत्यक्ष व्याप्तिका ज्ञान करने वाला बना। प्रथमपक्ष तो वह नही सकते क्योंकि विकल्पके अभ्याससे योगिप्रत्यक्ष बना है तो जैसे कामशोक आदिकके ज्ञान अप्रमाण हैं, मिथ्या हैं, इसी प्रकार योग प्रत्यक्ष भी मिथ्या बन जायगा क्योंकि उसने विकल्पोंका अभ्यास किया। किसी प्रभुका ज्ञान, बहुत ऊँचे योगका ज्ञान विकल्पोंमें लिपटा रहे तो उस ज्ञानको प्रमाण मानोगे क्या? वह तो मिथ्या ज्ञान है। दूसरे पक्षकी बात यों युक्त नही है अर्थात् अनुमानके अभ्याससे व्याप्तिका ज्ञान करने वाले योगिप्रत्यक्षकी उत्पत्ति होती है, यह बात यों युक्त नही है कि इसमें अन्योन्याश्रय दोष होता है। व्याप्तिके विषयमें योगियोंका प्रत्यक्ष बन जाय तब तो अनुमान ज्ञान बने और जब अनुमान ज्ञान बने तो अनुमानके अभ्याससे योगियोंका प्रत्यक्ष बन सके। खैर, मान लो कि योगिप्रत्यक्ष है तो भी उस प्रत्यक्षके द्वारा जो पदार्थ जान लिया, जैसे प्रकृतमें साध्य साधनकी व्याप्ति जान ली तो जब प्रत्यक्षसे जान लिया गया तो उससे अनुमान करना व्यर्थ है। जैसे स्पष्ट जो चीज दिखती है उसमें अनुमान कौन कर सकता है? साध्य साधन विशेषमें यदि स्पष्ट ज्ञान बन गया प्रत्यक्षसे और फिर भी अनुमान करने बैठ रहे हों तो फिर सभी प्रत्यक्षोंमें अनुमान करते रहो। फिर स्वरूपा-व्यक्षसे प्राप्ति ही न होगी अर्थात् प्रत्यक्षज्ञानसे फिर कोई काम ही न बनेगा। प्रत्यक्ष से जान लेनेपर भी अनुमान बनाना जरूरी हो गया।

योगिप्रत्यक्षसे परार्थानुमानकी भी व्यवस्थाका अभाव—यदि कहो कि योगियोंको जो अनुमान बनाना पड़ता है सो अपने ज्ञानके लिए नहीं, खुद तो वह प्रत्यक्षका ही ज्ञान करता है पर दूसरोंके लिए उनका अनुमान चलता है अर्थात् योगी पुरुष दूसरोंके समझानेके लिये अनुमानका प्रयोग करते हैं। तो पूछा जा रहा है कि योगी पुरुष परार्थानुमानसे दूसरोंको समझाते हैं तो किस प्रकारके दूसरे लोगोंको समझाते हैं? जिन्हें समझा रहे हैं उनको व्याप्तिसे ग्रहण किया है या नही? यदि व्याप्तिको ग्रहण करने वाले लोगोंको योगी अनुमानसे समझा रहा है तो बतलावो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

उन्होंने व्याप्ति किस प्रमाणसे ग्रहण की ? अथवा ग्रहीत व्याप्तिक बनकर योगी समझा रहे हैं या अगृहीत व्याप्तिक होकर समझा रहे हैं। ग्रहीत व्याप्तिक होकर समझाते हैं तो किस प्रमाणसे व्याप्ति ग्रहीत की गई ? स्वसंवेदन ज्ञानसे तो व्याप्ति का ग्रहण किया नही जा सकता क्योंकि स्वसम्वेदन ज्ञानका विषय व्याप्ति है ही नही, स्वसम्वेदन तो निर्विकल्परूपसे अपने ज्ञानमात्र आत्माका सम्वेदन करेगा। धुवाँ और आगके पचड़ेमें पड़ेगा क्या ? इन्द्रियजन्य ज्ञानसे भी साध्य साधनके अविनाभावका ज्ञान नही बन सकता क्योंकि इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष तो केवल उस समयकी उस वस्तुको बता देगा। बिना विचार उठाये, मनोविज्ञानसे भी व्याप्तिकी प्रत्युत्पत्ति नही होती अर्थात् प्रत्यक्षरूप मनोविज्ञान तर्करूप नहीं है यह वह सम्बन्ध जानता है तो तर्क बन ही जायगा। तो यों मनोविज्ञानसे भी व्याप्तिका ग्रहण नही होता और फिर योगि-प्रत्यक्षके द्वारा व्याप्तिका ग्रहण नही होता और फिर योगिप्रत्यक्षके द्वारा व्याप्ति जान ली जाय तो अनुमान व्यर्थ हो जायगा। स्पष्ट ज्ञान हो गया फिर अनुमानकी क्या आवश्यकता ? यदि यह कहो कि जिस पुरुषने व्याप्तिका ग्रहण नही किया है ऐसे पुरुषको समझाया जा रहा है, तो भला जिसे व्याप्तिका ज्ञान नहीं है उसका समझाना बन ही नही सकता। यदि बिना व्याप्ति ग्रहण किये ही समझाने लगे कोई तो कुछसे कुछ साध्य बता दिया जायगा। व्याप्तिकी तो आवश्यकता रही नही। जैसे यहां पानी है धुवां होनेसे। तो जब व्याप्ति ग्रहण किये बिना भी अनुमान पैदा होने लगे तो कुछ से भी कुछ अनुमान कर लिया जा सकता है।

मानसप्रत्यक्षसे भी व्याप्तिके ज्ञानकी व्यवस्थाका अभाव—अब तर्क ज्ञानको न मानने वाला एक यौग दार्शनिक शंका कर रहा है कि साध्य साधनके अविनाभावरूप व्याप्तिको मानस प्रत्यक्षसे जान लिया जाता है। उत्तरमें कहते हैं कि अभी तत्त्व समझा ही नही है। तुम्हारा प्रत्यक्ष तो तब उत्पन्न हुआ करता है जब इन्द्रिय और पदार्थका सन्निकर्ष हो जाता है। यौग अर्थात् नैयायिक लोग प्रत्यक्षकी उत्पत्ति सन्निकर्षसे मानते हैं। चक्षु इन्द्रिय और पदार्थ ये दोनों भिड़ गए तब उसका ज्ञान हुआ। रसना इन्द्रिय और भोजन इन दोनोंका सन्निकर्ष हुआ तब रसका ज्ञान हो सका, यों इन्द्रिय और पदार्थोंके सन्निकर्षसे प्रत्यक्षकी उत्पत्ति मानी तो भला बतलावो तो सही कि मन तो है अणुस्वभाव बराबर। जैसे एक प्रदेशी अत्यन्त सूक्ष्म अणु होता है उतना है मन नैयायिक सिद्धान्तमें, तो अणु प्रमाण मनका एक साथ जगतके समस्त पदार्थोंके साथ सम्बन्ध बन ही नहीं सकता। जब सन्निकर्ष न बनसका तो प्रत्यक्ष भी न बन सका। फिर व्याप्तिका ज्ञान करनेका उपाय क्या रहा ? अब शंकाकार कहता है कि साध्य और साधन इन दोनों धर्मोंका किसी जगह विशेषमें व्यक्ति विशेषमें प्रत्यक्ष से ही सम्बन्ध जान लिया जाता है। जैसे रसोईघरमें बैठे हुए आप भोजन कर रहे हैं, आग और धुवाँ बराबर देख रहे हैं और उसका सम्बन्ध भी प्रत्यक्षमे जाना जा रहा है। उत्तर देते हैं कि भले ही एक जगह साधन प्रत्यक्षसे जान लिया गया तो सर्वोप-

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

संहाररूपसे संकलनरूपसे साध्य साधनकी व्याप्ति तो जानी नही जा सकती क्योंकि बताओ तुमने जो रसोईघरमें धुवाँ और अग्नि देखकर जो ज्ञान किया है और सम्बन्ध बनाया है तो उतने समयमें साध्य क्या रहा ? अग्नि सामान्य साध्य है या अग्नि विशेष साध्य है या अग्नि सामान्यविशेष उभयात्मक साध्य है। जो प्रत्यक्षमें व्याप्ति मानते हो कि धुवाँ जाना, अग्नि जाना प्रत्यक्षसे और सम्बन्ध जान लिया धुवाँ और अग्निका कि अग्निके होनेपर ही यह धुवां हुआ, तो यहाँ जो अग्नि समझा वह अग्नि सामान्य है या विशेष है या दोनों रूप है ? अग्नि सामान्यको यदि साध्यमें लेते हो तो ठीक है, अनुमानमें भी साध्य सामान्य सिद्ध किया जाता है। पर्वतमें धूम होनेसे अग्नि जो सिद्ध की जा रही वह सामान्य है चाहे किसी भी चीजकी अग्नि हो। चाहे पत्थर की चाहे लकड़ीकी, अग्नि सामान्य साध्य होता है क्योंकि विशेषरूपसे तो साध्य असिद्ध है। धुवाँसे खास प्रकारकी अग्नि नही जानी जा रही। यदि कहो कि अग्नि विशेष के साथ साधनका अन्वय ही नही होता। क्या ऐसी व्याप्ति कोई जानता है कि जहां धुवाँ होता है वहां खैरकी आग होती है, ऐसी तो कोई व्याप्ति नही लगाता। अग्नि विशेषके साथ साधनकी व्याप्ति नही है। कहो –सामान्य विशेष दोनों रूप साध्य है अग्नि तो उससे धूमका सम्बन्ध प्रत्यक्षसे तो सिद्ध न होगा, क्योंकि सब देश सब काल में रहने वाले धुवाँकी व्याप्ति की जा रही है। वह अग्नि सामान्य ही होगा। उस प्रकार जब साध्य साधनका सम्बन्ध सिद्ध न हो सका तो जहां जहां जिस जिस जगह धूमकी उपलब्धि है वहाँ वहाँ उस उस समय अग्निका सामान्य विशेष है, ऐसा अनुमान तो बनता नही। अग्नि सामान्यका अनुमान बनता है। अन्यथा यदि साधनसे कोई विशिष्ट साध्य सिद्ध किया जाय तो सम्बन्धका ग्रहण करना बनता नहीं, नही तो अनुमान ही उठ जायगा। इस कारण सारी बातें सोच विचारकर इस निर्णयपर आ जाइये कि व्याप्तिको ग्रहण करने वाला तर्क ज्ञान है और वह प्रमाणरूप है। जैसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष विसम्वादरहित होनेसे प्रमाणरूप है, स्मरण नामका ज्ञान परोक्ष होनेपर भी विवादरहित होनेसे प्रमाणरूप है। प्रत्यभिज्ञान भी परोक्ष होनेपर भी अपने विषयमें विवादरहित होनेसे प्रमाणभूत है। इसी प्रकार तर्क नामक ज्ञान भी अपने विषयमें प्रमाणभूत है।

ज्ञानका फल होनेसे ज्ञानमें अप्रमाणत्वका अनियम – अब शंकाकार कह रहा है कि व्याप्तिका जो ज्ञान है वह तो प्रत्यक्षका फल है। प्रत्यक्षसे देखा कि यह आग है, यह धुवाँ है। अब उसमें जो हम सम्बन्धका जो ज्ञान कर रहे हैं कि देखो ना, आग होनेपर धुवाँ हुआ है। इस धूमका और अग्निका परस्परमें सम्बन्ध है अविनाभाव, ऐसा जो ज्ञान किया अब वह प्रत्यक्षका फल है प्रत्यक्षसे जब जाना कि यह आग है, यह धूम है तो तुरन्त ही सम्बन्ध जाना तो सम्बन्धका जो ज्ञान है वह प्रत्यक्षका फल है और जो प्रमाणका फल होता वह अप्रमाण होता। प्रमाण प्रमाण है। प्रमाणका फल अप्रमाण है। अब इसका उत्तर देते हैं कि पहिली बात तो यह है कि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रत्यक्षज्ञान सम्बन्धको ग्रहण करता ही नहीं है। भले ही प्रत्यक्षसे जान लिया कि यह आग है, यह धुवाँ है। पर उनके बारेमें सम्बन्धका जानना यह प्रत्यक्षका काम नही है। यह विचारका काम है, तर्कका काम है। फिर दूसरी बात यह है कि जो यह कहा है कि प्रत्यक्षका फल होनेसे अप्रमाण है तो कोई भी ज्ञान किसीका फल रूप होनेसे अप्रमाण हो ऐसा नियम नही बनता। वह यदि अप्रमाणकी योग्यता रखता है तो अप्रमाण है प्रमाण होनेकी योग्यता रखता है तो प्रमाण है। यदि फलरूप होनेसे तर्क ज्ञानको अप्रमाण कह लिया जाय तो देखो विशेषणके ज्ञान होनेका फल है विशेष ज्ञान जिसमें चेतन हो वह आत्मा है, तो यहाँ विशेषण क्या हुआ ? चेतन। विशेष्य क्या हुआ ? आत्मा। तो चेतनका ज्ञान करनेसे जो आत्माका ज्ञान हुआ क्या वह भी अप्रमाण बन जायगा ? तुमने तो लकीर बना ली कि ज्ञानका जो फल हो सो अप्रमाण है। अब विशेषण ज्ञानका फल विशेष्य ज्ञान है। जैसे कोई यह नही जानता था कि लीची कैसी होती है उसको समझाया कि जो तेंदूके फल बराबर हो और ऊपरके छिलकापर निकट निकट उठा हुआ हिस्सा हो वह लीची है। अब सब आकार विशेषण बन गया। अब कहीं यह विशेषण देखकर ज्ञान कर लिया कि यह लीची है तो क्या यह ज्ञान अप्रमाण हो जायगा ? होता तो नही अप्रमाण। इससे सिद्ध है कि ज्ञानका फल होनेसे कोई अप्रमाण नही हुआ करता। यदि यह कहो कि विशेषणका ज्ञान करनेसे जो विशेष्यका ज्ञान होता है उसमें कुछ लाभ है अपना। क्या ? जो छोड़ने योग्य हो उसे छोड़ दिया जाता। जो ग्रहण करनेका हो उसे ग्रहण कर लिया जाता और जो उपेक्षा करने योग्य हो उसकी उपेक्षा कर दी जाती। तो ज्ञान उपमान और उपेक्षारूप बुद्धि उसका फल है विशेष्यज्ञानका भी फल है इसलिये विशेषण ज्ञान प्रमाण है। जो ज्ञानका फल हो केवल, वह प्रमाण नही माना गया है। यदि ज्ञानका फल कोई ज्ञान है और उस ज्ञानका भी कोई फल निकल आया तब तो ज्ञान प्रमाण बन गया। जैसे विशेषणका ज्ञान करनेसे विशेष्यका ज्ञान हुआ तो विशेष्यज्ञान फल हुआ ना। अब विशेष्य ज्ञान करनेसे कई द्रव्य छूट गए, कुछ अच्छी बात ग्रहण कर ली, कुछ फल पा लिया तो विशेष्य ज्ञानका फल और मिल गया तब तो विशेष्यज्ञान प्रमाण हुआ ना ? यदि ऐसा कहोगे तो यह बात तर्क ज्ञानमें भी है। प्रत्यक्षसे जान कर भी उसके सम्बन्धका जानना तर्क ज्ञान है और यह प्रत्यक्षका फल है। मगर तर्क ज्ञानका भी फल है। उसमें अनुमान बनता है। जो छोड़नेकी चीज है उसे छोड़ सकते हैं, ग्रहण वालेको ग्रहण कर सकते हैं। इस कारण तर्क ज्ञान अलग है और वह प्रमाण भूत है। यह कहना कि गृहीतग्राही होनेसे तर्क ज्ञान अप्रमाण है यह बात सत्य नही है।

तर्क ज्ञानमें विसंवादित्वका अभाव होनेसे प्रमाणता—अब दूसरा विकल्प यदि कहते हो कि तर्क ज्ञान अप्रमाण है विसम्वादी होनेसे। प्रश्न था तर्क ज्ञान इस कारण अप्रमाण है कि वह विसम्वादी है अथवा क्या इस कारण अप्रमाण है कि वह विसम्वादी है अथवा क्या इस कारण अप्रमाण है कि वह प्रमाणके विषयका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

परिशोधक है। अर्थात् प्रमाणने किसीको जो जाना उसका ही समर्थक है। इन विकल्पोंमेंसे पहिले विकल्पका तो खण्डन कर दिया गया—अब दूसरे विकल्पकी चर्चाकी जा रही है कि विसम्वादी होनेसे तर्क ज्ञान अप्रमाण नहीं होता, क्योंकि तर्क ज्ञान अपने विषयमें तो विवादरहित है। साध्य और साधनका अविनाभाव सम्बन्ध करना यह है तर्क ज्ञानका विषय। और, उस विषयमें तर्क ज्ञान विसम्वादरहित प्रसिद्ध ही है क्योंकि यदि तर्क ज्ञान अविसम्वादी न हो, सही न हो तो अनुमान कभी सही हो ही नहीं सकता। ऐसा कभी न हो सकेगा कि तर्क ज्ञान तो सम्वाद न रखता हो अर्थात् मिथ्या हो और अनुमान ज्ञान सही बन जाय। क्यों न ऐसा हो सकेगा कि अनुमानकी उत्पत्तिमें तो तर्क ज्ञान कारण होता है। जब साध्य साधनके अविनाभाव सम्बन्धका परिज्ञान हो तब तो अनुमान प्रमाण बन सकेगा। इस कारण विसम्वादी होनेसे तर्क ज्ञान अप्रमाण है यह बात युक्त नहीं होती। शंकाकार कहता है कि तर्क ज्ञानमें निश्चित सम्वाद नहीं है, निःसंदेह यथार्थता नहीं है क्योंकि तर्क ज्ञान बहुत दूरके पदार्थको विषय करता है। दुनियामें जहां जहां भी धुवाँ है वहाँ अग्नि है—चाहे विदेह क्षेत्र हो और चाहे दूसरा द्वीप हो यह तो सारी दुनियाकी बात कह रहा है। अत्यन्त दूरके पदार्थका विषय करता है तर्क, इस कारण उसमें निःसन्देह यथार्थता नहीं है। इतनी दूर जाकर कहां निगरानी करें जहां जहां उस तर्कका अविनाभाव बतायें। उत्तर देते हैं कि यह कहना तुम्हारा ठीक नहीं है। क्योंकि तर्क ज्ञानके सम्वादमें यदि सन्देह किया जाने लगे तो निःसन्देह अनुमानका बनाना ही नहीं बन सकता। अनुमानका बनाना तर्क ज्ञानके आधारपर है और तर्क ज्ञानमें ही जब सन्देह है तो अनुमान निःसन्देह कैसे बनेगा? और, जब अनुमान निःसन्देह न हो सका तो तुम प्रत्यक्षको भी प्रमाण सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि प्रत्यक्षको प्रमाण सिद्ध करनेमें तुम अनुमान ही तो बनाओगे। प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है अविसम्वादी होनेसे। अब अनुमान हो गया तो सब सन्देह दूर। तो तुम्हारे प्रत्यक्षका प्रमाणता भी कैसे सिद्ध होगी? इस कारण जिस किसीको निःसन्देह अनुमानकी सिद्धि करना है उसको साध्य साधनके सम्बन्धका ग्रहण करने वाला जो तर्क ज्ञान है उसे निःसन्देह प्रमाण मानना पड़ेगा, यदि तर्कसे पूर्ण प्रमाणसे प्रमाण न मानोगे तो अनुमान भी पूर्णतया प्रमाण नहीं बन सकता और जब अनुमान निःसन्देह प्रमाण न बनेगा तो प्रत्यक्षको भी तुम प्रमाण सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि प्रत्यक्षको प्रमाण सिद्ध करनेके लिये तुम कोई हेतु दोगे, उससे बनेगा अनुमान, और अनुमान तुमने निःसन्देह माना नहीं। तर्क ज्ञान प्रमाण है और इसलिये भी प्रमाण है कि इसमें संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय नहीं है। जो कोई पुरुष साध्य साधनकी व्याप्तिका ज्ञान करता है वह निःसन्देह करता है। न विपर्यय करता और न अनध्यवसाय करता तो जो समारोपका व्यवच्छेदक है संशय, विपर्यय, अनध्यवसायका निराकरण करने वाला है वह ज्ञान प्रमाण माना गया है—जैसे प्रत्यक्ष और अनुमान। यह समारोपको दूर करता है इस कारण प्रमाण है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

तो तर्क ज्ञान भी समारोपको दूर करनेके कारण प्रमाणभूत है।

प्रमाणविषय परिशोधक होनेसे तर्क ज्ञानके प्रमाणत्वकी पुष्टि - तर्क ज्ञान अप्रमाण है इस सम्बन्धमें शंकाकारने तीसरा विकल्प कहा था कि यह तर्क ज्ञान प्रमाणके विषयका परिशोधक है इस कारण अप्रमाण है। उत्तरमें कहते हैं कि प्रमाणके विषयका परिशोधक होनेसे तो ज्ञान प्रमाण कहलायेगा अप्रमाण नहीं। तुम उल्टा कह रहे हो कि तर्क ज्ञान प्रमाणके विषयका शोधक है, समर्थक है। उसमें और विशेषताओंका ला देता है इससे अप्रमाण है यह तो उल्टी बात है। जो प्रमाण के विषयका परिशोधक हो वह तो उटकर ही प्रमाण है क्योंकि प्रमाणके विषयका अप्रमाणसे शोधन होता ही नहीं है। जैसे अप्रमाण है क्योंकि मिथ्याज्ञानसे प्रमाणके विषयका परिशोधन नहीं हुआ करता। जानना, विशेष समझना ये सब प्रमाणविषय के परिशोधन कहलाते हैं। अनुमानसे भी सिद्ध है कि तर्क ज्ञान प्रमाण है क्योंकि प्रमाणके विषयका परिशोधक होनेसे। जैसे अनुमान ज्ञान। दूरसे जाना था, देखा था जो कि प्रत्यक्षका विषय बन सका उसका ज्ञान अनुमान प्रमाण है, परिशोधन आगे भी होता। किसी प्रमाणसे कुछ जान लिया। अब उस जाने हुए पदार्थमें और जानना विशेष समझना यह भी परिशोधन होता है और जो जिस किसी प्रमाणके द्वारा जाना जा सके उसके विषयका अभीसे अनुमान द्वारा ज्ञान करते हैं यह भी शोधन है। जो प्रमाण नहीं होता वह प्रमाणके विषयका परिशोधक नहीं है। जैसे कि मिथ्याज्ञान। और तर्कने जो कुछ जाना वह प्रमेय है और उसका ज्ञान प्रमाण है, इस कारण तर्क ज्ञान प्रमाण ही है।

प्रमाणका अनुग्राहक होनेसे तर्क ज्ञानके प्रमाणत्वकी पुष्टि – परोक्ष ज्ञानके भेदमें स्मृति, प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान और आगम ऐसे जो ५ भेद किए हैं उन में तर्क ज्ञानकी बात चल रही है। साध्यके होनेपर ही साधनका हो सकता, साध्यके होनेपर ही साधनका हो सकना, साध्यके अभावमें साधनका न हो सकना ऐसे सम्बंध के ज्ञान करनेको तर्क कहते हैं। तो यह तर्क ज्ञान प्रमाण हुआ क्योंकि प्रमाणोंका अनुग्राहक है। तर्क ज्ञान न बने तो अनुमान ज्ञान तो नहीं बन सकता। तो अनुमान ज्ञानका उपकार किया इस तर्क ज्ञानने। साध्यसाधनकी व्याप्तिका ज्ञान न हो तो अनुमान कैसे बन सकता है ? तो अनुमानका उपकारक है यह तर्क ज्ञान जो प्रमाणका अनुग्राहक प्रत्यक्ष और अनुमान है। जैसे प्रवचनोंसे जो कुछ समझा जाता है उसको शुद्ध रूपसे बांचा तो यह प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ अथवा उसके सम्बन्धमें युक्तियां लगायी तो अनुमान हुआ। उससे देखो प्रवचनकी प्रमाणता आ जाती है प्रवचनमें लिखा है– पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यस्वरूप है और हम प्रत्यक्षसे किसी भी पदार्थको देखते हैं– स्कंध सही तो उसमें हमें उत्पादव्यय ध्रौव्य नजर आता है। तो इसमें शास्त्रकी बात की प्रमाणता और दृढ़ हो गयी ना। अथवा अनुमानसे युक्तिसे कहते हैं कि कोई पुरुष

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

पुण्य विशेष करे तो उसका फल तो मनुष्योंको अधिक भोग मिलें ऐसा ही कोई होगा। कोई मनुष्य एक पुरुषको मार डालता है तो सरकार उसे फाँसी देती है और जो हजारों पशुवोंको, मनुष्यको मार डाले उसके दण्डकी बात सरकारके पास क्या रखी है ? एक बार फाँसी लगा दी। तो ऐसे पुरुषको अनुरूप दण्ड मिलनेका कोई साधन उन्हींका नाम स्वर्ग नरक है या अन्य तरहसे युक्तियों द्वारा जब जानते हैं और बुद्धिमें स्पष्ट होता है ना ? तो तर्क ज्ञान भी इसी प्रकार प्रमाणका अनुग्राहक है। कभी तर्क ज्ञान प्रत्यभिज्ञानका भी अनुग्राहक हो जाता है कभी स्मरणका भी। और अनुमानका भी तो अनुग्राहक है ही। बिना तर्कके प्रमाण अनुमानकी सिद्धि नहीं है। तो अप्रमाण जो अन्य प्रमाणोंका अनुग्राहक हो, उनकी उत्पत्तिका कारण बने ऐसा ज्ञान क्या अप्रमाण होगा ? अनुमानसे क्या प्रमाणकी उत्पत्ति हो सकती है ? जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण से बहुत दूरमें रहने वाले जलका ज्ञान किया, अब उसके जब और पास गए तो जल प्रत्यक्ष और स्पष्ट हुआ ना। तो दूसरे प्रत्यक्षने पहिले प्रत्यक्षमे जाने हुये ज्ञानमें दृढ़ता ला दी ना, अहो पानी ही है। तो जैसे जब जब प्रत्यक्षसे जाने हुए पदार्थका अन्य प्रमाण पदार्थसे परिज्ञान होता है क्योंकि उसमें ज्ञानकी विशेषता आयी इसी प्रकार पहिले तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे एक देश सम्बन्ध जाना। रसोईघरमें बैठे बैठे अग्नि और धुवां देख रहे थे तत्काल वहांकी अग्नि और धुवां इनका ही सम्बन्ध जाना। अब उसके बाद लोकमें सब समयोंमें उसका सम्बन्ध जाना। तो प्रमाणसे जाने हुए पदार्थको अन्य प्रमाणसे जान लेना विशेषताके साथ यह तो एक ज्ञानकी मजबूतीका ही कारण बना। इससे यह निश्चय करना कि साध्य और साधनके अविनाभावके ज्ञानका कारण तर्कज्ञान होता है।

स्मृति प्रत्यभिज्ञानकी भांति तर्कज्ञानकी भी बहुशः उपयोगिता — ये सब ज्ञान सामान्यरूपसे तो परोक्ष ज्ञान हैं। इन्द्रिय और मनके निमित्तसे और अविशद जो ज्ञान होता है वे सब परोक्ष ज्ञान हैं, तो यह लक्षण सब ज्ञानोंमें घट रहा है। फिर भी उनमें और भी सूक्ष्म विशेषता बतानेके लिये भेद किये जा रहे हैं और भेद स्पष्ट समझमें आते हैं। स्मरण ज्ञानने जाना—वह है, वह था, वह होगा, तो इसका स्मरण किया यह ज्ञान विषम्वादरहित है। ठीक मालूम पड़ रहा है ना, और कभी कोई पुरुष सामने आये और उसे देखकर यह ज्ञान किया कि यह वही पुरुष है जिसे हमने अमुक जगह देखा था। तो इस किस्मका भी ज्ञान होता है ना, यह प्रत्यभिज्ञान है। अचानक ही कोई आपका रिश्तेदार आ गया और आप उसे झट ठहराने लगे तो समझो उस समय आपको तुरन्त प्रत्यभिज्ञान हो चुका, किन्तु अभ्यास विशेष होनेके कारण आपने विकल्पोंके रूपमें प्रत्यभिज्ञानको नहीं उठाया। यह अमुक ही है जो खूब हमारे साथ रहे, जिसे हम खूब जानते हैं, इस प्रकार मुद्रा नहीं बनी भेद विज्ञानने विकल्प नहीं उठाया लेकिन वह कला तुरन्त जग गयी तब आप उससे व्यवहार कर सके। तो प्रत्यभिज्ञान भी कोई व्यवस्थित अलग प्रमाण हैं। तर्क ज्ञान साध्य और

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

साधनकी व्याप्तिको जानना है। धर्मशास्त्रों या दार्शनिक शास्त्रोंके अध्ययनसे तब तक स्पष्टता नहीं आती जब तक प्रमाणके स्वरूप युक्ति और विधि न ज्ञात हो। आत्मा चेतन है यह कह देना एक साधारण सी बात हो गई, पर जो अनुमानका आश्रय लेते हैं, साध्य साधनकी व्याप्तिकी सम्हाल करते हैं उनको आत्माके चैतन्यस्वरूपका ज्ञान बहुत स्पष्ट रहता है। किसी भी पुरुषको देखकर झट उससे व्यवहार करने लगते हैं, क्योंकि इसमें चेतन है जीव है ऐसा बोध आपको कैसे हो गया कि वह चलता है, बोलता है, समझता है प्रश्नका उत्तर देता है कुछ पूछता है चर्चा करता है, तो इन बातोंको देखकर आपने झट समझ लिया कि यह जीव है, तो इसमें अनुमान प्रमाण बन गया ना, उसके अनुमानकी मुद्रामें हम विकल्प नहीं करते हैं, न उतना समय लगाते हैं लेकिन किसी पुरुषको देखकर झट व्यवहार करने लगते। ऐसा करनेमें उस के अनुमान ज्ञान बन गया, क्योंकि यह जीव है यह प्रत्यक्षसे तो जाना नहीं जाता। और जो अनुमान बना है उसके पहिले तर्कज्ञान भी बन गया। जीवके होनेपर ही यह हलन-चलन व्यवहार बोल-चाल प्रश्न उत्तर बन सकते हैं। उसके अभावमें नहीं बन सकते हैं, उसके अभावमें नहीं बन सकते ऐसा सम्बन्धका ज्ञान भी बन गया है। भले ही हम इन विकल्पोंसे उस समय जान नहीं रहे स्पष्टरूपमें बोल बोलकर फिर भी तर्क ज्ञान बन ही गया, अनुमान ज्ञान भी हो गया तब आप उससे बोलते हैं। किसी पुरुष को देखकर एकदम झट बोलने लगते, इससे पहिले आपके तर्कज्ञान और अनुमान ज्ञान बन चुका। ज्ञान तो इतना जल्दी काम करता है कि जिसका उदाहरण न हवाकी गतिसे दे सकते और न बिजलीकी गतिसे। कोई कोई लोग कहते कि यह मनकी गति है। किसी भी बड़ी से बड़ी समस्याका हल इस ज्ञानके द्वारा क्षणभरमें ही हो जाता है। तो ज्ञानका गति इतनी सूक्ष्म और तेज है जिससे कि एक सेकेण्डमें ही अनेक विषयोंका परिज्ञान कर लेते हैं। तो स्मृतिज्ञान, प्रत्यभिज्ञान, तर्कज्ञान ये कितना जल्दी जल्दी हम आपके होते रहते हैं। उसीसे हम आप विवेकी कहलाते हैं। तो इतना तो हम उन ज्ञानोंसे उपकृत हैं और उनका निषेध करें कि तर्क आदि कोई ज्ञान नहीं है, यह कैसे विवेककी बात कही जा सकती है ?

सम्बन्ध ज्ञानरूप तर्ककी अन्य किसी सम्बन्धज्ञानसे उत्पत्तिका अभाव

अब शंकाकार एक और शंका कर रहा है कि तर्क ज्ञानका नाम है साध्यसाधनके सम्बन्धको जान लेनेका। चेतनके होनेपर ही वचन व्यवहार होता है यह सम्बन्ध जान लिया ना। अग्निके होनेपर ही धुआं बन सकता है यह सम्बन्ध जान लिया ना। तो देखो—तर्क ज्ञान सम्बन्धसे होगा। फिर वह सम्बन्ध ज्ञान किसी अन्य सम्बन्ध ज्ञानसे होगा। इस तरह बहुतसे तर्क ज्ञान मानने पड़ेंगे। अव्यवस्था हो जायगी। इससे तर्क ज्ञान कोई ज्ञान नहीं है न प्रमाणभूत है। उत्तर देते हैं कि कौन कहता है कि तर्क ज्ञान सम्बन्धके ज्ञानसे उत्पन्न होता है ? सम्बन्धके ज्ञानका ही नाम तर्क ज्ञान है न कि सम्बन्धके ज्ञानसे कोई भिन्न तर्क ज्ञान

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

है और उस तर्क ज्ञानकी उत्पत्ति सम्बन्धज्ञानसे हुई हो ? तर्ककी उत्पत्ति तो उपलम्भ और अनुपलम्भके निमित्तसे होती है अर्थात् साध्यके होनेपर ही साधनका हो होना, ऐसी निश्चय पद्धतियें तर्ककी उत्पत्ति होती है. उसमें ऐसा भी नही कह सकते । तो फिर एक तर्क ज्ञान समस्त अनुमानोंको उत्पन्न करदे अग्निके होनेपर ही धुवां होता है ऐसा सम्बन्ध जानकर जो तर्क ज्ञान बनाया उस तर्क ज्ञानसे अग्निका ही अनुमान क्यों बनता है ? कहीं वृष्टि हुई है या जितने भी दुनियाभरमें साध्य हैं. सब क्षणिक हैं आदिक जो जो कुछ भी साध्य है उन सबका ज्ञान क्यों नही हो जाता ? अगर वह सम्बन्ध ज्ञानसे उत्पन्न नही होता है तो । उत्तर देते हैं कि यह तो जीवोंकी अपनी-अपनी योग्यता है । जिस जिस ज्ञानावरणका क्षयोपशम होता है अर्थात् उपयोग होता है, लब्धि होती है उस उस पदार्थका ज्ञान होता रहता है । प्रत्यक्षसे भी तो घट ज्ञानावरणके क्षयोपशममें घटका ज्ञान होता, पट ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे पटका ज्ञान होता तो प्रत्यक्षमें भी तो कोई यों शंका कर सकता था कि आंखें खुली तो यह चटाई ही क्यो दिखी, चटाई ही क्यों जानी गई ? इसमें दुनिया भरके पदार्थ क्यों नही जान लिये जाते । तो वहां भी सावरणक्षयोपशम है किन्तु लोग तदुत्पत्तिका उत्तर देते हैं कि चटाईको जानेगा । जमीनसे जो ज्ञान उत्पन्न हो वह ज्ञान जमीनको जानेगा, अगर तदुत्पत्ति सम्बन्ध नही है । पदार्थ कुछ भी न होते और ज्ञान बन जाता तो इस से सिद्ध है कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न नही होता । स्वयं ही आत्मा यह ज्ञानस्वरूप । इसपर अभी आवरण है, उस आवरणका जितना-जितना विघटन है उतना-उतना ज्ञानका विकास है । तो अपने ज्ञानावरणके क्षयोपशम योग्यतासे और जहां जहां उपयोग चलता है उस नियमसे उस पदार्थका ज्ञान होता है । एक ज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोंका ज्ञान यों न हो सकेगा । तर्क ज्ञानमें भी लगा लीजिये अग्नि और धुवां के सम्बन्धके ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे तर्क ज्ञान उत्पन्न होता है और जिस-जिस विषयका क्षयोपशम है उस उस विषयकी व्याप्तिका ज्ञान कर पाता है । यों तर्क ज्ञान प्रमाण है ।

ज्ञप्तिकालमें सभी ज्ञानोंकी सम्बन्ध ग्रहण निरपेक्षता—शंकाकार अब फिर कहता है कि यदि तर्क ज्ञानमें अपने विषयमें अन्य सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा किये बिना अनुमान भी बन जाया करे, फिर तर्ककी जरूरत क्या रही ? यों सम्बन्ध ज्ञान का नाम तर्क है और सम्बन्ध ज्ञान बिना अब ज्ञान बनने लगे, तर्क बनने लगे तो अनुमान भी बन बैठे । फिर यदि सम्बन्ध ज्ञान बिना साध्य साधनके अविनाभावके परिज्ञान बिना अनुमान बन जाय तो कोई एक ज्ञान सब समय सबको जानने वाला बन जाय । और, दूसरी बात कि उन ज्ञानोंमें स्वयं आवरणके क्षयोपशमरूपकी योग्यता है तो अपने आवरणके क्षयोपशमसे अनुमान ज्ञान होते रहेंगे । तर्क ज्ञानकी क्या जरूरत है ? उत्तर देते हैं कि प्रत्येक ज्ञान जानते समयमें सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा नही रखता जैसे आंखसे कोई पदार्थ जाना तो उस ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण हुई

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

इन्द्रियाँ, पर इन्द्रियके निमित्तसे उत्पन्न हुआ ज्ञान अपना ज्ञान करनेमें इन्द्रियकी अपेक्षा नही रखता। ज्ञप्तिकालमें किसी भी सम्बन्धकी अपेक्षा नही रखता। जैसे एक दृष्टान्त लो—मृदङ्गको कोई पुरुष बजाता है तो शब्दकी उत्पत्तिमें तो मनुष्यके हाथकी ठोकर कारण है पर शब्द उत्पन्न हो और फिर वह शब्दरूप परिणमन करे तो शब्दवर्गणाको शब्दरूप परिणमनेके लिए मनुष्यके हाथकी अपेक्षा नही रहती। बहुत मोटा दृष्टान्त लो—कोई नौकर किसी कामको करनेके लिये पहिले मालिककी आज्ञा चाहता है तो काम करनेके लिए एक खुलासी हो जाना इतनी बात तो मालिककी आज्ञाकी अपेक्षा रखता है पर आज्ञा प्राप्त हो जानेपर फिर वह नौकर अपने कामके करनेमें किसीकी अपेक्षा नही रखता। वह अपनी स्वतन्त्रतासे करता है। अनुमान ज्ञान भी उत्पत्तिमें तो तर्क ज्ञानकी अपेक्षा रखता है। साध्यसाधनके सम्बन्ध ज्ञान बिना अनुमान ज्ञान न बने तो अनुमान ज्ञान उत्पत्तिमें तो सम्बन्ध गृहणकी अपेक्षा रखता है पर अनुमान ज्ञान जब उत्पन्न हो रहा तो उत्पन्न होरहेके समयमें फिर सम्बन्ध ग्रहण की अपेक्षा नही रखता किन्तु अपने विषयको पूर्णरूपसे जान लेता है। जैसे भोजन खानेके लिये पहिले भोजनके निर्माणमें तो अनेकोंकी अपेक्षा होती हैं, पर भोजन बन चुकनेपर खाने वाला फिर कहां बनाने वालेकी अपेक्षा करता है। ज्ञानकी उत्पत्तिमें जो जो ज्ञानके साधन हैं उनकी अपेक्षा पड़ती है। ज्ञान होने लगे तो ज्ञानसे ज्ञप्ति होनेके सम्बन्धमें फिर किसी साधनकी अपेक्षा नही रहती।

ज्ञप्तिकालमें सम्बन्ध ग्रहण निरपेक्षतापर पुनः दृष्टिपात—एक यह भी बात देख लो कि जब आत्मा स्वानुभव करता है तब अन्य किसी भी प्रकारके विकल्प नही रहते। फिर उन विकल्पोंकी अपेक्षा नही रहती। अब तो स्वानुभव अपना निर्विकल्प अनुभवन किया करे। सभी ज्ञानोंमें यह बात है कि ज्ञानकी उत्पत्ति के जो साधन हैं जब जब जिस समय जिस ढगके, तब तब उस समय वे साधन अपेक्षित होते हैं पर ज्ञानके समयमें, जाननेके समयमें फिर ज्ञानको अन्य किसी साधनकी अपेक्षा नही रहती, किन्तु वह जाननहार निरपेक्ष होकर रहता है। इसी प्रकार अनुमान ज्ञान अपने विषय अनुमेयके जाननेमें सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा नही रख रहा किन्तु अनुमानकी उत्पत्तिमें तर्क ज्ञान अपेक्षित होता है। उत्पत्ति होनेपर फिर अनुमान ज्ञान अनुमेयको जानता है, किसी अन्य सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा नही करता। उत्पत्ति के बारेमें देख लो कि जिस पुरुषने जो भी अनुमान बनाया, पर्वतमें अग्नि है, धुवां होनेसे, ऐसा अनुमान बनाने वाले पुरुषको अग्नि और धुवांके साध्य और साधनके सम्बन्ध ग्रहणकी अपेक्षा पड़ी या नही ? पड़ी। तर्क ज्ञानकी अपेक्षा न करके तर्क ज्ञानका प्रयोग उपयोग न करके अनुमान ज्ञान कोई नही बना सकता। अनुमान ज्ञान होनेपर फिर तर्कके विकल्प नही रहते। यदि तर्क ज्ञान बिना अनुमान ज्ञान बनने लगे, साध्य साधनका सम्बन्ध जाने बिना यदि कोई पुरुष अनुमान ज्ञान पैदा करने लगे तो कोई व्यवस्था न रहेगी कोई भी पुरुष किसी भी समय अनुमान ज्ञान उत्पन्न

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

करले और सबको जान जाय या कुछ भी न जाने, कोई व्यवस्था नही रहती । इससे बात स्पष्ट होती है कि अनुमानकी उत्पत्तिमें तर्क ज्ञान करना पड़ता है ।

प्रत्यक्षकी भांति तर्क ज्ञानमें सम्बन्ध ग्राहक अन्य ज्ञानकी अनपेक्षा – शंकाकार कहता है कि प्रत्यक्ष तककी उत्पत्तिमें तो इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्ध ज्ञान की अपेक्षा रहती है तो प्रत्येक ज्ञानोंमें सम्बन्ध ज्ञानकी अपेक्षा रहा करती है । तर्कमें भी रहेगी । जैसे प्रत्यक्षसे जाना कि यह चटाई है तो यह भी तो ज्ञान है कि आँख का और चढ़ाईका आमना सामना हुआ है । या जो मानते हैं कि आँखसे किरणें निकलती हैं उनका चढ़ाईसे सम्बन्ध होता है उससे ज्ञान बना कि यह चटाई है तो प्रत्यक्षसे भी तो जाना जारहा है वह भी तो सम्बन्ध ग्रहणसे जाना जा रहा है ना । उत्तर देते हैं कि नही, प्रत्यक्षकी उत्पत्ति इन्द्रिय और पदार्थके सम्बन्धसे नही बनती । अनेक पुरुष हैं ऐसे कि जो पदार्थका और इन्द्रिय सम्बन्धका कुछ ज्ञान नहीं करते और पदार्थोंको जानते रहते हैं । ये देहाती लोग अनेक लोग इन बातोंसे अपरिचित हैं कि पदार्थका और इन्द्रियका सन्निकर्ष होता है तब ज्ञान होता है । कुछ जानते ही नही हैं । तो सम्बन्ध ग्रहण किये बिना इन्द्रिय और पदार्थोंके सम्बन्धका ज्ञान किये बिना भी तो अनेक लोग बराबर प्रत्यक्षसे काम ले रहे हैं । तो प्रत्यक्षकी उत्पत्ति करण और पदार्थोंके सम्बन्धके बिना भी हुआ करता है, इसी प्रकार तर्क ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये भी किसी अन्य ज्ञान सम्बन्ध ज्ञानकी जरूरत नही है, किन्तु तर्क ज्ञान स्वयं सम्बन्धित ज्ञानरूप है । इससे तर्क ज्ञान वास्तविक प्रमाणभूत है । इस ग्रन्थमें प्रमाण का स्वरूप बताया है । प्रमाण होता है ज्ञानरूप । ज्ञान होते हैं दो प्रकारके । कोई स्पष्ट ज्ञान और कोई अस्पष्ट ज्ञान तो जो स्पष्ट ज्ञान है वह तो प्रत्यक्षज्ञान है और जो अस्पष्टज्ञान है वे सब परोक्ष ज्ञान हैं । उन परोक्ष ज्ञानोंमें स्मृतिज्ञान भी कितना काम किया करता है । सो हम आप सब जानते हैं स्मरण बिना क्या कर सकेंगे ? जिनमें स्मरणकी शक्ति नही रहती है उस पुरुषको फिर लोग बेकार समझ जाते हैं । इसमें तो स्मरणकी अयोग्यता है । प्रत्यभिज्ञान बिना हम आप कुछ हिला डुला भी नही सकते । तर्क ज्ञान बिना तो वस्तुके स्वरूपका निर्णय नही कर सकते । जो परस्परमें वस्तु स्वरूपपर चर्चायें की जाती है उसमें तर्क ज्ञानसे हम कितना अधिक काम लेते रहते हैं । तर्क ज्ञान बिना तो कुछ उत्थान ही नही है हम आप मनुष्योंका । तर्क कहो, कानून, निर्णय, व्याप्तिज्ञान सम्बन्ध ज्ञान, अविनाभावी ज्ञान ये समस्त निर्णय तर्क बिना कैसे हो सकते हैं ? इससे तर्क ज्ञानको वास्तविक प्रमाणभूत ज्ञान मानना ही चाहिये । अब इस समय अनुमानका लक्षण बतानेकी इच्छासे सूत्र कहते हैं,

साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् ॥३–१४॥

अनुमानका लक्षण और अनुमानके अङ्गभूत साधन और साध्यके स्वरूपका विवरण—साधनसे साध्यका ज्ञान करनेको अनुमान कहते हैं । साधन मायने

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

हेतु, साध्य मायने जिसको सिद्ध करना है। तो हेतुसे इष्ट बातको सिद्ध करनेका नाम अनुमान है। साधनमें साध्यके अभाव होनेपर साधनका अभाव होना यह नियम रहता है वही साधन साध्यको सिद्ध करता है। जिस साधनमें यह नियम पड़ा हुआ है कि साध्य न हो तो वह हेतु न होगा. साध्यके न होनेपर हेतुके न होनेरूप अविनाभाव नियम रहे जिस साधनमें वही साधन साध्यको सिद्ध करता है और उस साधनसे ऐसे ही साध्यका ज्ञान किया जा सकता है कि जो इष्ट हो, अबाधित हो और असिद्ध हो। जिस चीजको हम सिद्ध करना चाहते हैं वह चीज यदि सिद्ध करने वालेको ही अनिष्ट है तो वह अनुमान तो न बनेगा। जैसे कोई बौद्ध यदि यह अनुमान बना बैठेगा कि सब कुछ नित्य है परन्तु होनेसे नित्य उन्हें इष्ट ही नही है तो साध्य इष्ट ही बनाया जायगा अनिष्ट नही वह सिद्ध हो सके या नही यह आगेकी बात है। किसे पड़ी है कि अपनेको अनिष्ट बातकी सिद्धि करे? इससे साध्य इष्ट ही होगा। किस प्रकार साध्य अबाधित होगा? हम कोई साध्य सिद्ध करना चाहें और उसमें आ रही हो प्रत्यक्षसे बाधा तो वह तो साध्य न बन सकेगा। जैसे हम अनुमान बनादें कि अग्नि ठण्डी होती है पदार्थ होनेसे और उसका पोषण भी करदें कि जो जो भी पदार्थ होते हैं वे ठन्डे होते हैं जैसे पानी बर्फ। लो इस अनुमानमें जब प्रत्यक्षसे ही बाधा भरी है, हाथपर रखकर देख लिया जाय, तो जो बाधित हो वह तो साध्य नही बन सकता इस कारण अबाधित ही साध्य होगा। जो किसी प्रमाणसे ही सिद्ध है, दोनोंके लिये, वादीके लिये भी और प्रतिवादीके लिये भी। वादी तो सिद्ध होता ही है किन्तु जो विरोधी पुरुषके लिये भी सिद्ध पड़ा है उसको सिद्ध करनेकी क्या जरूरत नही, इसलिए ऐसे साध्यका ही ज्ञान होता अनुमान है जो इष्ट हो, अबाधित है और असिद्ध हो। तो साधनकी विशेषता क्या है? साध्यका अभाव होनेपर साधनका न होना। यह विशेषता है साधनमें तो वह अनुमान सम्भव हो सकता है। साध्यकी विशेषता क्या है? जो इष्ट हो, अबाधित हो और असिद्ध हो, ऐसे ही साध्यका ज्ञान करनेके लिये अनुमान बन सकता है। साध्यके इन तीन विशेषणोंमें इष्ट विशेषण तो वादीकी अपेक्षा है। जो अनुमान बना रहे उसे इष्ट होना चाहिये। अबाधित दोनोंके लिये है जो किसी प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे बांधा न जाय और असिद्ध विशेषण विशेषतया प्रतिवादी याने विरोधीके लिए है। जैसे अग्नि गर्म है यह प्रत्यक्षसे सिद्ध है या किसी भी प्रमाणसे कोई बात सिद्ध हो चुकी हो, फिर उसका अनुमान बनाये तो अनुमान सिद्ध का नही बना करता। जिसको सिद्ध करना है, अभी तक सिद्ध नही हो सका है उस को ही तो सिद्ध किया जायगा। तो इस प्रकार साधनका मुख्य विशेषण है साध्यके अभावमें साधनका न होना। साध्यका मुख्य विशेषण है—जो इष्ट है, अबाधित है व असिद्ध है। यदि इस विशेषणोंमेंसे कोई कम हो जाय तो उस ज्ञानको अनुमान नही कहा जा सकता।

हेतुका त्रैरूप्य लक्षण माननेकी आशंका – अब शंकाकार कह रहा है कि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

साधनसे साध्यका ज्ञान होना अनुमान है यह तो ठीक बात है लेकिन साधन त्रैरूप्य हुआ करता है अर्थात् साधनमें तीन रूप होते हैं –पक्ष धर्मत्व, सपक्षसत्त्व, विपक्ष व्यावृत्ति, साधनमें जो एक विशेषण दिया कि साध्यके अभावमें साधनका न होना यह पर्याप्त नहीं है। उसमें ये तीन रूप होना चाहिये। पहिला तो यह कि साधन पक्षमें रहता हो दूसरा यह कि जो सपक्ष है जिसमें साध्य पाये जाते हैं उनमें हेतु मिले, सपक्षमें साधन रहा करे। तीसरी विशेषता यह चाहिये कि विपक्षमें साधन न रहे अर्थात् जिसमें साध्य नहीं रहता उसमें साधन न रहे ये तीन धर्म हों तो वह हेतु सही है। फिर उस हेतुसे साध्यका ज्ञान करना अनुमान कहलायेगा। पक्ष सपक्ष विपक्षके लक्षण इस प्रकार हैं कि जिसमें हम साध्य सिद्ध करना चाहते है, साधन दिखा रहे हैं उसे पक्ष कहते हैं। जैसे पर्वतमें अग्नि है –धुवाँ होनेसे, तो यहां पक्ष पर्वत है जिसमें हम साधन बता रहे हैं उसे कहते हैं पक्ष और साध्य पक्षके अलावा जिन जिन जगहोंमें पाये जायें उनका नाम है सपक्ष। जैसे रसोईघर आदिक वहाँ अग्नि भी है और धुवाँ भी है सो वह कहलाता है सपक्ष सत्त्व और जिसमें साध्य नहीं हुआ करता है वह कहलाता है विपक्ष जैसे तालाब––वहाँ न अग्नि है न धुवाँ है। तो साधन पक्षमें रहे यह जरूरी है कि नहीं, और साधन सपक्षमें रहे यह भी जरूरी है और साधन विपक्षमें न रहे, यह भी जरूरी है तो इस प्रकार –पक्ष धर्मत्व, सपक्ष सत्त्व और विपक्ष व्यावृत्ति ये तीन धर्म साधनमें होना चाहिए। तो उस समाधानसे साध्यका ज्ञान होना अनुमान कहलाता है। साधन

शंकाकार द्वारा हेतुकी त्रैरूप्यताका समर्थन– हेतुके इन तीन रूपोंमें अलग–अलग प्रयोजन भी हैं –पक्ष धर्मत्व तो असिद्धत्वके निराकरणके लिए आवश्यक है। असिद्ध उसे कहते हैं कि पक्षमें साधन न रहे। पक्ष धर्मत्व बता दिया कि पक्षमें साधन रहे तो इससे असिद्ध नामका दोष दूर हो जाता है। सपक्ष सत्त्व होनेसे विरुद्ध नामका दोष दूर हो जाता है। हेतुका एक दोष विरुद्ध भी है, साध्यमें विरुद्धके साथ साधनकी व्याप्ति होना। जैसे कहना कि पदार्थ नित्य हैं, सदा रहने वाले हैं, क्योंकि वे बनाये गये हैं। तो जो बनाया गया हो उसकी व्याप्ति नित्यके साथ होगी या अनित्यके साथ? अनित्यके साथ होगी। साध्यसे विरुद्धके साथ साधनकी व्याप्ति होनेका नाम है विरुद्ध दोष। तो जब हम साधनमें सपक्ष सत्त्व नामका रूप मान लेंगे तो विरुद्ध दोष नहीं रह सकता, क्योंकि साधनका सपक्षमें ही रहना यह बात तभी हो सकती है जब विरुद्धपना न हो। तीसरा विशेषण है विपक्ष व्यावृत्ति। इसके द्वारा अनैकान्तिक दोष दूर होते हैं। अनैकान्तिक कहते हैं कि हेतु सपक्षमें भी रहे तो रहे, विपक्षमें भी रहे। जो हेतु दोनों जगह रह सकता हो वह हेतु अनैकान्तिक है क्योंकि साध्यको सिद्ध करनेमें कमजोर है। साध्यमें विरुद्ध बातको भी वे हेतु सिद्ध करते हैं और साध्यके अनुकूल भी सिद्ध करते हैं। तो उस हेतुसे कैसे सिद्ध होगा। जैसे पदार्थ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

नित्य शाश्वत रहता है, सत्त्व होनेसे। अब सत्त्व धर्म अनित्यके साथ भी लगता है और नित्यके साथ भी लगता है, क्योंकि जो जो सत् होते हैं वे नित्यानित्यात्मक होते हैं। तो यों तीन प्रकारके दोषोंके निराकरणके लिये भी साधनके ये, तीन रूप माने जाना चाहिये। पक्ष धर्मत्व, सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्ति। यदि साधनमें ये तीन रूप नही मानते तो साधनमें असिद्ध विरुद्ध अनैकान्तिक इन तीन दोषोंका निराकरण नही कर सकते। इस प्रकार शंकाकारने साधनको त्रैरूप्या माने जानेकी आशंका की। उसके उत्तरमें सूत्र कह रहे हैं।

साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ॥३-१५॥

त्रैरूप्यमें हेतुलक्षणत्वका अभाव और हेतुका निर्दोष स्वरूप - जो साध्यके साथ अविनाभावरूपसे निश्चित हो वही हेतु होता है। हेतुमें तीन रूप आयें तब हेतु आये सो बात नही। तीन रूप भी रहो अथवा उसमेंसे तीन रूपोंमेंसे कुछ न रहे लेकिन साध्यके साथ अविनाभाव होना हेतुका आवश्यक है। हेतुका लक्षण बताया जा रहा है। कोई कह रहा है कि हेतुका लक्षण त्रैरूप्य है किन्तु लक्षण असलमें कैसा होना चाहिये? लक्षणका लक्षण क्या है? जो पदार्थका असाधारण स्वभाव हो उसे लक्षण कहते हैं। जो लक्षण उस पदार्थके अलावा अन्यत्र न जाय, उस ही पदार्थमें रहे और उसमें पूरेमें रहे ऐसा जो असाधारण स्वभाव है उसे पदार्थका लक्षण कहते हैं। दोनों पक्षोंको समझानेके लिये लक्षणका लक्षण यह भी कहा गया है कि बहुतसे मिले हुए पदार्थोंमेंसे जो चिन्ह किसी एक पदार्थको ही अलग जता दे उसे लक्षण कहते हैं। इस ही बातको एक शास्त्रीय परिभाषामें कहा जा रहा है कि लक्षण उसे कहते हैं जो पदार्थका असाधारण स्वभाव हो। असाधारण शब्द कहनेसे अतिव्याप्ति दोषका निराकरण हो जाता है जो अन्य किसीमें न पाया जाय उसे असाधारण कहते हैं। जिसके लक्षण किये जा रहे हैं उसके अलावा अन्यमें न जाय उस हीका नाम असाधारण है। स्वभाव कहनेसे अव्याप्ति दोषका निराकरण है। जो स्वभाव है वह पूरेमें रहेगा ही। जिस पदार्थका स्वभाव आप कह रहे हो वह स्वभाव उस पदार्थमें न रहे तो स्वभाव क्या? स्वभाव तो पदार्थमें व्यापक होकर ही रहेगा। तो असाधारण स्वभाव कहनेसे अव्याप्ति, अतिव्याप्ति ये दोनों दोष नही आये! और फिर असम्भवकी तो कोई संभावना ही नही है। असाधारण स्वभाव जिसमें सम्भव हो यह बात कहनेपर असम्भवता की बात रही कहाँ? तो लक्षणका यही लक्षण है कि असाधारण स्वभाव हो, जो पदार्थका असाधारण स्वभाव हो वह पदार्थका लक्षण है। इसमें कोई व्यभिचार नही आता। जैसे अग्निमें उष्णता असाधारण स्वभाव है इसलिए अग्नि भी लक्षण कहलाती है, पर तुम्हारे बताये गए हेतुके त्रैरूपमें असाधारणता नही पाई जाती। हेतुके लक्षण जो पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृत्ति कहा है वे असाधारण नही हैं। तो ये तीन बातें हेतुमें भी पाई जा सकती हैं और हेत्वाभासमें भी पाई जा सकती हैं। पक्षधर्मत्व हेतुमें पाया भी जाता है और कोई हेतु ऐसा है कि पक्षधर्मत्व नही है, जिस

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

अनुमानका कोई पक्ष ही न हो ऐसा भी तो अनुमान होता है जो विकल्पसिद्ध अनुमान हो, जिसमें पक्ष न हुआ करे, तो उसमें क्या हेतु सिद्ध करोगे ? तो हेतुमें भी पक्षधर्मत्व मिलेगा और हेत्वाभासमें भी मिलेगा । इसी प्रकार सपक्षसत्त्व, हेतुमें भी मिलेगा और हेत्वाभासमें भी मिलेगा । इस कारण त्रैरूप्य हेतुका लक्षण नहीं हो सकता । जैसे कि पंचरूपता हेतुका लक्षण नहीं है । हेतुका त्रैरूप्य लक्षण तो मानते बौद्धजन, और हेतुका पंचरूप लक्षण मानते हैं नैयायिक । तो क्षणिकवादियोंके प्रति कहा जा रहा है कि त्रैरूप्यमें असाधारणता नहीं होती जैसे कि पंचरूपमें असाधारणता नहीं होती इस कारण हेतुका लक्षण यह ठीक ही होगा —जो साध्यके साथ अविनाभावि रूपसे निश्चित् हो वह हेतु होता है ।

त्रैरूप्यसामान्यमें हेतुलक्षणताका अभाव हेतुका लक्षण कहा गया है कि जो साध्यका अविनाभावी हो । इसके विरुद्धमें कोई कहते हैं कि हेतुका लक्षण त्रैरूप्य है । पक्षत्रमत्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षासत्त्व ये तीन धर्म जिसमें पाये जायें उसे हेतु कहना चाहिये । इसपर उन्हें बताया गया था कि यह त्रैरूप्य लक्षण हेतुमें भी पाया जाता है इस कारण यह लक्षण युक्त नहीं हो सकता । और, जो यह कहा था कि पक्षधर्मत्व तो असिद्ध दोषके निराकरणके लिए है, सपक्षसत्त्व विरुद्ध दोषके निराकरणके लिए है, विपक्षासत्त्व अनैकान्तिक दोषके निराकरणके लिए है । सो इन दोनों दोषोंका निराकरण अन्यथानुपपत्तिके नियमसे हो ही जाता है । हेतुका लक्षण है अन्यथानुपपत्ति अर्थात् साध्यके अभावमें अनुपपत्ति अर्थात् साधनका न होना । तो इस लक्षणसे ही असिद्ध दोषका भी निराकरण हो जाता । इससे त्रैरूप्य हेतुका लक्षण नहीं हो सकता फिर और बतलाओ कि हेतुका लक्षण क्या त्रैरूप्यमात्र है या विशिष्ट त्रैरूप्य है ? याने साधारणरूपसे त्रैरूप्यका होना यह हेतुका लक्षण है या कोई खास्यित रखता हुआ त्रैरूप्यका होना हेतुका लक्षण है ? यदि कहोगे कि साधारणतया त्रैरूप्यका होना हेतुका लक्षण है तो जैसे पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे तो यहाँ धूम पर्वत पक्षमें पाया जानेसे पक्षधर्मत्व है, उसी प्रकार जब यह अनुमान बना देंगे कि बुद्ध अर्वज्ञ हैं वक्ता होनेसे मुसाफिरकी तरह । जैसे मुसाफिर वक्ता है, तो वह असर्वज्ञ है । इसी तरह बुद्ध भी वक्ता है, बोलने वाला है इस कारण असर्वज्ञ है तो देखो पर्वतके धूमकी तरह बुद्ध में वक्तापन भी तो आ गया । पक्षमें साधनके होनेका नाम पक्षधर्मत्व है तो इस अनुमानको सही नहीं मानते और उनकी दलील है यह कि अन्यथानुपपत्ति नहीं पाई जाती पक्षधर्मत्व होनेपर भी अन्यथानुपपत्ति न पाई जाय तो वह अनुमान सही नहीं होसकता तब यही बात तो आई ना कि हेतुकी जान तो अन्यथानुपपत्तिमें है । पक्षधर्मत्व रहे तो न रहे तो, यदि हेतुमें अन्यथानुपपत्ति है तो वह हेतु सही है, त्रैरूप्य लक्षण बुद्धजन मानते है । क्षणिकवादी लोग हेतुका त्रैरूप्य लक्षण बताते हैं तो उन हीको जो अनिष्ट है, बुद्धमें असर्वज्ञता, तो पक्षधर्मत्व होनेसे यह अनुमान उन्हें सही मान लेना चाहिये किन्तु मानते नहीं हैं और अन्यथानुपपत्तिका वे प्रमाण देते हैं कि इस हेतुमें अन्यथानु-

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

त्पत्ति नही है । तब यही सिद्ध हुआ कि जो साध्यके अविनाभावीरूपसे निश्चित हो वह हेतु हुआ करता है ।

अन्यथानुपपत्तिकी ही त्रैरूप्य विशेषमें विशेषता - यदि कहो कि हम खासियत वाला त्रैरूप्य मानते हैं हेतुका लक्षण तो वह खासियत और है क्या ? सिवाय अन्यथानुपपत्तिके । तो जो परिक्षक लोग हैं, दार्शनिक विद्वान हैं उन्हें अन्यथानुपपत्ति ही हेतुका लक्षण सीधे मान लेना चाहिये क्योंकि इसमें किसी प्रकारका दोष नही आता । पक्षधर्मत्व आदिक भी न हों और अन्यथानुपपत्ति पाई जाय तो वह हेतु साध्य का गमक होता है । वह अनुमान सही है । जैसे यह अनुमान बनाया कि इसके बाद शकट नक्षत्रका उदय होगा क्योंकि कृतिकाका उदय होनेसे । अथवा बहुत व्यावहारिक अनुमान बना लीजिये । कल मंगलवार होगा, आज सोमवार होनेसे । तो कल मंगल वार होगा इसमें पक्ष उसे कहते हैं जिसमें साध्य रहे । तो यह पक्षका कोई स्थान नही है । इसमें पक्षधर्मत्व नही है और सपक्षसत्त्व भी नही है, इसका कोई दृष्टान्त बताओ । तो यह त्रैरूप्य न भी हो और अन्यथानुपपत्ति हो तो वह हेतु सही है उसका अनुमान सही है । तब हेतुका लक्षण अन्यथानुपपत्ति रहा, त्रैरूप्य न रहा ।

सपक्षसत्त्वके बिना भी सम्यक् अनुमान होनेका एक उदाहरण — दूसरा अनुमान भी देखिये - शब्द अनित्य है श्रावण्य होनेसे, अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य होनेसे, इस अनुमानमें सपक्ष तो कुछ मिलेगा नही, सपक्ष उसे कहेंगे कि जिस और चीजमें भी हेतु पाया जाय तो शब्दके अलावा और कौन पदार्थ है जो श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य हुआ करता है ? तो इस अनुमानका सपक्ष कोई नही मिल रहा । तो इस सपक्षसत्त्वके बिना भी देखो यह अनुमान प्रमाण है । शब्द अनित्य है क्योंकि श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें आता है । अब ग्रहणमें आया । पहिले सुननेमें न आया तो इसका कारण यह है कि यह शब्द पहिले न था अब उत्पन्न हुआ, और शब्द सुननेमें आकर फिर मिट गया । तो इससे सिद्ध है कि वह शब्द खतम हो गया । तो अनुमान तो सही है पर इसका सपक्ष सत्त्व नही मिल रहा, अन्यथानुपपत्तिको हेतुका लक्षण माननेपर तो अनुमान सही बैठ जायगा पर त्रैरूप्य माननेपर यह अनुमान सही नही बैठ सकता । अब इस प्रसंगमें मीमांसक शंका करते हैं कि हाँ ठीक है अनुमान सही नही बैठता तो न बैठे । हम शब्दको नित्य मानते हैं और आकाशका गुण मानते हैं । शब्द सदाकाल रहते हैं पर सुनाई क्यों नही देता कि उन शब्दोंपर आवरण पड़ा है । आवरण हट जाय तो सुनाई देने लगे ।

शब्दके अनित्यत्व साध्यमें दिये गये श्रावणत्व हेतुकी निर्दोषतापर प्रश्नोत्तर - अब शब्दनित्यत्व सिद्धान्त मानने वाले कह रहे हैं कि यह श्रावणत्व हेतु जैसे सपक्षमें हटा हुआ है, शब्द अनित्य है इसका विपक्ष क्या बनेगा ? नित्य । सपक्ष क्या बनेगा ? जो और और चीजें भी अनित्य हों, तो यह श्रावण हेतु जैसे विपक्षसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

हटा हुआ है अर्थात् नित्य आकाश आदिकमें यह श्रावणत्व हेतु नही पाया जाता, इसी प्रकार अनित्य जो घटपट आदिक हैं वे सपक्ष हुये, उससे भी हेतु हटा हुआ है अर्थात् घटपट आदिकमें भी श्रावणत्व हेतु नही पाया जाता। तब यह असाधारण हो गया। इसमें अनेकान्तिक दोष आता है अर्थात् यह अनुमान सही नही है। शब्द अनित्य नही है। इसका उत्तर देते हैं कि असाधारणपनेकी अनेकान्तिक दोषसे व्याप्ति नही मिलती, अर्थात् जो जो हेतु असाधारण हों वे वे अनेकान्तिक दोषसे युक्त हों यह व्याप्ति ठीक नही है क्योंकि असाधारणका अर्थ क्या है ? क्या यह अर्थ है कि सपक्ष और विपक्ष दोनोंमें हेतु असत्स्वरूपसे निश्चित हो अर्थात् हेतुसपक्षमें भी न पाया जाय, विपक्षमें भी न पाया जाय, ऐसे निश्चयका नाम असाधारण है क्या ? अथवा सपक्ष विपक्ष दोनोंमें हेतु पाया भी जाय, न भी पाया जाय, क्या ऐसे संशयित होनेका नाम असाधारण है ? यदि कहो कि सपक्ष विपक्षमें असत्स्वरूपसे हेतुका निश्चित होना इसका नाम असाधारण है तो अनेकान्तिक दोष कहाँ आया ? यह तो सही बात बन गयी। सपक्ष में हेतु न रहे किन्तु विपक्षमें तो नही है। विपक्षव्यावृत्तिमें बल अधिक हुआ करता है। दोनोंमें न रहा हेतु, पर अनेकान्तिक तो न रहा। अनेकान्तिक दोष उसे कहते हैं कि हेतु सपक्षमें भी रहे और विपक्षमें भी, तो श्रावणत्व हेतु विपक्षमें नही रहता और सपक्षमें भी नही रहता। दोनोंमें मत रहे इसमें अनैकान्तिक दोष तब बनता है कि सपक्षमें भी रहे और विपक्षमें भी रहे। जैसे अग्नि ठंडी है पदार्थ होनेसे। यद्यपि यह अनुमान प्रत्यक्ष बाधक है, पर अनैकान्तिक दोष भी आता है पक्षपना पदार्थ ठंडेमें भी पाया जाता है और गर्ममें भी पाया जाता है। सपक्ष विपक्ष दोनोंमें पदार्थपना पाया जाता है तो ऐसे ही जहाँ जहाँ हेतु सपक्षमें भी पाया जाय, विपक्षमें भी पाया जाय उसे अनैकान्तिक कहते हैं। तो सपक्षकी तरह विपक्षमें भी हेतु न रहे ऐसा निश्चय हो तो संशय तो हो ही न सका। कैसे न हुआ संशय ? कैसे नही हुआ अनेकान्तिक सो सुनो।

शब्दानित्यत्वहेतु श्रावणत्वके अपह्नुतदोषत्वका एक विवरण - श्रावणत्वका अर्थ क्या है ? श्रोत्रइन्द्रियके द्वारा ग्राह्य होना। तो श्रोत्र इन्द्रियके द्वारा जो ज्ञान बनता है वह ज्ञान शब्दसे अपने स्वरूपको बनाता हुआ शब्दका ग्राहक होता है अन्यथा नही। क्षणिकवादी लोग ऐसा मानते हैं प्रत्येक ज्ञानको कि जिस पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान उस पदार्थका जानने वाला होता है। जो अकारण है वह विषय नही बनता। तो क्षणिक शब्द न मानकर इन मीमांसकोंने शब्दको नित्य माना है और नित्य शब्द यदि ज्ञानको उत्पन्न करनेका स्वभाव रखता है तो सुननेसे पहिले भी, सुननेके उपयोगके बाद भी शब्द रहना चाहिये। यदि शब्द नित्य है तो सदा सुनने में आना चाहिये। सदा शब्दका ज्ञान रहना चाहिये क्योंकि शब्द एक तो नित्य है, दूसरे उस शब्द नित्यमें ज्ञानको उत्पन्न करनेका स्वभाव पड़ा हुआ है। जब दोनों बातें आ गयी कि शब्द भी सदा है और शब्दमें ज्ञानको उत्पन्न करनेका स्वभाव भी सदा है फिर क्यों नही सदा शब्दका ज्ञान होता ? कारण सब मौजूद हों फिर कार्यकी उत्पत्ति

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

नहीं हो सकती यह तो नहीं हो सकता। कार्य उत्पन्न होना ही पड़ेगा। उपादान भी समर्थ है, निमित्तकारण भी सब हैं और प्रतिबन्धक कारण भी कोई नहीं है, ऐसी स्थितिमें कार्य कैसे न होगा ? होना ही पड़ेगा। तो जब शब्द नित्य है, सदाकाल रहता है और शब्दमें ज्ञानको उत्पन्न करनेका सदा एक स्वभाव पड़ा हुआ है, फिर ज्ञान क्यों नहीं होता ? यदि सब कुछ कारण मिलनेपर भी कार्य उत्पन्न न हो तो यह समझना चाहिये कि यह कार्य उसका नहीं है। शब्द नित्य है और शब्दमें ज्ञानको उत्पन्न करनेका स्वभाव भी मान रहे हो और फिर भी ज्ञान सदा नहीं होता इसका अर्थ है कि शब्दका कार्य ज्ञान नहीं होता है। जैसे कुम्हार भी हाजिर है, मिट्टी चाक आदिक भी हैं, सब कुछ काम हो रहे, पर कपड़ा नहीं बन रहा, तो इसका अर्थ यह है कि कुम्हार, चाक, मिट्टी आदिक, इनका कार्य कपड़ा नहीं है। अनुधान करके देखला कि जिस जिस सम्पूर्ण कारणके होनेपर भी जो नहीं होता है वह उसका कार्य नहीं है। जैसे कि कुम्हार आदिक समस्त कारण मौजूद हों फिर भी कपड़ा नहीं हो रहा है तो कपड़ा नहीं हो रहा है तो कपड़ा कुम्हार आदिकका कार्य नहीं है। इसी प्रकार शब्दके होनेपर भी और जो कारण माना है वे सब कारण होनेपर भी पहिले और पीछे शब्दका ज्ञान नहीं होता इससे सिद्ध है कि शब्दका ज्ञान शब्दका कार्य नहीं है। कोई शब्द जाननेमें आये तो शब्दज्ञान शब्दका कार्य नहीं है।

आवरण होनेके कारण सदा शब्दज्ञान न होनेकी शंका और समाधान—इस प्रसंगमें शंकाकार कहता है कि बात यह है कि श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा शब्दज्ञानका उपयोग करनेसे पहिले और पीछे शब्द ज्ञानको इस कारण उत्पन्न नहीं कर सकते कि शब्दमें तो ज्ञान उत्पन्न करनेका स्वभाव है लेकिन वह आवृत्त है, ढका हुआ है, तिरोहित होनेसे। उत्तर यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि आवरण नाम है किसका ? दृष्ट और दृश्य पदार्थोंके अन्तरालमें कोई वस्तु वर्तमान हो जाय उसी का नाम तो आवरण है। जैसे कमरेमें रखी हुई गड़बड़ चीजें हैं उसपर डाल दिया बहुत बड़ा चद्दर ताकि अतिथियोंको देखनेमें भद्दा न लगे तो उसका नाम आवरण हो गया किन्तु आवरण वह यों बना कि देखने वाले और दृश्य पदार्थ वे अटपट चीजें इन दोनोंके बीचमें कोई एक वस्तु आ गई। क्या आ गई ? चद्दर आ गई। इसी प्रकार जानने वाले हैं श्रोत्र और जाने जाना है शब्द तो श्रोत्र और शब्द तो व्यापक माना है। शब्द नित्यत्ववादीने जैसे शब्दको नित्य व्यापक माना है इसी प्रकार श्रोत्रको भी व्यापक माना है। जैसे कोई थोड़ा अंदाज भी कर सके कि श्रोत्र नाम किसका है। कानके अन्दर जो पोल है वैसी पोल तो सर्वत्र है, तो श्रोत्र इन्द्रिय भी व्यापक है। तो शब्द व्यापक नित्य है और श्रोत्र भी व्यापक है और शब्दमें ज्ञानको उत्पन्न करनेका स्वभाव भी सदा है, श्रोत्रमें ज्ञानको फैलानेका स्वभाव भी सदा है और ये व्यापक होनेसे अत्यंत सम्बन्धित हो गए। जैसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य कितने सश्लिष्ट हुए

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

हैं। आकाश द्रव्य भी उन धर्मादिक द्रव्योंसे कितना मिला, भिड़ा हुआ है, क्या कुछ थोड़ा बहुत अन्तर बता सकते ? एक क्षेत्र वगाह है इससे और अधिक सम्बन्धित क्या कहोगे ? इसी प्रकार जब शब्द भी व्यापक है, श्रोत्र भी व्यापक है तो श्रोत्र और शब्द तो ऐसे भिड़ गए कि जिसमें कुछ अन्तर कहा ही नही जा सकता, फिर अंतराल क्या आये ? जो अत्यन्त संश्लिष्ट है उसके बीचमें तीसरी चीज क्या घुस गई ? आवरण क्या रहा ? और यदि कहो कि नही, शब्द और श्रोत्रके बीचमें कोई तृतीय आवरण पड़ा हुआ है तो इसका अर्थ है कि ये दोनों व्यापक न रहे । जितनी जगहमें बीचमें आवरण पड़ गया उतनी ही जगहमें शब्द नही रहा, तो तुम्हारे सिद्धांतका घात भी हो गया। इस कारणसे यह बात कहना युक्त नही है कि शब्द तो नित्य है और उसमें ज्ञान करनेका सामर्थ्य पड़ा हुआ है। लेकिन आवरण होनेसे वह ज्ञानको उत्पन्न नही करता, आवरण कुछ नही है।

साध्याविनाभावित्व होनेसे ही हेतुकी हेतुता— वास्तविकता यह है कि शब्द नही, सुन चुकनेके बाद भी शब्द नही तो इस तरह श्रावणत्व जो हेतु है, जैसे सपक्षसे हटा हुआ है। तो भी पक्षमें तो हेतु साध्यके अविनाभावीरूपसे रह रहा है। शब्द अनित्य है श्रावण होनेसे। इसका सपक्ष सत्त्व नही मिल रहा, हाँ विपक्ष व्यावृत्ति मिल रही, किन्तु त्रैरूप्यका तो भंग हो गया। लेकिन अनुमान यही यों है कि श्रावणत्व हेतु अनित्यके साथ अविनाभावी सम्बन्ध रखता है। अनित्यपना न होता तो सुननेमें भी न आता। पहिले सुननेमें नही आ रहा था, अब सुननेमें आया, लो अब सुनना भी मिट गया, यह बात अनित्य हुए बिना हो न सकती थी इस कारण हेतुका लक्षण यही सही बैठता है कि जिसमें अन्यथानुपपत्तिका नियम हो अर्थात् साध्यके अभावमें साधनका न होना यह लक्षण जिसमें पाया जाय वह हेतु सही है। त्रैरूप्य मान करके हेतुको सम्यक् सिद्ध कर सकना कठिन है। ऐसा भी नही कह सकते कि जो हेतु सपक्ष और विपक्षमें नही रहता उसमें अन्यथानुपपत्ति नही घट सकती। यह यों नही कह सकते कि स्पष्ट यह बात है कि कोई हेतु सपक्षमें न भी रहे तो भी सही माना गया है। जैसे समस्त क्षणिक हैं सत्त्व होनेसे। स्वयं क्षणिकवादियोंने यह कहा है, तो अब यह हेतु न सपक्षमें रहता है न विपक्षमें, क्योंकि पक्षमें तो सारा जगत आ गया। अब सपक्ष सरा क्या ढूंढ़ोगे। यह सत्त्व हेतु केवल विपक्षमें असत्त्वरूपसे निश्चित हो सो बात नही क्योंकि विपक्षभूत नित्य तुम कुछ मानते। इस कारण यह ही मानना श्रेष्ठ है कि हेतुका लक्षण अन्यथानुपपत्ति है।

सपक्षविपक्ष दोनोंमें हेतुके असत्त्वरूपसे निश्चितत्वको असाधारण माननेपर अन्तिम ऊहापोह— शंकाकार कहता है कि सब अनित्य है सत्त्व होनेसे, इस अनुमानमें सत्त्व हेतुका सपक्ष है ही नही, क्योंकि पक्षमें सारा जगत आ गया तो सपक्षमें सत्त्वका अभाव है इस निश्चयसे सत्त्व हेतु अनित्यको सिद्ध करनेमें समर्थ है,

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

परन्तु शब्द अनित्य है श्रावण्य होनेसे यहां श्रावण्य हेतुका साध्य है अनित्यत्व सो अनित्यत्व सपक्ष ही कुछ नही हो ऐसा नही है। घटपटादिक अनित्य पदार्थ तो हैं किन्तु शब्दके अतिरिक्त जो श्रावण्य हो स्रोत्र इन्द्रियके द्वारा ग्राह्य हो ऐसा सपक्ष नही है। तो सपक्षके होनेपर भी अर्थात् पदार्थ तो अनित्य बहुतसे हैं लेकिन श्रावणत्व हेतु उन में नही पाया जाता है, इससे इस अनुमानके दूषित बतानेका विरोध करनेमें जो अनुमान दिया है दूसरा उससे पटतर नही बैठता है। उत्तरमें कहते हैं कि भाई यदि सपक्षमें श्रावणत्व भी होता तो उसे भी यह व्याप्त कर लेता। जैसे पक्षमें श्रावणत्व साधन है और अनित्यत्व साध्य है, इसी तरह यदि कोई सपक्षमें भी श्रावणत्व हुआ करता तो भी सिद्ध हो जाता। सपक्षके होनेपर फिर श्रावणत्व नही रह रहा इस कारण यदि दोष देते हो तो विपक्षके होनेपर घूमादिक भी असत्त्वरूपसे निश्चित हों तो वह भी निश्चयका कारण न बने। शंकाकार कहता है कि विपक्ष हो अथवा न हो, विपक्षमें असत्वरूपसे जो हेतु निश्चित किया जा रहा वह तो साध्यका अविनाभावी होनेसे हेतु है। उत्तरमें कहते हैं कि तब तो फिर सपक्ष हो अथवा न हो, असत्व से निश्चित हेतु भी साध्यके अविनाभावी होनेके कारण बन जायें। शंकाकार कहता है तब तो फिर सपक्षमें अथवा सपक्षके एक देशमें यदि कोई हेतु रह रहा हो तो वह हेतु हो कैसे कहलायेगा क्योंकि इस प्रसंगमें जब कि सपक्षके एक देशमें हेतु रहता हो तो वह तो निश्चित रहा कि सपक्षमें न रहते हुये ही हेतु होता है। उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह तो विपक्षमें भी हेतुके असत्वका अनवधारण हो जायगा और यह बात अयुक्त है अर्थात् हेतुका विपक्षमें असत्वका होना पूर्ण निश्चित हो तब वह हेतु सही माना जायगा। चाहे पक्ष धर्मत्वमें कमी आ जाय, सपक्ष सत्वमें कमी आ जाय पर विपक्षमें असत्व होना अनिवार्य है क्योंकि विपक्षमें असत्व होनेकी अनिवार्यता न मानी जाय तो साध्यके अविनाभावीपनका व्याघात हो जायगा। इस कारण वह प्रथम विकल्प युक्त नही ठहरता कि सपक्ष और विपक्षमें जो हेतु असत्वरूपसे निश्चित हो उसे असाधारण कहा करते हैं।

सपक्ष और विपक्षमें हेतु असत्त्वके संशयित होनेकी असाधारणतापर विचार— अब दूसरे विकल्पकी बात सुनिये। यदि यह मानोगे कि सपक्ष और विपक्ष में हेतु असत्वरूपसे संशयित है, कि नही इस प्रकारका संशय उठता है तो उसे असाधारण कहेंगे। उत्तरमें कहते हैं कि सपक्ष और विपक्षमें हेतुके असत्व रूपसे संशयित होनेको असाधारण कहनेपर इसी हेतुमें अनेकान्तिकताका दोष आयगा। उसमें भी संशय पड़ा रहेगा। क्या निश्चित पक्ष धर्मत्वादिक तीन बातोंसे अनेकान्तिक हुआ या उन तीन बातोंके संशयसे अनेकान्तिक हुआ। तब तो अनेकान्तिक बनेगा, लेकिन इस अनुमानमें कि शब्द अनित्य है श्रावण्य होनेसे, यह असाधारण दोष नही लगता, और इसी कारण न विरुद्धपना आता है। भला जो विपक्षके एक देशमें भी नही रहा है वह कैसे विपक्षमें ही रहा करे। तो इस अनुमानमें कि शब्द अनित्य हैं श्रावण

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

होनेसे, कोई दोष नहीं आता। असिद्ध दोष भी नहीं आता क्योंकि शब्दमें श्रावणत्व का सत्व है इसका निश्चय पड़ा हुआ है, इस कारण पक्षधर्मत्व और सपक्षसत्व होना हेतुका लक्षण नहीं कहा जा सकता।

विपक्षव्यावृत्तित्वका साध्यविनाभावित्वमें अन्तर्भाव—गैरूप्यवादीने हेतु के विशेषण तीन दिये थे—पक्षधर्मत्व सपक्षसत्व और विपक्षासत्व। इन तीनमेंसे पक्षधर्मत्व और सपक्षसत्व तो ठीक विशेषण नहीं है क्योंकि पक्षधर्मत्व न होनेपर भी अनेक हेतु और अनुमान सही हुआ करते हैं, इस प्रकार सपक्षसत्व न होनेपर भी अनेक अनुमान और हेतु सही रहा करते हैं। हाँ विपक्षमें हेतुका न रहना यह धर्म अवश्य ही युक्त है, लेकिन इस धर्मका हेतुके लक्षणमें अन्तर्भाव हो गया है। हेतुका जो लक्षण कहा गया है साध्यका अविनाभावी रूपसे जो निश्चित हो वह हेतु है तो साध्यका अविनाभावीपन हेतुमें तब ही रहता है जब हेतु विपक्षमें न रहे। तब हेतुका प्रधान लक्षण यह मानो। अन्य लक्षण माननेसे क्या प्रयोजन? शंकाकार कहता है कि सपक्षसत्व न माननेपर हेतुमें अनन्वयताका दोष आयगा। अनन्वयता उसे कहते हैं कि हेतु साध्यके साथ न जुड़ा फिरे। हेतु साध्यके साथ जुड़ा फिरे, रहा करे यह बात तब बन सकती है जब सपक्ष हो और सपक्ष में हेतु रहा करे। उत्तर देते हैं कि अन्वय का लक्षण है अन्तर्व्याप्ति, चाहे वह अन्तर्व्याप्ति पक्ष तक ही सीमित हो, चाहे सपक्षमें भी जाये वह अन्तर्व्याप्ति है। यदि हेतुका कोई सपक्ष नहीं मिलता तब हेतु सपक्षमें नहीं पाया गया यह बात तो दूसरी है किन्तु सपक्ष मिले तो नियमसे हेतु उसमें भी रहे और पक्षमें तो रह ही रहा है। ऐसी व्याप्तिका अन्वय है सो यह अन्वय तथोपपत्तिरूप है जैसे कि अन्यथानुपपत्तिका व्यतिरेकसे सम्बन्ध है इसी प्रकार तथोपपत्तिसे अन्वयका सम्बन्ध है। साध्यके होनेपर साधनके होनेका नाम तथोपपत्ति है। अब देख लो इसमें अन्वयपना आ गया है। साध्यके साथ हेतुका जुड़ना दिखा दिया गया है। और अन्यथानुपपत्तिका अर्थ यह है कि साध्यके अभावमें साधनका न होना इस दृष्टिमें व्यतिरेक दिखा दिया गया है। यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि उदाहरणमें दृष्टान्त वाले धर्मीमें ही साधनका साधार्य होना ही चाहिये। अर्थात् हेतु सपक्षमें रहा ही करे तब हेतु हुआ है सो नियम नहीं बनता।

साध्यविनाभावित्वमें सब समस्याओंका समाधान—हेतु पक्षके साध्यके साथ जुड़े ही यह तो नियम बनता कि यदि उसका सपक्ष है कोई तो उसमें भी हेतु रहे, किन्तु जिसका कोई सपक्ष ही नहीं है उसमें हेतुके बनाने की आवश्यकता ही नहीं है। जैसे जगतमें समस्त पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं सत्व होनेसे, इसमें सपक्ष न मिलेगा क्योंकि सबको ही पक्ष बना लिया। समस्त पदार्थ अनेकान्तस्वरूप हैं—सत्व होनेसे। कोई पूछे कि उदाहरण बतलावो तो क्या उदाहरण बतलावोगे? जब सब ही पक्षमें आ गए तो उदाहरण क्या मिलेगा? तो सपक्ष यदि हो तब तो हेतु न रहे, उसे तो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

दोषी कह सकते हैं किन्तु जिस अनुमानमें सपक्ष मिले ही नही उसमें हेतुके दिखानेकी क्या आवश्यकता है ? यदि इस ही हठपर डटे रहोगे कि हमें तो सपक्षसत्व मिलेगा नो हेतु भी सही मानोगे तब फिर बतलावो कि तुम जो यह अनुमान करते हो कि सब कुछ क्षणिक है सत्व होनेसे, इसका सपक्ष बतला दो तब तो तुम्हारा हेतु भी गलत जायगा, फिर सब पदार्थ क्षणिक न कहला सकेंगे। इस कारण इन तीन बातोंसे हेतु को सही माननेकी हठ छोड़ो, पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व, विपक्षव्यावृत्ति ये तीन धर्म हुए, वही हेतुका स्वरूप है ऐसा कहना युक्त नही है। तात्पर्य यह है कि पक्षधर्मत्व हो अथवा न हो तो भी हेतु यही हो सकता। सपक्ष सत्व हो अथवा न हो तो भी हेतु सही हो सकता है। हां विपक्ष व्यावृत्ति अवश्य होना चाहिये। किन्तु वहां भी अनेक घटनायें ऐसी होती है कि विपक्ष भी इसका कुछ न कुछ न मिलेगा। तो व्यावृत्तिकी बात ही क्या कहोगे ? जैसे क्षणिकवादियोंकी बात क्षणिकवादियोंसे ही कही जारही है, समस्त पदार्थ क्षणिक हैं सत्व होनेसे, अब इसका विपक्ष बतावो। विपक्षके मायने हैं यह कि जो क्षणिक न हो जो नित्य हो वह बतावो। जो नित्य हो चीज और उसमें फिर सत्वकी व्यावृत्ति हो ऐसा बतला तो दो कुछ। तो तुम्हारे ये तीन विशेषण फेल हो जाते हैं पर हेतुका यह लक्षण कि जो साध्यके साथ अविनाभावी है वह हेतु हुआ करता है, इस लक्षणमें कोई दोष नही है। तब देखलो—यदि यह अनुमान बनाया जाय कि सब अनेकान्तस्वरूप हैं सत्व होनेसे तो अनेकान्त स्वरूपताके साथ सत्वका अविनाभाव है। जो अनेकान्तस्वरूप नही है वह सत् भी नही है—जैसे गधेके सींग, आकाशके फूल। ये कोई सत् नहीं है तो अनेकान्त भी नहीं है। तो हेतुका लक्षण यह युक्त रहा कि जो साध्यका अविनाभावी हो सो हेतु है। साध्यके अभावमें साधन न हो बस यह नियम युक्त है। अनेकान्तात्मकताके अभावमें सत्व ही नही रह सकता है तब ना हेतु ठीक बैठ गया !

हेतुके पाञ्चरूप्य लक्षणकी आशङ्का—अब यौगसिद्धान्तवादी शङ्का करता है ठीक है, त्रैरूप्य हेतुका लक्षण नही हो सकता, क्योंकि हेतुका लक्षण पंचरूपपना है। अर्थात् तीन रूप तो उनके हैं ही, उनके अतिरिक्त दो बातें और होनी चाहियें, क्योंकि त्रैरूप्यके होनेपर भी हेतु सही बन जाता है और उसके न होनेपर भी हेतु सही बन जाता है। किन्तु दो धर्म जो हम बतावेंगे वे उन गैर सही दोनोंको शुद्ध करने वाले बतावेंगे। वे दो धर्म हैं- अबाधितविषय और असत्प्रतिपक्ष। अबाधित विषयका अर्थ यह है कि जिस साध्यके विषयमें दूसरे प्रमाणको बाधा न आये। यदि किसी साध्यमें अन्य प्रमाणको बाधा आती है तो वह हेतु सही नही है। वह बाधित विषय बन गया, इसी प्रकार यदि किसी अनुमानका विरोध करने वाला दूसरा अनुमान होगा तो वह प्रतिपक्ष बन गया। उसका प्रतिपक्ष कोई दूसरा विरोधी अनुमान आदि है। तो जहाँ बाधित विषयता न हो वह हेतु हुआ करता है, इस कारण हेतुमें पंचरूपता पायी जाती है। अब यहाँ देखनेकी बात है कि यदि हेतुमें पंचरूपता न मानोगे तो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

एक अनुमान बना रहे हैं उसमें आप यह देख लेंगे कि त्रैरूप्य तो मौजूद है फिर भी अनुमान सही नहीं हैं। जैसे ये सारे फल पके हुये हैं क्योंकि एक शाखासे उत्पन्न होते हैं। किसी पेड़में एक शाखामें जितने लगे हुए हैं उनमें कुछ तो कच्चे ही हैं कुछ पके भी होते लेकिन यहाँ यह अनुमान बना दिया जाय कि ये सारे फल पके हुए हैं क्योंकि एक शाखामें लगे हैं जैसे कि जो अभी एक फल हमने खाया है और वह हमें रसके स्वादसे अनुभव करके पका मालूम पड़ा है तो इसी तरहसे ये सारे फल पके हुए हैं क्योंकि एक शाखामें लगे हुए हैं। अब देखिये कि इस अनुमानमें त्रैरूप्यपना तो पूरा मौजूद है, पक्षमें भी एक शाखापना प्रभवत्व गया और सपक्ष तो जिसको हमने खा लिया उसमें भी एक शाखा-प्रभवपना गया और विपक्षमें दूसरी डालीमें लगे कच्चे फल हैं उनमें एक शाखा प्रभवपना नहीं है तो त्रैरूप्य लग गए लेकिन अबाधित विषय-पना नहीं है। इसका विषय बाधा जा रहा है, कैसे बाधा जा रहा कि उसी शाखाके दूसरे फल भी तोड़कर खा लो ना। तो इस प्रत्यक्षसे साध्य हेतु बाधित है इस कारण से यह हेतु सही नहीं है। तब तुम्हें अबाधित विषयपना मानना पड़ा ना? दूसरा दृष्टान्त सुनो। यदि असत् प्रतिपक्ष नहीं मानते और खाली त्रैरूप्यके हिसाबको ही हेतु सही कहते हो तो एक अनुमान भी सही बन बैठेगा। क्या? किसी देवदत्तके मान लो चार लड़के हैं - उनमेंसे किसी लड़केके बारेमें अनुमान बनाया जा रहा। मानलो एक पुत्रका नाम यज्ञदत्त भी है। यह यज्ञदत्त मूर्ख है क्योंकि देवदत्तका पुत्र होनेसे। देवदत्त के तीन लड़के तो थे मूर्ख और उनमेंसे यज्ञदत्त नामका लड़का था विद्वान, पर यहां अनुमान यह बनाया गया कि यह यज्ञदत्त मूर्ख है क्योंकि देवदत्तका पुत्र होनेसे। अब देखिये - इसमें पक्षधर्मत्व है सपक्षसत्व है, विपक्षव्यावृत्ति भी है। जो देवदत्तका लड़का विद्वान है उसे जो मूर्ख होनेका अनुमान किया जा रहा है तो क्या यह सही अनुमान है? सही नहीं है क्योंकि वह यज्ञदत्त तो व्याख्यान दे रहा है शास्त्र पढ़ता है। उसमें विद्वानपनके चिन्ह पाये जा रहे हैं। तो प्रतिपक्ष मिल गया इस कारण यह हेतु सही नहीं है। तो अबाधित विषय और असत् प्रतिपक्ष ये दो रूप और जोड़ दो, ५ रूप बन जायें तो हेतुका लक्षण सही बन जायगा।

हेतुके पाञ्चरूप्य लक्षणके निराकरणमें संक्षिप्त कथन उक्त शंकाके उत्तरमें इस समय इतना ही समझ लीजिये कि हेतुका जो लक्षण कहा गया है, साध्य का अविनाभावी हो अथवा दूसरे शब्दोंमें अन्यथानुपपत्तिका जहाँ निश्चय हो वह हेतु हुआ करता है। हेतुके लक्षणमें अबाधित विषय ना आ जाता है, असत् प्रतिपक्ष ना आ जाता है। विस्तारकी जरूरत नहीं है, और कहीं कहीं अबाधित विषय और असत् प्रतिपक्षमें भी आभास बन सकता है किन्तु हेतुके इस लक्षणमें दूषण नहीं आ सकता है, इस कारण हेतुका लक्षण न तो त्रैरूप्य माना जाय और न पांचरूप्य माना जाय किन्तु साध्यके अभावमें साधनके न होनेको साध्य कहते हैं यही लक्षण युक्तिसंगत है, प्रकरणमें साधनकी परीक्षा की जा रही है। प्रसंग तो है अनुमानके वर्णनका, स्मृति-

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

ज्ञान प्रमाण है, प्रत्यभिज्ञान प्रमाण है, तर्क प्रमाण है, ये तीन बातें तो पहिले बता दी थीं अब अनुमान प्रमाण है यह बात बता रहे हैं। तो अनुमानका लक्षण कहा था कि साधनसे साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान कहते हैं। तो सिल्सिलेमें साधनकी परीक्षा की जा रही है कि साधन कहते किसे हैं। साधन कहो अथवा हेतु कहो, दोनों का एक ही भाव है। तो यहां परीक्षामें यह बात उतरी कि जो साध्यका अविनाभावी हो उसे साधन कहते हैं।

साध्याविनाभावित्वके बिना अबाधितविषयत्वादिकी असिद्धि- पंचरूपत्व हेतु मानने वालोंसे कहा जारहा है कि जो दो रूप और बढ़ाये हैं—अबाधित विषय और असत् प्रतिपक्ष, ये दो तभी प्रमाण हुए हैं जब कि वे साध्यके अविनाभावी पनका समर्थन करते हैं। इस कारण प्रधान लक्षण हेतुका यही माना जाना चाहिये कि जो साध्यके साथ अविनाभावरूपसे निश्चित् हो सो हेतु है और फिर जो त्रैरूप्यका खण्डन करके पञ्चरूप्यका समर्थन किए जानेका प्रयत्न कर रहा है तो यों तो प्रमाण सिद्ध त्रैरूप्यके विषयमें कोई बाधा ही नजर न आयगी, क्योंकि त्रैरूप्य और बाधा इन दोनोंका विरोध है, इसका कारण यह है कि त्रैरूप्य कहते हैं उसे कि साध्यके सद्भाव होनेपर ही हेतुका पक्षमें होना। तो तुमने एक सद्भाव बता दिया और बाधा का अर्थ यह है कि साध्यके अभावमें ही पक्षके हेतुका होना यह बाधा है। तो जब एक बार यह कह दिया कि त्रैरूप्य है अर्थात् साध्यके सद्भाव होनेपर ही हेतुका पक्षमें सद्भाव है तो यह दूसरी बात कहांसे बैठ सकेगी कि साध्यके अभावमें पक्षके हेतुका सम्भवपना है इन दोनों बातोंका एक जगहमें विरोध है। त्रैरूप्यमें यही तो बताया गया है कि हेतुका पक्षमें सद्भाव होना सो तो पक्षधर्मत्व है और साध्यके सद्भाव होने पर ही हेतुका पक्षमें सद्भाव होना सो यह अन्वय है अथवा सपक्षसत्व है और साध्यके सद्भाव होनेपर ही हेतुका पक्षमें सद्भाव होना, जिसका फलित अर्थ यह है कि साध्यके अभावमें हेतुका पक्षमें न पाया जाना सो यह है विपक्षासत्व याने विपक्षव्यावृत्ति। यदि इन तीन रूपोंमें एक भावकी बात कही गई है और बाधा कहलाती है अभावरूप तो भावस्वरूप त्रैरूप्यका और अभाव स्वरूप बाधाका एक अनुमानमें, एक हेतुमें विरोध कैसे हो सकता है?

प्रत्यक्ष व आगमके विषयबाधकतापर ऊहापोह—अब और भी अन्य बात सुनो! जो अबाधित विषयको सिद्ध करनेके लिए हेतुके विषयमें बाधकपनकी बात कही है कि प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा आगम प्रमाण सो हेतुके विषयमें अर्थात् साध्य में बाधा आये तो वह बाधित विषय है सो यह तो बतलावो कि प्रत्यक्ष और आगम हेतुके विषयके बाधक किस कारणसे बन जाते? क्या इस कारणसे कि वे दोनों प्रमाण अपने अर्थके अव्यभिचारी है अर्थात् अपने विषयको निर्दोष रूपसे सिद्ध रखते हैं तो यह बात तो त्रैरूप्यमें भी बनी हुई है। त्रैरूप्य हेतुके माननेपर भी स्वार्थकी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

अव्यभिचारिता है। तब फिर अध्यक्ष और आगम बाधक होंगे हेतुके विषयमें, यह बात न बनी, यह तो त्रैरूप्यकी ही बात है कि हेतुमें त्रैरूप्य हुआ तो वह हेतु सही है, और यदि त्रैरूप्यमें कमी है तो वह हेतु ही नहीं अतएव साध्यकी बाधा स्वयं सिद्ध हो गई। जैसे प्रत्यक्ष तो यों दिखता है कि चन्द्र और सूर्य स्थिर हैं, चलते हुए कहाँ नजर आते हैं ? तो चन्द्र और सूर्य नक्षत्र आदिककी स्थिरताको ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष अनुमानसे बाधित हो जाता है। तब इसके विरोधमें अनुमान बनता है कि ये चन्द्र सूर्य नक्षत्र स्थिर नहीं हैं गमन करते हैं क्योंकि कुछ समय बाद एक देशसे अन्य देशको प्राप्त हो जाते हैं। तो देखो स्थिरताको ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष इस अनुमान से बाधा गया तो त्रैरूप्य मिल गया, उसने बाधा डाल दी, तब अध्यक्ष बाधक हुआ करे यह नियम तो नहीं बना। देखो – प्रत्यक्षसे जानी हुई चीजमें भी अनुमानसे बाधा आ गई तब प्रत्यक्ष पुष्ट हुआ कि अनुमान पुष्ट हुआ ? इस जगह तो अनुमान पुष्ट हुआ। भले ही किसी जगह प्रत्यक्ष और आगम बाधक ही होता है।

एक शाखाप्रभत्व हेतु वाले अनुमानमें भ्रान्त होनेसे बाध्यत्वके विषयमें विचार— यदि यह कहो कि जो पहिले दृष्टान्त दिया गया था कि ये समस्त फल पके हुए हैं एक शाखामें उत्पन्न होनेसे तो इस अनुमानमें जो एक शाखा प्रभत्व सिद्ध किया जा रहा है और उससे जो साध्य सिद्ध किया जा रहा है सो वह सब भ्रान्त हैं। भ्रान्त होनेसे यह अनुमान बाधा जाता है। कैसे भ्रान्तपना है सो बतलावो। उत्तरमें पूछ रहे हैं क्या प्रत्यक्ष प्रमाणसे इसमें बाधा आती है इस कारण भ्रान्त हो रहा है या त्रैरूप्यकी विकलता है पूर्व अनुमानमें इस कारण भ्रान्त बन रहा है ? यदि कहो कि प्रत्यक्ष द्वारा बाधा जा रहा है इस कारण भ्रान्त है वह अनुमान है ऐसा कहनेपर तो इतरेतराश्रय दोष होगा। जब भ्रान्तपना सिद्ध हो जाय तब प्रत्यक्षसे बाधा कहलाये और जब प्रत्यक्षके बाधा बन जाय तब वह अनुमान भ्रान्त कहलाये। यदि कहो कि त्रैरूप्यकी विकलता होनेसे वह भ्रान्त हो गया अनुमान, तो यह बात तो यों नहीं बनती कि इस अनुमानमें उन दूसरोंने त्रैरूप्यका सद्भाव माना है और मानलो त्रैरूप्य उसमें सिद्ध न हो तो त्रैरूप्य सिद्ध न होनेसे हेतु अगयक बन गया। फिर प्रत्यक्षकी बाधासे क्या प्रयोजन रहा ? जिस अनुमानको सिद्ध करनेके लिये हेतु दिया जा रहा है वह हेतु यदि त्रैरूप्य युक्त है तब तो दूसरेको क्या बाधा आयगी और यदि उस हेतुमें त्रैरूप्य नहीं मिल रहा है तो न मिलनेसे वह हेतु साध्यका साधक न हो सका, अब उसमें प्रत्यक्षसे बाधा दिखानेकी आवश्यकता क्या रही ?

स्वसम्बन्धी निर्णयसे अबाधितविषयत्वके निश्चयका अभाव— अब कुछ अन्य बात भी सुनिये ! पंचरूप्यकी सिद्धिके लिए जो अबाधित विषयपनेकी बात कही है कि त्रैरूप्यसे अधिक दो रूप और मानना चाहिए—एक अबाधित विषय और दूसरा असत् प्रतिपक्ष। सो अबाधित विषयपनेकी बात बतावो कि वह निश्चित्

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

होकर हेतुका लक्षण बनेगा ? या अबाधित विषयपना अनिश्चित् ही रहकर हेतुका लक्षण बन जायगा ? अनिश्चित् होकर हेतुका लक्षण बन जाय अबाधित विषय तो इसमें बड़ी आपत्तियाँ हैं। फिर तो पक्षधर्मत्व भी असत्त्व भी ये सब अनिश्चित् होकर हेतुके कारण बन जायेंगे, फिर त्रैरूप्यका खण्डन करके पञ्चरूप्यके समर्थनकी आवश्यकता क्या रही ? यह भी नहीं कह सकते कि अबाधित विषय निश्चित होकर हेतु का लक्षण बनता है क्योंकि अबाधित विषयके निश्चयका ही अभाव है। अगर अबाधित विषयका निश्चय होता है तो यह बतावो कि वह सम्बन्धी निश्चय है अथवा सर्व सम्बन्धी निश्चय है ? याने अबाधित विषयके निश्चयको केवल अनुमान करने वाला पुरुष ही जानता है या लोकके समस्त मनुष्योंमें अबाधित विषयत्वका निश्चय कर रहे हैं। यदि कहो कि स्वसम्बन्धी निश्चय है तो वह निश्चय तत्कालीन है या सर्वकालीन अर्थात् उस प्रसङ्गमें जो अबाधित विषयका निश्चय है, केवल उस ही समयका निश्चय है या सब समयोंमें ऐसा हुआ करता है ऐसा निर्णय है ? तो तत्कालीन निर्णय तो मिथ्या अनुमानमें भी सम्भव है। जैसे ये सब फल पके हैं एक शाखासे उत्पन्न होनेके कारण तो यह उस समयका ही निर्णय तो है। तत्कालीन निर्णय तो झूठे अनुमानमें भी सम्भव होता है। जैसे कि तत्कालीन निर्णय विपर्ययज्ञानमें रहता है। जैसे पड़ी तो थी सीप और कोई पुरुष जान रहा कि यह चाँदी ही है, तो उस समय जो चाँदीका ज्ञान कर रहा है उसमें तो जरा भी सदेह नहीं है पूर्ण निश्चय है। तो तत्कालीन निर्णयसे ज्ञानमें प्रमाणता नहीं आया करती। यदि कहो कि सर्वकालीन निर्णय है। अनुमान बनाने वालेने अबाधित विषयपनेका सर्वसमयोंके लिए निर्णय किया है तो यह बात असिद्ध है। कालान्तरमें इस अनुमानमें कभी बाधा न आयगी, ऐसा अल्पज्ञ पुरुष तो निश्चय कर नहीं सकते।

सर्वसम्बन्धी निर्णयसे अबाधितविषयत्वके निश्चयकी अशक्यता यदि मान लो सर्वसम्बन्धी निर्णय है अर्थात् किसी अनुमानमें किसी अन्य अनुमानके द्वारा या प्रत्यक्ष आदिकके द्वारा बाधा आती है न वह बाधित विषय बने और किसी अन्य अनुमान आदिकसे बाधा नहीं आती तो वह अबाधित विषय बने तो ऐसे अबाधित विशेषणपनेका निश्चय आप कह रहे हो कि दुनियाके सारे लोग कर रहे हैं तो सर्वसम्बन्धी भी निश्चय उसका उस ही कालमें है या उत्तर कालमें भी है ? अर्थात् भविष्यमें भी यह अबाधित विषय रहेगा ऐसा भी निर्णय है ? सो ये दोनों बातें ठीक नहीं बनती क्योंकि जो अल्पज्ञ पुरुष है वह यह निर्णय नहीं रख सकता है, सब जगहमें, सब समय में सर्व जीवोंका इस अनुमानमें कोई बाधा नजर नहीं आ रही क्योंकि सबको सब समय सब जगह बाधा नहीं है इस अनुमानके ऐसे निश्चयका कोई कारण नहीं है, क्यों कि ऐक पुरुष जो अनुमान कर रहा है किसीका साध्य सिद्ध करनेके लिए उसे तब यह आवश्यक हो गया कि यह निश्चित हो जाना चाहिये उस मनुष्यको कि इस अनुमानमें सब जगह तीन काल सब मनुष्योंको कोई बाधा नजर नहीं आ रही इस कारण यह

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

अनुमान सही है, तो ऐसा निश्चय तो कोई कर ही नही सकता जो अल्पज्ञ है, और जो सर्वज्ञ है उसे अनुमान बनानेकी आवश्यकता ही क्या है ? तो ऐसे निश्चयका कोई कारण नही है। यदि कारण ही बताना चाहते हो तो बतलावो कि सर्वत्र सर्वदा सर्व जीवोंको इसमें कोई बाधा नजर आती ऐसा तुमने कैसे समझा। अनुपलम्भसे अथवा सम्वादसे। यानें स्व जीवोंको बाधा नजर नही आ रही, बाधाका अभाव है इस कारण निश्चय बना या सब जीवोंमें सम्वादज्ञान बन रहा है इस कारण निश्चय बना। सम्वाद ज्ञान विध्यात्मक होता है। तो जान रहे है उसमें विवाद न रहे किन्तु सही ज्ञान हो रहा हो उसका नाम सम्वाद है। तो अनुपलम्भ तो निश्चयका कारण है नही क्योंकि सर्व जीवोंको बाधा नही है, यह बात तो सिद्ध नही है, अनैकान्तिक भी है।

संवादसे भी सर्वसम्बन्धी निर्णयसे अबाधितविषयत्वके निश्चयकी अशक्यता—यदि कहो कि सम्वाद कारण बन जायगा अर्थात् सब जीवोंको इस अनुमानके सम्बन्धमें सम्वाद बना हुआ है तो यह बात तो तब सिद्ध हो जब पहिले अनुमान सिद्ध हो जाय। अनुमानकी प्रवृत्तिसे पहिले तो वह बात सिद्ध ही नही है। अनुमानके उत्तरकालमें उसकी सिद्धि हो जायगी। यदि ऐसा मानोगे तो इसमें इतरेतराश्रय दोष है। अर्थात् अनुमानसे जब साध्यकी प्रवृत्ति बन जाय तब तो सम्वादका निश्चय हो और उससे फिर अबाधित विषयकी जानकारी बने और उसमें फिर अनुमानकी प्रवृत्ति हो। इसमें अबाधित विषयपनेकी बात और लादकर हेतुको सही बनानेकी बात कहना व्यर्थ है। यदि कहो कि अविनाभावके निश्चयसे ही अबाधित विषयत्वका निश्चय हो जायगा, यह पूछा जा रहा है ना कि यह हेतु अबाधित विषय है तो इस हेतुमें, इस अनुमानमें किसी भी अन्य युक्ति आगम आदिके द्वारा बाधा नही आ रही है यह निर्णय कैसे हो गया ? इसपर शंकाकार कह रहा है कि अविनाभावके निश्चयसे हो गया कि यह हेतु साध्यके साथ अविनाभावी रूपसे रह रहा है इस कारण इस हेतुमें कोई बाधा नही है। उत्तरमें कह रहे हैं—एक तो बात यह है कि पञ्चरूप्य हेतुमें यह अविनाभाव तुमने माना ही नही है। अविनाभावकी समाप्ति मानने वाले शंकाकार इसमें अविनाभावका निश्चय कैसे कर लेंगे ? अबाधित विषयत्वका निश्चय न किया जा सकेगा और अविनाभावी होनेके कारण अबाधित विषयपनेमें निश्चय करना मान लोगे तो अविनाभावी ही हेतुका लक्षण मानलो फिर तुम्हारा सम्वाद खोलनेकी क्या जरूरत है। तब तो जो यह अनुमान बनाया गया था कि ये सारे फल पके हैं एक शाखासे उत्पन्न होनेके कारण तब इसमें जो हेत्वाभासपना नजर आ रहा है वह बाधित विषयत्वके कारण नही किन्तु हेतु ही साध्यके साथ अविनाभावी नही बन रहा इस कारण हेत्वाभास है। प्रयोजन यह है कि हेतु सच्चा वही है जो साध्यके साथ अपना अविनाभाव रखता हो अर्थात् साध्यके न होनेपर साधन न हो। और वह साधन मिल जाय तो उससे निर्णय होता है कि यह साध्य अवश्य है पर और अबाधित विषयपना या त्रैरूप्यपना आदिक कारण युक्त नही है। इसमें हेतु सही न होकर हेतु तो अन्य-

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

थानुत्पत्तिसे सही हुआ करता है। तो अबाधित विषयपनेकी बात निर्णयकी नही रही।

सत्प्रतिपक्षतामें हेतुके तुल्यबलत्व व अतुल्यबलत्वके विकल्प और प्रथम विकल्पका निराकरण - अब पांचवां रूप जो बताया है कि असत् प्रतिपक्ष होनेसे हेतु सही बनता है, सो जो अनुमान गलत बनता है वह सत्प्रतिपक्ष होनेके कारण बना है सो बात नही, किन्तु साध्यके साथ अविनाभाव नही है इस कारण गलत बना है। जैसे एक अनुमान बताया था कि यह यज्ञदत्त मूर्ख है क्योंकि देवदत्तका पुत्र होने से तो इसका खण्डन किया गया था शङ्काकार द्वारा कि यह सत् प्रतिपक्ष है अर्थात् इसके विरोधमें एक दूसरा अनुमान बन जाता है कि यह यज्ञदत्त विद्वान् है, क्योंकि शास्त्रका व्याख्यान कर रहा है। जो बाधक अनुमानसे इस पूर्व अनुमानमें बाधा आये तो यह सत्प्रतिपक्ष बन गया और जो सत्प्रतिपक्ष हो वह हेतु सही नही है, किन्तु हेत्वाभास है। सो उस अनुमानमें जो हेत्वाभासपना आया सो वह सही है कि वह अनुमान गलत है, लेकिन सत्प्रतिपक्ष होनेसे गलत है सो बात नही किन्तु अविनाभावित्व न होनेसे गलत है। यदि सत्प्रतिपक्ष होनेके कारण ही इसे हेत्वाभास कहोगे तो यह तो बताओ कि इस हेतुका प्रतिपक्ष तुल्यबल वाला है या अतुल्यबल वाला है ? जो दो हेतु रखे गए हैं—पहिला तो रखा है देवदत्तका पुत्र होनेसे और दूसरे अनुमानमें हेतु रखा है कि शास्त्रका व्याख्यान करनेसे तो इन दो हेतुवोंमें जिनसे अनुमान बने तो ये दोनों बराबरका बल रखते हैं या कम-बढ़ बल रखते हैं ? जब दो व्यक्ति साथ लड़ते हैं तो उनमें हर एक कोई जानना चाहता है कि इसमें बली कौन है ? निर्बल कौन है ? यदि कहो कि वे दोनों हेतु तुल्यबल वाले हैं तो यह तो बतलावो कि जब दोनों एकसा बल रखते हैं उनमें यह निर्णय कैसे बन सकता है कि यह तो बाध्य है और यह बाधक है। यह तो बाधा डालने वाला है, काम बिगाड़ने वाला है और इसका काम बिगड़ा जा रहा है ये दोनों बातें एक समान बल माननेपर कैसे घटित हो सकती हैं ? यह भेद तो नही सिद्ध हो सकता। यदि कहो कि विशेषता है, उन दोनों के बीच भेद है कि एक हेतुमें तो पक्षधर्मत्वका अभाव है अर्थात् वे जो हेतु कहे गए तत्पुरुषत्व और शास्त्रव्याख्यान इसमें तत्पुरुषत्व जो हेतु है उसमें पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व विपक्षव्यावृत्ति नही पायी जाती, यह भेद पड़ा हुआ है। कहते हैं कि यह बात ठीक नही क्योंकि तौल्यका अभाव नही है यह बात तो उसने नही मानी और मान लीजाय तो इस ही से एक हेतु सदोष बन गया। फिर दूसरा अनुमान देकर बाधा डालनेकी क्या जरूरत है ? याने पहिले अनुमानमें पक्षधर्मत्व आदिक नही पाये जाते हैं, इस कारण दूसरा हेतु बाधा डाल देता है। तो भाई पक्षधर्मत्व आदिक नही पाये जाते इसमें ही बाधा आयी। उसमें बाधा बतानेके लिए अन्य अनुमानकी जरूरत नही है।

अतुल्यबल हेतु होनेसे सत्प्रतिपक्षताके निर्णयकी असिद्धि - यदि कहो कि वे दो हेतु बराबरका फल नही रखते, कम बढ़ बल वाले हैं तो यह बतलावो कि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

उन दोनों हेतुवोंमें कम बढ़ बल किस कारणसे आया ? क्या पक्षधर्मत्व आदिक होने से बल बढ़ गया ? और जिसमें पक्षधर्मत्व नही आया, उसका बल कम हो गया इस तरह उनमें बलकी कमी बढ़ती है या अनुमान बाधासे उनमें बलकी कमी बढ़ती है ? पहिली बात तो यह है कि ऐसा माना ही नही है कि उसमें पक्षधर्मत्व आदिक नहीं हैं, पक्षधर्मत्व आदिक तो दोनोंमें पाये जा रहे हैं । तत्पुत्रत्व हेतुमें भी और शास्त्र व्याख्यान हेतुमें भी, तब कम बढ़ बल कैसे सिद्ध कर दोगे ? यदि कहो कि अनुमान बाधासे उनमें बलकी कमी बेशी उत्पन्न हुई है तो वह बात यों अयुक्त है कि विवाद तो उसीका चल रहा है, यह विषय तो अब तक भी विवादापन्न है । यह व्यवस्था नही बनायी जा सकती है कि उन दोनों हेतुवोंमें तुल्यता होनेपर भी तो त्रैरूप्य उसमें भी है । त्रैरूप्य दूसरे हेतुमें भी है । यों समानता है फिर भी एक तो बाधा जाय और दूसरा बाधक बने यह व्यवस्था नही बन सकती । अगर यों अटपट व्यवस्था बन जाय तो जिस च हे अनुमानमें बाधा बतादी जाने लगे, और फिर इसमें तो इतरेतराश्रय दोष है । जब यह सिद्ध हो जाय कि यह तुल्य बल वाला नही है तब तो अनुमान बाधा बने और जब अनुमान बाधा बने तो यह सिद्ध हो सकेगा कि यह तुल्य बल वाला नही है । इस कारण सत्प्रतिपक्षपना सिद्ध नही किया जा सकता । तो सत्प्रतिपक्ष होनेसे हेतु हेत्वाभास है यह भी बात सही नही है किन्तु जिस हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव हो वह हेतु सही है । जिस हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव हो वह हेतु सही है । जिस हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव कुछ नही है वह हेतु मिथ्या है यह सिद्धान्त हुआ ।

प्रकरणसमके निराकरणकी आड़ लेकर हेतुके पाञ्चरूप्यका समर्थन—शंकाकार कह रहा है कि हेतुका पाञ्च्य प लक्षण माननेपर प्रकरणसम नामके हेत्वाभासको हम अहेतु बता सकते हैं क्योकि उसमें अहेतु प्रतिपक्षपना नही है । प्रकरणसप उसे कहते हैं कि जिस प्रसङ्गमें एक वादी कोई अपना अनुमान कह रहा है, अपने साध्यको सिद्ध कर रहा है उन ही शब्दोंमें एक अन्तर करके उस हीके अनुरूप विरुद्ध हेतु देकर प्रतिवादी अपना साध्य सिद्ध करे तो जहाँ वादी और प्रतिवादी दोनों अपने पक्षोंको साध्यरूपसे सिद्ध कर बैठें जिन हेतुवों द्वारा उन हेतुवोंकी जो जिन्ता है, उनका एक विसम्वाद है उसको प्रकरणसम कहा करते हैं । जो पक्ष वादीने निश्चित् किया है वह प्रतिवादीके द्वारा अनिश्चित् कर दिया जाता है और जो प्रतिवादीके द्वारा निश्चित् किया गया है वह वादीके द्वारा अनिश्चित् कर दिया जाता है । ऐसा परस्परमें जो विसम्वाद चलता है उसे प्रकरणसम कहते हैं और यह आलोचना संशयसे लेकर निश्चयसे पहिले तक चलती रहती है । तो ऐसे प्रसङ्गमें जो प्रकरणसम दोष लगता है अर्थात् अपने–अपने साध्योंके निश्चय करनेके लिये जो हेतु प्रयुक्त किया जाता है वह प्रकरणसम है, अर्थात् दोनोंके पक्षमें सपक्षसत्त्व होना अन्वय होना आदिक समान हैं अर्थात् अनुमानको सही करनेके लिये जो मोटे उपाय कहे गये हैं वे सब वादी प्रतिवादी दोनोंके समान हैं, इसलिये वह विवादका स्थल होता है । उस

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रकरणसममें तो असत् प्रतिपक्षपनेका अभाव होना यह ही दे सकता है जैसे वादीने एक अनुमान बनाया, शब्द अनित्य है क्योंकि नित्यधर्मकी अनुपलब्धि है। जैसे घटपट आदिका इसमें नित्यत्व धर्म नही पाया जाता है। तो यह अनित्य है और जो पदार्थ नित्य हुआ करते हैं उनमें नित्यत्व पाया जाता। जैसे आत्मा आदिक योगने नैयायिक आदिकने नित्यधर्मकी उपलब्धि होनेसे अनित्य सिद्ध किया है तो इतनेमें दूसरा मीमांसक बोलता है कि यदि इस प्रकारसे तुम शब्दको अनित्य सिद्ध करोगे तो हम उसको सिद्ध करनेके लिये इस ही प्रकारका अनुमान बनायेंगे। किस तरह ? शब्द नित्य है अनित्यधर्मकी अनुपलब्धि होने से। जैसे कि आत्मा ! आत्मामें अनित्यधर्म नही पाया जाता इस कारण नित्य है। जो नित्य नही होता उसमें अनुपलब्ध्यमान अनित्यधर्मता नहीं रहती। इस अनुमानमें क्या बताया गया है ? यह अनित्य है क्योंकि अनित्य धर्म नही पाया जाता। तो यह कोई हेतुमें हेतु हुआ ! जैसे कि पक्ष है उस हीके अनुरूप एक हेतु रख दिया तो जैसे यह प्रकरणसम है इसमें निर्णय नहीं, हेत्वाभास है। सही अनुमान नही बन सकता तो उसको सदोष बतानेका साधन यह है कि इसमें असत् प्रतिपक्ष नही है अर्थात् वादीने जो अनुमान बनाया उसका विरोधी अनुमान प्रतिवादीके पास है और प्रतिवादीने जो अनुमान बनाया उसका विरोधी अनुमान वादी के पास है। इस कारण यह सत्प्रतिपक्ष है और जो सत्प्रतिपक्ष होगा वह सही हेतु नही है। तो दोनों प्रकरणसम दोषोंको मिटानेमें समर्थ यह हमारा ५ वाँ हेतु है असत्प्रतिपक्ष। इससे यह मानना चाहिये कि हेतुका पाञ्चरूप्य लक्षण है।

असत्प्रतिषक्षके अभावसे प्रकरणसम हेतुके हेत्वाभासपना सिद्ध करनेकी आशंकाका समाधान – अब उक्त शंकाका उत्तर देते हैं कि प्रकरणसमका जो उत्तर दिया है कि शब्द अनित्य है अनुपलभ्यमान नित्य धर्मके होनेसे। वहाँ हम यह पूछते हैं कि नित्यधर्मपना नही पाया जा रहा है शब्दमें, तो क्या वास्तवमें शब्दमें नित्य धर्म नही पाया जाता रूप हेतु अप्रसिद्ध है अथवा नही ? अर्थात् यह हेतु पक्षमें पाया नही जाता है या पाया जाता है ? यदि कहो कि अनुपलभ्यमान नित्य धर्मकत्व शब्दमें नही पाया जाता तो इसका स्पष्ट भाव हुआ कि यहाँ पक्षधर्मत्व नही है हेतु पक्षमें पाया ही नही जा रहा है। तो अपने आप असिद्ध हो गया। पक्षधर्मत्व जहाँ न हो वहाँ असिद्ध दोष आया करता है। असिद्धत्व दोषके निराकरणके लिए ही तो पक्षधर्मत्व बताया गया है। यदि द्वितीय पक्ष लोगे अर्थात् शब्दमें नित्य धर्मका न पाया जाना यह हेतु सिद्ध है अर्थात् हेतु पक्षमें रह रहा है तो यह बतलावो कि साध्यधर्मयुक्त पक्षमें हेतु प्रसिद्ध है या साध्य धर्मरहित पक्षमें हेतु प्रसिद्ध है ? याने जिस पक्षमें साध्य धर्म पाया जा रहा है उस पक्षमें हेतु सिद्ध है या जिस पक्षमें साध्य नही पाया जा रहा उसमें हेतु लग रहा है। यदि कहो कि साध्य वाले धर्ममें ही इस हेतुका सद्भाव है तब तो हेतु सही हो गया। हेतु झूठा कैसे हुआ। यह तो साध्यका गमक है, क्योंकि हेतुका अविनाभावीपन यही कहलाता है कि साध्य वाले ही धर्मीमें हेतुका पाया जाना हो। तो इस

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रकार यह अनुमान सही हुआ उस हेतुके प्रसादसे, जैसा कि लक्षण माना गया है कि जो साध्यके अभावमें न हो साध्यके अविनाभावी रूपसे निश्चित हो वह हेतु है और ऐसा हेतुपना अर्थात् साध्यके अभावमें साधनका न होना यह बात जब यहाँ पायी जा रही है तो वह हेतु साध्यका साधक ही है। कैसा साधक न होगा, क्योंकि हेतु साध्यको सिद्ध करदे इसका कारण है अविनाभाव। साध्यके साथ जिस हेतुका अविनाभाव हो वह हेतु साध्यका गमक होता है। यदि कहोगे कि साध्य धर्मरहित पक्षमें हेतुकी प्रसिद्धि है अर्थात् अनित्यपना रहित शब्दमें अनुपलभ्यमान नित्य धर्मत्वकी सिद्धि है। तो यह तो विरुद्ध दोष हो गया क्योंकि विरुद्ध दोष उसे कहते हैं कि साध्यधर्मसे रहित धर्मीमें जो हेतु जाय, वह विपक्षमें रहा जो हेतु केवल विपक्षमें ही रहे उसे विरुद्ध कहते हैं। जैसे कोई कहे कि शब्द नित्य है कृतक होनेसे, घड़ा अनित्य है किया जाने वाला होनेसे। अरे तो किया जाने वाला धर्म तो अनित्यके साथ व्याप्ति रखता है और तुम विरुद्ध साध्यके साथ व्याप्ति बना रहे हो। अनित्य धर्मरहित शब्दमें नित्यत्वके अभावकी प्रसिद्धि बता रहे हो तो यह विरुद्ध दोष है। और यदि संदेह वाले साध्यधर्म में हेतुकी प्रसिद्धि बतावोगे तो वह अनैकान्तिक दोष हो गया। तात्पर्य यह है कि पक्ष धर्मत्व, सपक्षसत्व, विपक्ष व्यावृत्ति जिस हेतुमें न पाये जायें वह हेतु सही है तो इस अविनाभावके कारण ही तो सही है। उसमें अब असत्प्रतिपक्ष लगाना और उसके कारण हेतु सही बताना झूठा बताना, इस प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं है। हेतु के लक्षणसे ही यह सब घटित हो जाता है कि यह हेतु अनुमानको सही बना देता है या नहीं।

संदिग्धविपक्ष व्यावृत्तिकी आलोचना –अब शंकाकार कह रहा है कि यदि सन्देह वाले साध्य धर्मसे युक्त पक्ष वाले हेतुमें जानेसे अनेकान्तिक कहा जाय तो सारे हेतु अनेकान्तिक बन बैठेंगे क्योंकि साध्यकी सिद्धि करनेसे पहिले साध्य विशिष्ट धर्मीके यह संदेह होता ही है कि साध्यधर्म यहाँ है अथवा नहीं, जैसे कि यह अनुमान बनाया कि इस पर्वतमें अग्नि है धुवां होनेसे तो यह अनुमान बनानेकी आवश्यकता क्यों हुई ? यों कि वहाँ अग्निके बारेमें कुछ सन्देह है, तब तो अनुमान बनाना पड़ा कि पर्वतमें अग्नि है। तो साध्य सिद्ध करनेसे पहले पक्षमें साध्यका संदेह तो होता ही है और संदिग्ध साध्यधर्म वाले धर्मीमें हेतुके बतानेको अनैकान्तिक कहते हैं। फिर तो सारे हेतु अनेकान्तिक हो जायेंगे। इसमें अनेकान्तिकका यह लक्षण मानो कि अनुमेय को छोड़कर अर्थात् जिस पक्षमें हम साध्य सिद्ध करना चाहते हैं उस पक्ष स्थानको छोड़कर अन्य पक्षोंमें अर्थात् सपक्षोंमें, साध्यधर्म वाले अन्य स्थानोंमें यदि साध्यके अभावमें हेतु लगे तो अनैकान्तिक कहलाये। शंकाकारका अभिप्राय यह है कि अनैकान्तिक दोष उसे कहना चाहिये कि जो साध्य धर्म वाले अन्य धर्मीमें साध्यके अभाव में हेतु जुड़ सके उसे अनेकान्तिक कहना चाहिये। साध्यके अभाव वाले, हीमें पक्ष धर्मत्व दिखानेपर तो वह विरुद्ध दोष कहलायेगा, अनैकान्तिक न कहलायेगा। विरुद्ध

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

दोष उसे कहते हैं कि जो हेतु साध्यरहित पक्षमें पाया जाय सो विरुद्ध है परन्तु जो हेतु विपक्षमें तो हटा हुआ हो और सपक्षमें जा रहा हो ऐसा हेतु तो अपने साध्यको सिद्ध करेगा ही इस शंकाका उत्तर देते हैं कि यदि साध्य विशिष्ट धर्मीके सिवाय अन्य धर्मीमें सपक्षमें हेतुका अर्थात् साध्यके साथ सम्बन्ध मानते हो तो साध्य विशिष्ट धर्मी में दिये हुये हेतुसे साध्यको कैसे सिद्ध करोगे ? शंकाकारका यह आशय था कि जिस का एक प्रसिद्ध अनुमान भी किया जाय कि पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे, अर्थात् यहाँ धुवाँका अग्निके साथ जो अविनाभाव है वह रसोईघर आदिककी घटनामें साध्यके साथ हेतुका अविनाभाव हो तो वह हेतु पक्षमें साध्यको कैसे सिद्ध करेगा ? वहां दृष्टान्तमें ही सिद्ध करेगा। जिस हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव दृष्टान्तसे है पक्षमें नही मानते तो ऐसा हेतु दृष्टान्तमें साध्य सिद्ध करेगा या पक्षमें ? जहाँ अविनाभाव माना वहां हेतु साध्यको सिद्ध करेगा क्योंकि पक्षमें तो प्रकृतमें तो साध्यके बिना भी हेतुका सद्भाव मान लिया और साध्य विशिष्टधर्मीको छोड़कर अन्य धर्मीमें सपक्षमें, दृष्टान्तों में जैसे रसोईघरमें हेतुका साध्यके साथ सम्बन्ध माना है—पूर्वविदित साध्यविशिष्ट धर्म्यन्तरमें ही हेतुका सम्बन्ध है ऐसा मानने वाले धुवां हेतुके द्वारा रसोईमें अग्नि सिद्ध करले, पर पर्वतमें कैसे करेंगे ? यह नही हो सकता कि अन्य जगह तो साध्यके अविनाभावीरूपसे निश्चित हेतु हो और जगह साध्यको सिद्ध करे याने धुवेंका रसोईघरमें अग्निके साथ अविनाभाव मानें और पर्वतमें उस हेतुके द्वारा अग्निको सिद्ध करे यह न कर सकेंगे। क्योंकि यदि अन्य जगह अविनाभाव वाले हेतुसे अन्य जगह साध्यकी सिद्धिको जाने लगे तो इसमें बड़े दोष होंगे जैसे कि काठ लोहलेख्य होता है अर्थात् काठमें लोहकी लकीरें खीच दें तो काठमें लोहसे लकीर खिच जानेका सम्बन्ध है कि नही ? अब उस सम्बन्धसे हम बज्रमें लोहसे लकीरका कर देना मान बैठेंगे। क्योंकि अब तो अटपट मत कर लिया है जिस जगह हेतु पाया जानेसे साध्य सिद्ध हो रहा है उस हेतुसे हम अन्य जगह साध्य सिद्ध कर देंगे। इससे साध्य विशिष्टधर्मीमें ही हेतु की व्याप्ति मान लेना चाहिये।

हेतुकी समीचीनता सिद्ध करनेके उपायोंकी साध्याविनाभावित्व हेतु-लक्षण ही प्रमाणता—देखिये ! विस्ताररूपमें दो बातें आपको आवश्यक माननी होंगी। एक तो यह कि पक्षमें अर्थात् जिसका अनुमान बना रहे हैं उसमें साध्यके साथ हेतुका अविनाभाव हो, चाहे सपक्षसत्त्व मिले अथवा न मिले और दूसरी बात यह है कि विपक्षमें हेतु जाता न हो तो वह बात सही बैठती है लेकिन ये दोनों बातें हेतुके एक लक्षणमें आ जाती हैं। जो साध्यके साथ अविनाभावीरूपसे निश्चित हो उसे हेतु कहते हैं। इसमें वे सब खासियतें आ गईं जो विशेषोंसे विशिष्ट हेतु साध्यको सिद्ध कर रहे हैं। उस साध्यधर्मसे सहित पक्षमें हेतु पाया जा रहा है वैसे साध्यके साथ हेतु का अविनाभाव है तो वह अनुमान सही बन जाता है। इसपर शंकाकार कह रहा है कि पक्षमें यह जान लिया कि इसमें यह हेतु साध्यधर्मसे अविनाभाव रखता है अथवा

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

यह जान लिया गया कि यह साध्य विशिष्टधर्मी है, यह पर्वत अग्नि वाला है। यदि यह बात अनुमान प्रमाण देनेसे पहिले ही जान ली गई तो जब साध्यका बोधपक्षसे पहिले ही हो रहा है तो पक्षधर्मत्वका ग्रहण करना अनर्थक है अथवा अनुमान बनाने की भी आवश्यकता कुछ नही रही। अनुमान तो तब बनाया जाता है कि जब पक्षमें साध्यका सन्देह हो अथवा अज्ञान हो और फिर उस साध्यको सिद्ध करनेकी आवश्यकता हो तब तो अनुमान बनाया जाता है किन्तु यहां साध्यको पक्षमें पहिलेसे ही सिद्ध मान रहे हो तो पक्ष धर्मत्व बताना व्यर्थ है। उत्तर देते हैं कि सम्बन्धको सिद्ध करने वाला प्रमाण है तर्क ! उस तर्कके द्वारा एक सर्वके उपसंहाररूपसे सम्बन्ध जाना गया है, जैसे कि साध्यके अभावमें साधन कहीं भी न होना। जब यह सामान्य से प्रतिबन्ध जान लिया गया और अब हम किसी पक्षमें साध्यको सिद्ध करने चल रहे हैं तो वहाँ पक्षधर्मत्व बताना होता है कि जिस ही धर्मीमें यह हेतु पाया जा रहा है उस हीमें अब साध्यको सिद्ध किया जा रहा है तो पक्षधर्मत्व का ग्रहण विशेष विषय को परिज्ञानका कारण होनेसे अनुमान व्यर्थ नही हुआ। हेतुका साध्यके साथ सम्बन्ध है यह तो तर्क ज्ञानने सामान्यरूपसे जाना था। अब उसके सहारे यहाँ प्रकृतमें पक्षमें साध्यमें हेतुसे सिद्ध किया जा रहा है, इसलिए न पक्षधर्मत्व बताना गलत है और न अनुमान व्यर्थ है। जिस चाहे प्रकारसे आप विस्तार बनायें, सबमें आपको यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जो साध्यके साथ अविनाभावी रूपसे निश्चित हो वही हेतु हो सकता है। जिसमें साध्यके साथ अविनाभाव न पाया जाय वह हेत्वाभास हुआ करता है। अब उसके विस्तारके लिए चाहे आप कितने ही धर्म मानलें, पर मूल बात यह सबमें माननी पड़ेगी इस कारण हेतुका लक्षण न त्रैरूप्य मानो न पांचरूप्य मानो, किन्तु जो साध्यके साथ अविनाभावरूपमें रहता हो वह हेतु कहलाता है।

हेतुका अविनाभावित्वसे भिन्न लक्षण माननेपर प्राकरणिक प्रश्नोत्तर

शंकाकार कहता है कि जैसा हमको यह दोष देते हो कि साध्य धर्मसे रहित अन्य धर्मी में अपने साध्यके साथ हेतुका संबंध ग्रहण करना माननेपर साध्ययुक्त धर्मीमें साध्यधर्म के बिना भी हेतुका सद्भाव होनेसे साध्यका साधक नही हो सकता है, तो यही दोष आपके भी आ सकता है कि सम्बन्धको सिद्ध करने वाले तर्क नामक प्रमाणसे सामान्य से ही अविनाभावका परिज्ञान किया गया है और उस परिज्ञानसे विशिष्ट धर्मीमें जहाँ का अनुमानमें पक्ष बनाया जा रहा वहाँ पाये गये हेतुका उस धर्मीमें साध्यके बिना उपपत्ति सम्भव है, हेतुका रहना सम्भव है। तो आपके यहाँ भी वह हेतु साध्यका गमक नही हो सकता। उत्तर देते हैं कि विशिष्ट धर्मीमें पाया जाने वाला हेतु उस धर्मीमें प्राप्त हुए साध्यके बिना उत्पन्न नही हो सकता है क्योंकि यदि विशिष्ट धर्मीमें प्राप्त साध्यके बिना हेतु उत्पन्न होने लगे तो सभी जगह हेतुका साध्यके साथ व्याप्तिका अभाव बन बैठेगा। और प्रकृतमें तो तुम्हारा जो अनुमान है कि शब्द अनित्य है नित्य धर्म न पाया जानेसे और मुकाबलेमें प्रतिवादीका अनुमान है कि शब्द नित्य है अनित्य

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

धर्म न पाया जानेसे तो इस हीसे यहाँ यह बात सिद्ध होती है कि जिसका सम्बन्ध जान लिया गया ऐसा एक हेतुका सद्भाव जहाँ पाया जाता है ऐसे धर्मीमें विपरीत साध्य को सिद्ध करने वाले अन्य हेतुका सद्भाव नही होता, अन्यथा अर्थात् दोनोंका सद्भाव होने लगे तो इन दोनों हैतुवोंका साध्यके साथ अविनाभाव बन बैठेगा लेकिन एकान्तवादियोंके मतमें तो एक जगह एक समय नित्यत्व और अनित्यत्वका विरोध है, या तो नित्यत्व धर्म रहेगा या अनित्यत्व । तो विरोध होनेसे उन हेतुवोंकी उत्पत्ति संभव नही । और मान लो कि उपपत्ति हो जाय, वह हेतु व्यवस्थापक बन जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि अपने साध्यके साथ अविनाभावी हैं वे दोनों हेतु और उन दोनों हेतुवोंके पाये जानेसे शब्दकी नित्य नित्यात्मकताकी सिद्धि हो जाती है । जब एकमें नित्यपना साध्य सिद्ध हो गया और अनित्यपना साध्य सिद्ध हो गया तो इसका अर्थ है कि वह शब्द कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है । तब यहाँ प्रकरणसम नाम का दोष ही क्या आया ? अथवा तुम्हारे एकान्तकी सिद्धि कैसे हुई न केवल अनित्य रहा शब्द, न केवश नित्य रहा शब्द । यदि यह कहो कि इस अनुमानमें किसी भी एक हैतुके अपने साध्यके साथ अविनाभाव रखे इस गुणकी कमी है अर्थात् हेतु साध्यके साथ अविनाभावसे विकल है याने अविनाभाव नही है । तो उत्तरमें कहते हैं—फिर तो अविनाभाव न होनेसे ही हेतु साधक नही बन सका फिर प्रकरणसम बताना, असत् प्रतिपक्ष बताना, पंचरूप्य बताना ऐसे प्रमाणसे क्या लाभ है ? हेतुका एक लक्षण है कि अपने साध्यके साथ अविनाभावीरूपसे निश्चित हो वही लक्षण अनुमान को सही बनानेमें और यह लक्षण न पाया जाय तो उन हेत्वाभासोंसे अनुमानके गलत हो जानेमें बात बन जायगी ।

प्रकरणसम हेतुकी प्रसज्यप्रतिषेधरूप या पर्युदासरूप दोनों विकल्पोंमें अनुपपत्ति - अच्छा अब यह बतलावो कि शब्दको अनित्य सिद्ध करनेमें जो नित्यधर्म की अनुपलब्धिरूप हेतु दिया है उस नित्य धर्मकी अनुपलब्धि रूप हेतुका क्या अर्थ है ? क्या उसका अर्थ प्रसज्यप्रतिषेधरूप है ? अर्थात् नित्यत्व धर्मका अभाव करना मात्र है, उसके एवजमें और कुछ नही है, किन्तु एक तुच्छ अभाव, इतना मात्र अर्थ है अथवा पर्युदासरूप अर्थ है । नित्य धर्मकी अनुपलब्धिका यह अर्थ है क्या कि अनित्य धर्मकी उपलब्धि हो रही है ? किस अर्थ वाले हेतुसे आप शब्दको अनित्यत्व सिद्ध कर रहे हो ? पहिला पक्ष तो युक्त नहीं है क्योंकि तुच्छाभाव साध्यका साधक नही बन सकता । जो कुछ भी नही है, असत् रूप है ऐसा तुच्छ अभाव साध्यकी क्या सिद्धि करेगा ? और, तुच्छाभाव कोई चीज होती भी नही है, क्योंकि अभाव किसी अन्यके सद्भावरूप रहता है । जिस पदार्थको निरखकर जिस पदार्थके आधारमें कोई वस्तु न दीखे, जिसको मनमें कल्पना उठी तो उस वस्तुका अभाव उस वस्तुके सद्भावरूप बनता है । यदि कहो कि नित्यधर्ममें अनुपलब्धिका अर्थ हम पर्युदासरूप मानते हैं अर्थात् अनित्यधर्मकी उपलब्धि ही हेतु है तो यह बतलावो कि अनित्यत्वधर्मरूप हेतु

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

शब्दमें यदि सिद्ध हो गया तो उससे फिर शब्द अनित्य कैसे सिद्ध न होगा ? यदि कहो कि उस सम्बन्धमें तो चिन्तन चल रहा था। पक्ष प्रतिपक्ष देकर परस्पर विरुद्ध साध्य सिद्ध किया जा रहा था। वहाँ कोई पुरुष इस हेतुका प्रयोग करता है इससे शब्दरूप धर्मीमें हेतु असिद्ध है। उत्तरमें कहते हैं कि तब तो यह बात भाई कि वह हेतुवादीके प्रति भी संदिग्ध है उस सम्बन्धमें वादीको भी सन्देह है और प्रतिवादीने तो इसे माना ही नही। उसके लिये तो स्वरूपासिद्ध है तब तो प्रतिवादी उसके मुकाबलेमें नवीन अनुमान उपस्थित कर रहा है। नित्यधर्मकी उपलब्धि होना यहां उस को इष्ट है तो जो कोई जो भी अनुमान दे, शब्द नित्यत्ववादी नित्य सिद्ध करनेका अनुमान दे, वह अनुपलब्धिके इन विकल्पोंमें कुछ भी निर्णय न कर सकेगा। इससे हेतुका लक्षण पंचरूप्यपना नही घटित होता, क्योंकि अबाधित विषय और असत् प्रतिपक्षके सम्बन्धमे जब युक्ति सहित विचार किया जाता है तो ये दोनों हेतुके नियमित नही बनते। और बनता भी है तो हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव होना अन्यथानुपपत्तिकी बात है तो वह बनता है अन्यथा नही ? तो जैसे पञ्चरूप्यवादीने त्रैरूप्यके विरोध में पञ्चधर्मत्व आदिकको खण्डन किया, इसी प्रकार ये दो धर्म भी खण्डित हो जाते हैं।

एक हेतुको अनेकधर्मात्मक माननेपर एकान्तवादियोंके अनिष्ट प्रसंग

यदि कहो कि हम एम एक हेतुके पक्ष धर्मत्व सपक्षसत्त्व विपक्षव्यावृत्ति अबाधित विषय असत्प्रतिपक्ष हम अनेक धर्म मानते हैं, हेतुको अनेक धर्मात्मक स्वीकार करते हैं। यदि ऐसा कहो तो अनेकान्तका आश्रय लिया गया समझिये। हेतुपक्ष धर्मत्वसे भी सहित है, सपक्षसत्त्वसे भी सहित है ऐसे ऐसे पञ्चरूप्यकर युक्त है, तो यह तो अनेकान्तात्मक सिद्ध करनेकी बात है। यह भी नहीं कह सकते कि जो पक्षधर्मका अर्थात् हेतुको समक्ष में सत्त्व होना बताया है वही समस्त विपक्षोंसे असत्त्व होना कहलाता है, याने सपक्ष सत्त्वका ही दूसरा नाम विपक्षासत्त्व है, यह बात यों नहीं कह सकते कि सपक्ष सत्त्व तो है अन्वयरूप और विपक्ष व्यावृत्ति है व्यतिरेक रूप। अन्वय है भावरूप और व्यतिरेक है अभावरूप सो अभाव रूप व भावरूपका सर्वथा तादात्म्य बन नही सकता अर्थात् यह कहना कि सपक्षसत्त्वका ही दूसरा नाम है विपक्षासत्त्व अथवा जो सपक्षसत्त्व है वही विपक्षासत्त्व है। यों तादात्म्य कैसे बन सकेगा ? और, मान लो बन जाय तादात्म्य तो सारे हेतु या तो रह गए केवलान्वयी या रह गए केवलव्यतिरेकी। जब भाव स्वरूप या अभावस्वरूप अन्वय और व्यतिरेकका तादात्म्य मान लिया, सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्तिका तादात्म्य मान लिया गया तो इसका अर्थ है कि कुछ एक रहा कुछ एक वह यदि अन्वय रहा तो केवल अन्वयी ही हेतु रहा दूसरा और कुछ नही, यदि एक वह व्यतिरेक रहा तो केवल व्यतिरेकी हेतु रहा अन्य और कुछ नही। यों हेतुके लक्षण अनेक सिद्ध न हो सके और हेतु तीन रूप वाला है, पञ्चरूप्यवाला है, ऐसी उसमें नाना विधता भी सिद्ध न हो सकी।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

सर्वथा अभावरूपके वल व्यतिरेकी हेतुकी अनुपपत्ति —अब अन्य बात सुनो, केवलव्यतिरेकी ही सारे हेतु यदि रहगए तो व्यतिरेक तो होता है अभाव रूप अभावरूप हेतुसे जो चीज तद्रूप है जो साध्यसिद्ध होता है या अन्य जो बात बनती है वह सब अभाव रूप ही होगा। हेतु भी अभावरूप होगा, किन्तु अभाव है तुच्छरूप। जो लोग अभाव प्रमाण मानते हैं वे अभावको तुच्छाभाव मानते हैं, किसी अन्य पदार्थके सद्भावरूप नही मानते। तो जब तुच्छाभावरूप रहा तो अपने साध्यके साथ और धर्मीके साथ उस हेतुका सम्बन्ध नही बन सकता, क्योंकि तुमने तो अभावरूप मान लिया, हेतुको तुच्छाभावरूप मान लिया और यदि सपक्षमें सत्त्व होनेका ही नाम विपक्षासत्त्व है तो फिर वही इसका असाधारण कैसे हो सकता है क्योंकि वस्तुभूत अन्य प्रथक् अभावके हुये बिना प्रतिनियत इस हेतुका पक्षमें होना असम्भव है। यदि कहो कि वह उस साध्य अथवा धर्मी अन्य धर्मरूप है तब तो एक अनेक धर्मात्मक बन गया ऐसे हेतुसे कैसा साध्य सिद्ध होगा ? जो अनेक धर्मात्मक हो। अनेक धर्मात्मक साध्यके साथ अविनाभावीरूपसे निश्चित बन गया उस हेतुसे तो अनेकान्तात्मक पदार्थ सिद्ध होगा फिर इन एकन्तवादियोंके द्वारा दिए गए हेतु में विरुद्धता कैसे न आयगी ? वहाँ सिद्धान्त है एकान्त और यह सिद्ध हो जाता है अनेकान्त क्योंकि वह हेतु अब एकान्तसे विरुद्ध है जो अनेकान्त उसके साथ व्याप्त हो गया।

एकान्तवादियों द्वारा दिये गये हेतुकी सामान्यरूपताकी अनुपपत्ति— अब यह बतलावो कि दूसरे लोगोंने जो कुछ भी हेतु दिया, जैसे इस प्रकरणसमके प्रकरणमें शब्द अनित्य है नित्यत्व धर्मकी अनुपलब्धि होनेसे अथवा दूसरेने अनुमान बनाया कि शब्द नित्य है क्योंकि अनित्यत्व धर्मकी अनुपलब्धि होनेसे। तो जो कुछ भी हेतु दिया जा रहा है वह हेतु सामान्यरूप है या विशेषरूप है अथवा उभयरूप है या अनुभयरूप। इन चार विकल्पोंमेंसे किस विकल्प वाला आप हेतु मानते हैं ? यदि कहो कि सामान्यरूप हेतु कहते हैं तो वह सामान्यरूप हेतु व्यक्तियोंसे, विशेषोंसे भिन्न है अथवा अभिन्न है। सामान्यरूप हेतु विशिष्ट व्यक्तिसे भिन्न है यह बात तो यों नही बनती कि विशेषसे भिन्न सामान्य कुछ भी परिचयमें नही आ रहा। है ही नही। इसलिए वह असिद्ध है। विशेषरहित सामान्य लोकमें कुछ भी नही है। सामान्यरहित विशेष भी लोकमें कुछ नही है। जैसे किसी भी पदार्थको जाना गया तो सामान्य विशेषात्मकको ही जाना गया, केवल सामान्य भी अब तु केवल शेष भी है, अवितु है। यदि कहो कि सामान्यरूप हेतु व्यक्तियोंसे अभिन्न है तो वह सामान्य रूप हेतु व्यक्तियोंसे कथंचित् अभिन्न है या सर्वथा अभिन्न है सामान्य और विशेष, सर्व प्रकारसे एक रूप है तो देखो जब व्यक्ति अर्थात् विशेष सामान्य ये दोनों एक हो गए, व्यक्तिसे जुदा सामान्य कुछ रहा नही तो जैसे व्यक्तिका स्वरूप दूसरे व्यक्तिमें तो नही जाता इसी प्रकार यह भी सामान्यरूप कहीं भी न जा सकेगा सो दूसरेके द्वारा माना गया सामान्य सामान्यरूपताको प्राप्त नही हो सकता। अर्थात् वह सामान्य नही रह सकता, क्योंकि अन्य

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

व्यक्तियोंमें न जानेसे। जो अन्य व्यक्तियोंमें नहीं जाये तो वह सामान्य भी नहीं रहेगा जैसे यह व्यक्ति, यह विशेष यह अन्य व्यक्तियोंमें नहीं जाता। मनुष्य क्या गायमें चला गया? गाय क्या मनुष्यमें गई? कोई भी व्यक्ति, कोई भी विशेष दूसरे विशेषमें नहीं अनुगत होता। तो वह विशेष सामान्य रूप तो न हुआ। तो यहाँ यह सर्वथा अभिन्न मान लिया गया सामान्यरूप हेतु उन व्यक्तियोंकी तरह किसी भी अन्य व्यक्ति में जा ही न सकेगा तो अब सामान्यरूप ही का लक्षण न बन सका। यदि कहो कि सामान्यरूप हेतु विरोधोंसे कथंचित अभिन्न है तो ऐसा तुमने माना ही नहीं। कथंचित् अभिन्नपना एकान्तवादमें माना नहीं गया है। इससे सामान्यरूप हेतु साधक नहीं बन सकता। यदि कहो कि व्यक्तिरूप हेतु मानोगे तो व्यक्ति तो असाधारण होती है। जो अन्य जगह न जाय, अन्य व्यक्तिमें न जाय वही स्वयं व्यक्ति है उसका अन्यत्र दाखिला नहीं है तो वह व्यक्तिरूप हेतु असाधारण होनेसे साध्यका गमक हो ही नहीं सकता।

एकान्तवादियों द्वारा दिये गए हेतुकी उभय (सामान्य विशेष) रूपता व अनुभयरूपताकी अनुपपत्ति - इसी प्रकार उभय रूप भी हेतु नहीं बन सकता। एक दूसरेसे बँधे हुए न होकर स्वतंत्र स्वतंत्र रहने वाले सामान्य विशेष कहीं उभयरूप बन जाय यह बात नहीं बन सकती। क्योंकि उभयपक्षमें भी वे दोनों दोष आ जाते हैं, जो सामान्य और विशेष पक्षमें दिये गये थे। यदि कहो कि हम अनुभय हेतु मानते हैं। न सामान्यरूप न विशेषरूप, तो यह बात यों युक्त नहीं है कि एक दूसरेका विरोध करने वालेका ऐसा नियम है कि उनमें यदि एकका अभाव हो तो दूसरेको उपस्थित होना पड़ेगा। तो अनुभयता तो कभी रही नहीं। यदि सामान्यपना नहीं है तो सामान्य आ गया, क्योंकि वे दोनों परस्पर प्रतिपक्षी हैं। तो यह अवसर कब हो सकता है कि हेतु न सामान्यरूप ही रहे और न विशेषरूप ही रहे। इस कारण से ऐसा हेतुका हेतुत्व मानना चाहिये कि जो अन्य पदार्थोंमें अनुवृत्त रहता है और अन्य पदार्थोंसे व्यावृत्त रहता है, यों अपने स्वरूपको धारण किए हुए है, ऐसा कुछ एक ही अर्थ स्वरूपको जानने वालेके भेदज्ञान और अभेदज्ञानका कारण बन जाता है। जैसे अनुमान किया कि पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे। तो वह धूम अन्य धूमोंमें तो अनुवृत्त है। जैसे पर्वतमें पाया जाने वाला धूम है इस ही जातिका धूम रसोईघर आदिकमें है तो वह धूम अन्य धूमोंसे सदृश रहा और धूमको छोड़कर अन्य जो पदार्थ है वहाँसे अलग रहा सो ऐसे अनेकान्तात्मक हेतुसे जो साध्य सिद्ध होगा वह भी अनेकान्तात्मक साध्यसिद्ध होगा। पर्वतमें जैसे अग्निकी सिद्धि करना चाह रहे वह अग्नि अन्यत्र पाई जाने वाली अग्निसे तो सदृश है, अनुवृत्त है अन्वयरूप है और अग्निको छोड़कर अन्य पदार्थोंसे जुदा है।

एकान्तवादीके द्वारा कहे गये हेतुसे साध्य साध्यकी चारों विकल्पोंमें अनुपपत्ति - अब इस प्रकरणमें एक आखरी बात और सुनो! एकान्तवादियोंने

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

जो हेतु दिया है उस हेतुसे तुम साध्य कैसे सिद्ध करना चाह रहे ? क्या वह साध्य सामान्यरूप है या विशेषरूप है अथवा उभयरूप है या अनुभयरूप है, सामान्यरूप तो यों नही कह सकते कि केवल सामान्य तो होता नही । केवल सामान्य अर्थ क्रिया भी नही कर सकता । तो सामान्यसाध्य तो बन न सकेगा । विशेषसाध्यको कहनेकी बात यों युक्त नही है कि जो विशेष है वह सब जगह अनुयायी नहीं बन सकता । कोई भी व्यक्ति अन्य व्यक्तियोंमें नही पाया जा सकता । तब अन्य हेतुवोंमें वह व्यापक न रहा, जैसे घुवां विशेष अन्य सब जगहके धुवोंसे सम्बन्ध न रख सका, अनुयायी न बन सका, उनमें न व्याप सका । ऐसे हेतुसे साध्य क्या सिद्ध हो सकता है. ऐसा विशेष सिद्ध नही किया जा सकता । यदि कहो कि यह साध्य सामान्य और विशेषरूप है तो इसमें दोनों प्रकारके दोष आते हैं । उभयरूप कहनेमें जो सामान्यमें दोष दिया वह दोष आया, जो विशेषमें दोष दिया वह दोष आया । कहो कि साध्य अनुभयरूप है तो यह यों नही बनता कि अनुभय तो असत् है वह हेतुमें व्यापक कैसे हो सकता है ? हेतुसे अविनाभाव कैसे रख सकते ? तो अनुभयसाध्यमें साध्यत्व आ ही नही सकता । यों प्रकरणसम अविनाभाव न होनेसे सदोष है । सभी अनुमान यदि अविनाभावी हेतु उनमें नही हैं तो वहां असिद्धत्व है, उनमें पंचरूपताकी बातसे वह हेतु गमक हो ऐसी बात नही है । तो हेतुका न त्रैरूप्य लक्षण है, न पंचरुप्य, किन्तु साध्यके साथ अविनाभावीरुपसे जो निश्चित् हो वह हेतु है, यही समीचीन हो सकता है ।

पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्ट अनुमानकी कल्पनामें केवलान्वयीकी सिद्धि - अनुमानके सम्बन्धमें न्यायसूत्रोंमें जो यह कहा गया कि प्रत्यक्ष पूर्वक तीन प्रकारके अनुमान होते हैं पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट । और, उसकी व्याख्यामें बताया है कि उन तीनोंमेंसे पूर्ववत् और शेषवत् तो केवलान्वयी हेतु होता है जैसे कि अनुमान किया गया कि सत् असत् वर्ग किसीके एक ज्ञानके आलम्बन हैं — अनेक होनेसे । जैसे ५ अंगुलियां । ५ अंगुलिया अनेक हैं तो किसी एकके सहारे रहती हैं तो इस अनुमानमें पूर्ववत् कहते उसे हैं कि जिसमें पक्ष पाया जाय । पूर्व नाम है पक्षका । समस्त अनुमानोंके अवयवोंमें सबसे आदिमें पूर्वमें प्रयोग किया गया है पक्ष, इसलिये पक्षको पूर्व कहते हैं और पूर्व जिस हेतुका हुआ अर्थात् जिस हेतुका पक्ष मिले उसे कहते हैं पूर्ववत् । चाहे पूर्ववत् शब्द कहो चाहे पक्षधर्म शब्द कहो बात एक ही है । शेषवत्का अर्थ है — शेष मायने दृष्टान्त । जिस हेतुका शेष हो अर्थात् दृष्टान्त हो उसे कहते हैं शेषवत् अर्थात् जो हेतु सपक्षमें रहे तो शेषवत् कहो या सपक्षसत् कहो एक ही बात है । सामान्यतोदृष्टका अर्थ है—साधन सामान्यकी साध्य सामान्यसे व्याप्ति होना । और, सामान्यसे जो अदृष्ट हो वह है सामान्यतोदृष्ट । अर्थात् व्यतिरेक दृष्टान्तवाला जो सामान्यसे न देखा गया हो, अन्वयरूपसे जो न पाया जाता हो ऐसा कुछ होता है विपक्ष, व्यतिरेक । तो जहां व्यतिरेक दृष्टान्त मिले वह सामान्यतोदृष्ट कहलाता है तो यहां पूर्ववत्का जो उदाहरण दिया यही उदाहरण शेषवत्का भी हो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

जाना है कि सत् असत् वर्ग किस हीके एक ज्ञानमें आया करते हैं क्योंकि अनेक होने से जैसे ५ अंगुलियाँ। तो इस अनुमानमें ५ अंगुलियोंको छोड़कर बाकी जितने सत् असत् पदार्थोंका समूह है वह सब पक्षमें आ गया इस कारण तो होगया पूर्ववत् पक्ष धर्म वाला और ५ अंगुलियाँ दृष्टान्तमें आ गईं सो मिल गया सपक्षसत्त्व तो इस अनुमानका नाम शेषवत् हो गया। तो यों पूर्ववत् और शेषवत् केवलान्वयी होता है और इस अनुमानमें विपक्ष कुछ नहीं मिल रहा क्योंकि जितने सत् असत् वर्ग हैं वे सब पक्ष में ले लिए गये। पञ्चांगुली दृष्टान्तमें रखनेके लिए सपक्षमें आ गया। अब सत् असत् को छोड़कर दुनियामें और कुछ है ही नहीं। तो विपक्ष कैसे बने ? तो इस अनुमानमें विपक्ष नहीं रहा इस कारण व्यतिरेकका अभाव है सो पूर्ववत्, शेषवत्, केवलान्वयी होता है।

पूर्ववदाद्यनुमानत्रैविध्यमें केवलव्यतिरेकी व अन्वयव्यतिरेकीकी खोज केवलव्यतिरेकी हुआ पूर्ववत् सामान्यतोऽदृष्ट इसका उभय केवलव्यतिरेकी होता है। जैसे अनुमान किया —जीवत् शरीर सात्मक है क्योंकि प्राणादि वाला होनेसे। तो जितने भी जीवत् शरीर हैं वे सब पक्षमें आ गए। तब सपक्ष कुछ मिल नहीं रहा। हां विपक्ष है। जो सात्मक नहीं है ऐसे घट पट आदिक विपक्ष हैं। विपक्षमें प्राणादि मत्व भी नहीं हैं और आत्मा भी नहीं है इस कारण विपक्षव्यावृत्ति तो हो गई। इस कारणसे इसका नाम है केवलव्यतिरेकी। अब जो पूर्ववत्, शेषवत् सामान्यतोऽदृष्ट इन तीन धर्मोंसे युक्त है वह होता है अन्वयव्यतिरेकी। जैसे ये शरीर, इन्द्रियगोलक आदिक किसी एक बुद्धिमान् ईश्वरके कारणसे बने हैं क्योंकि कार्य होनेसे। जैसे घटपटादिक। तो इस अनुमानमें अन्वय दृष्टान्त भी मिलता है, व्यतिरेकी दृष्टान्त भी मिलता है। जो जो कार्य होते हैं वे किसी बुद्धिमानके द्वारा रचे गये हुए हैं। जैसे घट आदिक ये कार्य हैं और किसी एक बुद्धिमानके द्वारा रचे गए हैं, यों अन्वय दृष्टान्त मिल गया। अब व्यतिरेक व्याप्ति बनाकर व्यतिरेक दृष्टान्त भी मिल जायगा। जो जो पदार्थ किसी बुद्धिमानके द्वारा रचे गए नहीं हैं वे कार्यत्वधर्मके आधार भी नहीं अर्थात् कार्य भी नहीं हैं। जैसे आत्मा आदिक। यह हुआ व्यतिरेक दृष्टान्त। तो जो पूर्ववत् शेषवत्, सामान्यतोदृष्ट होता है वह अन्वयव्यतिरेकी होता है।

अन्यथानुपपन्नत्व वाले हेतुसे अनुमानसिद्धि होनेसे पूर्ववदादिकल्पना का वैयर्थ्य उस प्रकार न्यायसूत्रोंमें जो अनुमानकी त्रिविधता बतायी है वह सब बताये गये हेतुके लक्षणके कारण निराकृत हो जाती है। हेतुका एक लक्षण सही मान लेनेपर फिर न त्रैरूप्यकी जरूरत है न पांचरूप्य की आवश्यकता है और न वहां अनुमानकी त्रिविधता माननेकी आवश्यकता है। जो देह साध्यके साथ अविनाभाव रखता हो वह समीचीन हेतु है। जहां ऐसा हेतु पाया जाय वहाँ साध्यकी सिद्धि है। जहाँ ऐसा हेतु न मिले वहाँ साध्यकी सिद्धि नहीं है सब जगह अन्यथानुपपत्तिसे ही हेतुका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

लक्षण बताता है, क्योंकि अन्यथानुपपन्नत्व होनेपर ही हेतु साध्यका गमक बनता है। जैसे कि शंकाकार लोग बतायें कि केवलान्वयीमें अन्यथानुपपन्नत्व प्रमाण निश्चित है अथवा नहीं। यदि प्रमाण निश्चित नहीं है तो हेतु भी सदोष और अनुमान भी सदोष हुआ। यदि प्रमाण निश्चित है अन्यथानुपपन्नत्व तो इस ही से अनुमान सही बन गया फिर अन्वयके कहनेका क्या प्रयोजन? पूर्ववत् शेषवत् आदिक बतानेसे फिर प्रयोजन कहां रहा? यदि कहो कि अन्वयके अभावमें अन्यथानुत्पत्तिका भी अभाव अथवा अन्यथानुपपत्तिका भी अनिश्चय रहता है। जब हम अन्वय समझ लेंगे कि साध्यके होनेपर साधन हो तब तो अन्यथानुपपत्ति भी कहेंगे कि साध्यके अभावमें साधन नहीं होता तो अन्वयके अभावमें अन्यथानुपपन्नत्वका भी अभाव अथवा उसका अनिश्चय रहेगा इस कारणसे अन्वय कहना आवश्यक हो जाता है। उत्तर देते हैं कि यह बात तुम्हारी तब मानी जा सकती है जब कि अविनाभाव अन्वयसे व्याप्त होवे, पर अनेक जगह अन्वय भी रहे और अविनाभाव न रहे। तो जब अविनाभाव अन्वयके साथ व्यापक नहीं है तो व्यापककी निवृत्तिसे अन्वयकी निवृत्ति कैसे मानी जाय? अगर मान भी लें तो उसमें बड़ी आपत्तियां आयेंगी। घट न रहे तो पट भी न रहे, क्योंकि अव्यापकके हटनेसे अव्याप्य भी हटनेसे लगा मान लो। यदि कहो कि अविनाभाव अन्वयसे व्याप्त है तो प्राणादिकमें अन्वयकी निवृत्ति होनेपर अविनाभावकी भी निवृत्ति हो जायगी, फिर प्राणादिमत्त्व हेतु साधकताका गमक कैसे होगा, जो केवल व्यतिरेकका दृष्टान्त दिया है कि जीवच्छरीर सात्मक है प्राणादिमान होनेसे तो इस अनुमानमें अन्वय नहीं माना गया। इसे भी व्यतिरेकी मानते हैं तो मानें। अविनाभाव तो तुम मानना चाहते और अन्वय यहां है नहीं, तो जब अन्वयका और अविनाभावका व्याप्य व्यापक सम्बन्ध मान लिया तो अन्वयकी निवृत्ति होनेपर अविनाभावकी भी निवृत्ति हो जायगी। फिर ये प्राणादिमत्त्व हेतु साध्यको सिद्ध न कर सकेगा, क्योंकि जो जिसका व्यापक है वह उसके अभावमें नहीं हो सकता। जैसे वृक्षपना तो व्यापक है, सीसम होना व्याप्य है, तो जो सीसम है वह तो नियमसे वृक्ष है ही, किन्तु जो जो वृक्ष हैं वे सीसम हुआ करें यह बात नहीं है। तो जो थोड़ी जगह रहे वह व्याप्य है। जो बहुत जगह रहे वह व्यापक है। तो वृक्ष हुआ व्यापक और सीसम हुआ व्याप्य। अब व्यापककी निवृत्ति होनेपर व्याप्यकी निवृत्ति हुआ करती ना? जैसे वृक्ष कुछ न हो तो सीसम कहांसे आयगा? तो यह नहीं हो सकता कि जो जिसका व्यापक है वह उसके अभावमें हो जाय। यदि व्याप्यके अभावमें व्यापक हो जाय तो उसके अन्वयसे फिर व्याप्ति नहीं कहा जा सकता है। जिसके अभाव में जो उसके अन्वयसे फिर व्याप्ति नहीं कहा जा सकता है। जिसके अभावमें जो होता है वह उससे व्याप्त नहीं हुआ करता। जैसे गधाके अभावमें धुवां हो जाया करता है तो गधा और धुवांकी व्याप्ति न हो जायगी कि गधाके होनेपर धुवां हो और न होनेपर न हो। तो जो जिसके अभावमें हो जाता उसकी उससे व्याप्ति नहीं कही जा

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

सकती। अब यहाँ अन्वयके अभावमें अविनाभावका होना मान लिया तो अन्वयकी और अविनाभावकी व्याप्ति तो न हो सकी। प्रयोजन यह है कि केवलान्वयीका जो तुमने उदाहरण दिया है उसमें यह तो विचार लो कि अन्यथानुत्पन्नत्व वहाँ है कि नहीं हेतुमें। यदि अन्यथानुत्पन्नत्व है तो इस ही अन्यथानुपपत्तिके कारण यह अनुमान प्रमाण बन गया। पूर्ववत्, शेषवत् आदिककी कल्पना करके फिर हेतुका सही मानना यह परिश्रम क्यों किया जा रहा है ?

असद्वर्गको ज्ञानविषय माननेपर विडम्बना—अब अन्य बात पूछी जा रही है कि तुम्हारे अनुमानमें सत् असत् वर्ग किसी एक ज्ञानके आलम्बनभूत हैं क्योंकि अनेक होनेसे। तो इसमें जो अनेकत्व हेतु दिया है और उसको केवलान्वयी बताया है तो कैसे बताया है ? क्या व्यतिरेकका अभाव होनेसे केवलान्वयी कहलाता है ? यदि व्यतिरेकके अभावसे हेतुको केवलान्वयी कह दिया जाय तो व्यतिरेकका अभाव भी कैसे होगा ? उसका कारण क्या है ? यदि कहो कि, व्यतिरेकका जो विषय है विपक्ष उसका अभाव होनेसे व्यतिरेकका भी अभाव है तब तो यह बतलावो कि विपक्षका अभाव, इसका क्या अर्थ ? क्या पक्ष सपक्षका ही नाम विपक्षका अभाव है या निवृत्ति मात्रका नाम, न होना, तुच्छाभावका नाम विपक्षाभाव है। यदि कहो कि पक्षसपक्ष होनेका नाम विपक्षाभाव है। यदि कहो कि पक्षसपक्ष होनेका नाम विपक्षाभाव है तो इसमें तो अनेकान्तमत आ गया क्योंकि स्याद्वादसिद्धान्तमें अभावको अन्य पदार्थोंके सद्भावरूप माना सो यहाँ तुमने विपक्षके अभावको पक्षसपक्षरूप मान लिया, अभाव का भावान्तर स्वभाव स्वीकार कर लिया। यदि कहो कि निवृत्तिमात्र है विपक्षाभाव, विपक्ष नहीं। और न कुछ कहना न अन्य वस्तुका सद्भाव जानना, किन्तु विपक्ष नहीं ऐसी निवृत्तिमात्र विपक्षाभाव मानोगे तो यह तो बतलावो कि निवृत्तिमात्ररूपमें वह विपक्षाभाव समझा गया कि नहीं ? नहीं समझा ऐसा तो कह नहीं सकते, क्योंकि फिर तो विपक्षके अभावमें भी सन्देह हो गया। निवृत्तिमात्र विपक्षाभाव तो जाना नहीं गया तो इसका अर्थ है कि विपक्षाभावमें सन्देह आ गया। तब व्यतिरेकका अभाव भी संदिग्ध बन गया। जब विपक्षका अभाव सन्देहस्वरूप है तो व्यतिरेकका अभाव भी संदिग्ध हो गया। तब फिर केवलान्वय भी संदिग्ध बन गया। केवलान्वयी हेतु फिर सिद्ध नहीं होता।

निवृत्तिमात्र विपक्षाभाव माननेसे सिद्धान्तकी अनुपपत्ति—यदि कहो कि निवृत्तिमात्र विपक्षका अभाव हमने समझ लिया तो वह यदि साध्यकी निवृत्तिसे साधनकी निवृत्तिका आधारभूत जान लिया तो उसीका नाम विपक्ष है। विपक्षका अभाव कैसे हुआ ? और, जब विपक्षका अभाव न हो तो व्यतिरेकका भी अभाव नहीं होता, क्योंकि विपक्ष वही कहलाता जो साध्य साधनके अभावका आधार हो। इस ही रूपसे जो समझा गया हो उसे विपक्ष कहते हैं। तो साध्य साधनकी निवृत्तिका आधार

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

रूपसे जो निश्चित हो जैसे कि यहाँ अभावको ही मान लिया तो वह विरुद्ध न होगा अर्थात् विपक्ष मान लिया जायगा। जैसे भावसे सपक्षको मान लिया जाता इसी प्रकार अभावसे विपक्ष भी बन गया अन्यथा अर्थात् निवृत्तिमात्र भी विपक्ष है समझा नहीं गया अथवा उसे तुम विपक्ष नहीं मानते। तो तुम्हारे इस केवलान्वयीके अनुमानमें जो कहा गया कि सत् असत् वर्ग किसीके एक ज्ञानका आलम्बन करता है तो यहाँ सत् तो ठीक है। जो जो सत् पदार्थ हैं वे किसी ज्ञानमें आते हैं। पर असत् तो अभावरूप है। जब असत् अभावरूप पक्ष मान लिया तो निवृत्तिमात्रका अभावको तुम विपक्ष क्यों नहीं मान लेते? असत् तो पक्ष बन जाय किन्तु असत् अर्थात् अभाव विपक्ष न बने ऐसा विभाग कैसे होगा? तात्पर्य यह है कि सत् असत् वर्ग किसीके एक ज्ञानमें आते हैं अनेकों होनेसे इस अनुमानमें केवलान्वयी तो बता दिया, केवल व्यतिरेकी नहीं कहते आप लोग और उसका कारण बतलाते हो यहाँ विपक्षका अभाव है, विपक्ष न माननेपर इस ही अनुमानमें स्वयं अभावको पक्षमें डाल दिया। सत् पदार्थ और असत् पदार्थ किसीके ज्ञानमें आते हैं तो असत्के मायने क्या है? अभाव। उसे तो पक्षकी कोटिमें ले लिया और यहां अभावको विपक्षमें नहीं लेते। अगर अभावमात्र, निवृत्तिमात्र विपक्ष स्वीकार कर लिया जाय तो केवलान्वयी हेतु नहीं रहता।

शङ्काकाराभिमत सदसद्वर्गकी व्याख्या व अनिष्ट प्रसङ्ग—अब शंकाकार कहता है कि हम असत् वर्ग इस शब्दसे सामान्य समवाय और अन्त्यविशेष इनका ही ग्रहण करते हैं अभावका ग्रहण नहीं करते। नैयायिकोंके सिद्धान्तमें सत् उन्हें माना है जो सत्ताके सम्बन्धसे सत् हुए हैं और असत् उन्हें माना है जो स्वतः ही सत् हैं। सत्ताके सम्बन्धकी आवश्यकता नहीं है, तो ऐसा सामान्य समवाय और अन्त्यविशेष यह स्वतः सत् है इसमें सत्ताका सम्बन्ध नहीं है। तो असत् शब्दसे सामान्य समवाय और अन्त्यविशेष कहा गया है. अभाव नहीं कहा गया है। इसका उत्तर दिया जा रहा है — तब तो अभाव विषयक ज्ञान किसीके भी न बन सकेगा। और, यह जो हेतु दिया है अनेक होनेसे। किसीके एक ज्ञानमें आता है तो अभाव तो नहीं आया, क्योंकि अभाव न सत् वर्गमें रहा न असत् वर्गमें रहा। तब फिर आपके ईश्वर का समस्त कार्योंके कारण समूहोंका परिज्ञान होना बड़ा व्यवस्थित बन गया अर्थात् नहीं बन सका। जब एक अभावका ज्ञान न बन सका तो अधूरा ही ज्ञान रहा और फिर जब किसी कार्यके प्रागभावका ज्ञान नहीं है तो कार्यका भी ज्ञान नहीं है। जैसे घट बनता है मृतपिण्डसे और मृतपिण्डकी हालतमें घटका प्रागभाव है। जब मिट्टीका लौंदा है उससे बनेगा घट ना तो घट आगे बनेगा। जब तक वह मिट्टीका लौंदा है तब तक तो घटका अभाव है। वह घटका अभाव क्या? प्रागभाव। घट बननेसे पहिले उपादानमें घटका अभाव रहना। अब प्रागभाव आदिक किसी भी अभावका ज्ञान तो माना नहीं, जिसको प्रागभावका ज्ञान नहीं है वह कुछ कार्य भी नहीं कर सकता। जैसे आटेकी लोईसे रोटी बनायी जाती है तो जब तक आटेकी लोई है तब तक रोटी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

पर्यायका अभाव है, तो रोटीका प्रागभाव लोई है यह बात चाहे एक शास्त्र पद्धतिसे न मालूम हो बनाने वालेको, किन्तु उसके ज्ञानमें बराबर है कि यह लोई रोटीका प्रागभाव है। ऐसा ज्ञान है तभी तो झट लोईसे रोटी बना लेते हैं। उन्हें मालूम है कि इसमें रोटी अभी नहीं है मगर इसके बाद ही रोटी बन लेगी। अब ईश्वरको अभाव का ज्ञान तो माना नहीं, प्रागभावका ज्ञान नहीं है तो कार्य कैसे बना सकेगा ?

शंकाकारकी व्याख्यासे असद्वर्गमें अभाव न आनेसे ईश्वरकर्तृत्वकी असिद्धि अब अन्य बात सुनो कि यह जो तुम्हारा अभाव है प्रागभाव आदिक या इस वर्तमान हेतुमें विपक्षका अभाव भी निवृत्तिमात्र यह पक्ष सपक्षसे यदि बहिर्भूत है, कोई अलग चीज है तो इस ही से अनेकत्वात् यह हेतु अनैकान्तिक बन गया, क्योंकि देखो—बातें तो अनेक हो गई, सत् वर्ग भी है असत् वर्ग भी है और उसके अतिरिक्त कोई अभाव भी है लेकिन अभाव तो ज्ञानमें माना नहीं, तो अनेक होनेपर भी किसीके एक ज्ञानका आलम्बनपना अब यहाँ माना नहीं गया तब यह हेतु ही अनैकान्तिक दोष से दूषित हो गया और यदि मान लिया जाय तो फिर अभाव पक्ष कैसे नहीं रहा। और इसी प्रकार अभाव विपक्ष भी हो गया। जब व्यतिरेक मिल गया तो पूर्ववत्, शेषवत् अनुमानको तुम केवलान्वयी कैसे कहोगे ? विपक्ष है और विपक्षमें हेतुकी व्यावृत्ति है तो यह व्यतिरेकी भी बन गया। शंकाकार कहता है कि इस तरह विपक्षका अभाव भी यदि ज्ञानका आलम्बन है तो वह भी पक्ष रहा आये फिर भी विपक्षका अभाव ही रह गया। वह पक्षमें सामिल हो गया। तो उत्तर देते हैं तो इस तरह फिर भी प्रश्न तो करना शेष रह गया कि विपक्षका अभाव किसका नाम है। यदि पक्ष सपक्षका ही नाम विपक्षका अभाव है तो भावसे भिन्न अभिन्न तो कुछ नहीं रहा। तो अनेक भेद बनाकर अनुमान सही करना यह युक्त नहीं है किन्तु हेतुका सही लक्षण मान लो, साध्यका अविनाभावी मानलें तो सब व्यवस्थित हो जाता है।

तुच्छ विपक्षनिवृत्तिको विपक्षाभाव माननेका आलोचन—यदि कहो कि तुच्छ निवृत्तिका नाम विपक्षाभाव है तो यह बतलावो कि वह भी क्या अप्रतिपन्न है अर्थात् न जाना हुआ है। यदि वह भी न जाना हुआ है तो संदिग्ध होगया विपक्षाभाव और उसका संदेह होनेपर फिर व्यतिरेकका भी अभाव संदिग्ध हो गया। तब फिर केवलान्वयी निश्चित् नहीं रह सका। उस ही प्रकारका फिर बारबार अनवस्था बढ़ती जानेसे चक्रक दोष आया। अनवस्था तो होता है दोकी अनवस्थामें और चक्रक होता है तीन अथवा अधिककी अनवस्थामें इस कारणसे केवलान्वयी रूपसे माने गए हेतुका विपक्षाभाव ही तुच्छ विपक्ष है और उससे साध्यनिवृत्तिके द्वारा साधननिवृत्ति हुई तब फिर क्यों न व्यतिरेक हुआ। तो यों व्यतिरेकका सद्भाव होनेसे ही अविनाभावका और उसके परिज्ञानका प्राणादिमत्वकी तरह सद्भाव हो जानेसे अनेकत्वादि हेतुवोंमें माने गये अन्वयसे क्या प्रयोजन रहा ? यदि कहो कि विपक्षाभावके कोई

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

अपादानपना नही है इस कारण उससे साध्य साधनकी व्यावृत्ति नही होती है तो यह बात यों युक्त नही कि यों तो "प्रागभाव आदिकसे भाव भिन्न है और प्रागभाव आदिक परस्पर एक दूसरेसे भिन्न हैं।" इत्यादिक स्थलोंमें भी फिर अपादानत्वका अभाव हो जायगा। इस कारण भाव अभावोंका प्रागभावादिकोंका सांकर्य हो जायगा, बिल्कुल एकमेक हो जायगा।

त्रिविध व्याप्तियोंमें वहिर्व्याप्तिकी साध्यसिद्धिमें अनुपपत्ति – अब अन्य बात कही जा रही है कि अन्वयका अर्थ है व्याप्ति। व्याप्ति होती है तीन प्रकार की बहिर्व्याप्ति, साकल्यव्याप्ति और अन्तर्व्याप्ति। उनमेंसे बहिर्व्याप्तिमें अनुमान जैसे बनाया कि फूटे घड़ेके अतिरिक्त सब कुछ क्षणिक है सत्व होनेसे अथवा कृतक होनेसे फूटे घड़ेकी तरह। अथवा ये समस्त ज्ञान निरावलम्बन होते हैं, किसी धर्मीका आधार नही रखते हैं ज्ञानरूप होनेसे। जैसे स्वप्न संबंधी ज्ञान। अथवा ईश्वर अल्पज्ञ है व रागादिमान है वक्ता होनेसे मुसाफिरोंकी तरह। ये सारे अनुमान फिर साध्यके गमक याने साधक हो जायेंगे क्योंकि केवलान्वय इन सब अनुमानोंमें सुलभ है। जैसे पहिले अनुमानमें सत्व और कृतकत्व हेतुका अन्वय क्षणिकत्वके साथ हो गया और उसका दृष्टान्त मिलता है फूटा घड़ा! ये समस्त ज्ञान निरालम्बा हैं ज्ञानरूप होनेसे। इसमें ज्ञानरूपताका निरालम्बनताके साथ अन्वय है और उसका दृष्टान्त मिल गया स्वप्न ज्ञान। तीसरे अनुमानमें वक्तृत्वका रागादिमान् और अल्पज्ञके साथ व्याप्ति है और उसका दृष्टान्त मिल गया मुसाफिर। शंकाकार दोष परिहारमें कह रहा है कि समस्त सत्त्व क्षणिकके साथ व्याप्ति नही हैं क्योंकि आत्मादिकमें सत्त्व तो है पर क्षणिकत्व नही पाया जाता। उत्तर देते हैं कि यदि आत्मादिकमें क्षणिकत्व किसी भी प्रकार न हो तो उसमें अर्थ क्रिया भी नही बन सकती। तब फिर वे पदार्थ भी न रहेंगे। और फिर घट आदिकके दृष्टान्तमें सत्त्वादिक क्षणक्षयादिके होनेपर देखा गया होनेपर भी यदि कहीं किसी और जगह क्षणक्षयके अभावमें भी सत्त्वादिक हो जायें तो फिर बहिर्व्याप्ति रूप अन्वय तो नही रहा क्योंकि सत्त्वादिक हेतुमें बहिर्व्याप्तिरूप अन्वयके बाधा आ गई याने आत्मा आदिक क्षणिक न होनेपर भी सत् हैं ऐसी जब बाधा आ गयी तो उसका लक्षण ही दूषित हो गया। इससे बहिर्व्याप्तिको अन्वय मानकर केवलान्वयी सिद्ध न कर सकेंगे।

सकलव्याप्तिरूप अन्वयकी अनुपपत्ति– यदि कहोगे कि सकल व्याप्ति का नाम अन्वय है याने साधन सामान्यका साध्यसामान्यके साथ सम्बन्ध होनेका नाम सकल व्याप्ति है और वही अन्वय है तो यह बतलावो कि सकलव्याप्तिका लक्ष्य क्या दृष्टान्त वाले धर्मीकी तरह साध्य सहित पक्षमें और अन्यत्र व्यक्तियोंमें साध्यके साथ साधनकी व्याप्ति होनेका नाम सकल व्याप्ति है ना? याने सर्वत्र साधनकी साध्यसे व्याप्ति होनेका नाम सकल व्याप्ति है तो वह कैसे जानी गयी? क्या सकल व्याप्ति

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रत्यक्षसे जान ली गई या अनुमानसे ? यदि कहो कि प्रत्यक्षसे या मानसिक प्रत्यक्षसे जान ली गई है तो क्या इन्द्रिय प्रत्यक्ष ? इन्द्रिय प्रत्यक्षसे तो बन नहीं सकती क्योंकि चक्षु आदिक इन्द्रियका समस्त साध्यसाधनभूत पदार्थोंमें सन्निकर्ष नहीं बन सकता और इसी कारण इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। शंकाकारके सिद्धान्तमें इन्द्रिय प्रत्यक्ष तब बनता है जब इन्द्रियका और पदार्थका सन्निकर्ष हो जाय। तो सकल व्याप्तिमें लोक भरके साधन और समस्त साध्य इनके साथ व्याप्ति होनेकी बात है तो ये सारे साध्य, सारे साधनोंके साथ चक्षु आदिक इन्द्रियोंका सन्निकर्ष सम्भव ही नहीं। तो इन्द्रिय प्रत्यक्षसे सकल व्याप्ति नहीं जानी जा सकती। सन्निकर्ष न हो और इन्द्रिय प्रत्यक्ष हो जाय ऐसा तो शंकाकारके सिद्धान्तने माना ही नहीं। और, यदि समस्त साध्य और साधनोंके साथ चक्षु आदिक इन्द्रियका सन्निकर्ष हो जाय तो इसके मायने यह हुआ कि हम आप जैसे सभी साधारण लोग फिर सर्वज्ञ बन गए। फिर ईश्वरमें विशेषता क्या रही ? जैसे ईश्वरने प्रत्यक्षसे समस्त पदार्थोंको जान लिया इसी प्रकार यहाँके लोगोंने समस्त साध्य साधनके रूपमें लोकके समस्त पदार्थोंको जान लिया।

साध्यसाधनका सर्वोपसंहारसे ग्रहणरूप सकल व्याप्तिपर प्रश्नोत्तर— अब शंकाकार कहता है कि साध्य और साधनका सर्वोपसंहार रूपसे ग्रहणका नाम है सकल व्याप्ति ग्रहणासाध्य है, अग्नि सामान्य, साधन है, धूम सामान्य तो सामान्यरूप धुवाँका पूर्णरूपसे सबको एक ही अनुमानमें सामस्त्यरूपसे ग्रहण हो जाता है परन्तु विशेषका जो ज्ञान है अर्थात् इस पर्वतमें अग्नि है पक्ष विशेषण लगाकर किसी आधार में साध्यको सिद्ध करनेकी बात यह पक्षधर्मत्व बलसे हो जायगा। हेतुमें पक्षधर्मता पाई जाती है इस कारण पक्षमें साध्य और साधनका ज्ञान हो जायगा। उत्तर देते हैं कि इस तरहसे तो क्षणिकत्व आदिक भी साध्य हो गए और सत्त्व आदिक साधन हैं और उन दोनोंका सामान्यरूपसे, निरंशरूपसे दीपक आदिकमें एक साथ साध्यसाध का देखा जाना बन गया तो उससे फिर सकलव्याप्तिका ग्रहण क्यों न हो जायगा ? इससे इन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा साध्यसाधनका सर्वोपसंहाररूपसे ग्रहण करना युक्त नहीं बनता।

मानस प्रत्यक्ष तथा अनुमानसे भी सकलव्याप्तिका अग्रहण— यदि कहो कि मानस प्रत्यक्षसे सकलव्याप्तिका ग्रहण हो जायगा तो उसके भी यही दोष है। जो इन्द्रिय प्रत्यक्षमें बात कही वही मानस प्रत्यक्षमें है। इससे प्रत्यक्षके द्वारा सकल व्याप्तिका ग्रहण नहीं बनता। अनुमानसे भी ग्रहण नहीं बनता सकलव्याप्तिका, क्योंकि उसमें अनवस्था दोष आता है। अनुमानमें सकलव्याप्ति जानी और सकलव्याप्तिको जानेंगे अन्य अनुमानसे, वह अनुमान अन्य सकलव्याप्तिसे जाना जायगा, इस तरह न सकलव्याप्ति सिद्ध हो सकती और न अनुमान बन सकता। इस प्रसङ्गमें यह भी एक बात है कि यदि सामान्यको ही साध्य बना रहे हो तो फिर साधन करना, अनुमान करना विफल है क्योंकि सामान्यसाध्यमें कोई विवाद नहीं है। और जिस समयमें

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

व्याप्तिका ग्रहण किया है उस ही समयमें साध्य सामान्य प्रसिद्ध हो गया । यदि व्याप्तिके ग्रहणके सम्बन्धमें साध्यसामान्यकी सिद्धि नहीं है तो सामान्य साध्य साधनों का सामस्त्यरूपसे व्याप्ति कैसे निर्णीत हो सकेगी । जैसे कि अनुमान बनाया कि पर्वत में अग्नि है धुवां होनेसे, तो इस अनुमान बनानेसे पहिले जो चित्तमें व्याप्ति हुई जहाँ जहाँ धुवाँ होता वहाँ वहाँ अग्नि होती, इस व्याप्तिके द्वारा ही अग्नि सामान्य जान लो गई । अब अनुमान बनानेकी क्या आवश्यकता हुई ?

साध्यत्वके स्वरूपकी असत्करण व सज्ज्ञापन इन दो विकल्पोंमें असिद्धि अच्छा, अब यह बतलावो कि साध्यपनेका अर्थ क्या है ? क्या असत्का उत्पादन करने का नाम साध्यपना है ? या जो सद्भूत है उसको हेतुकेद्वारा जता देनेका नाम साध्यत्व है ? जैसे कि पर्वतमें अग्नि सिद्ध कर रहे हैं, अग्नि साध्य बना रहे हैं तो वहां साध्य सिद्ध करनेका अर्थ क्या है ? क्या अग्निको पैदा कर देना अथवा अग्नि थी, उसका ज्ञान करा देना ? यदि कहो कि असत्को उत्पन्न करनेका नाम साध्यपना है तो देखलो ! अब साध्य सामान्य भी उत्पन्न किया जाने लगा । तो सामान्य फिर अनित्य हो गया और अव्यापक हो गया । शङ्काकारके सिद्धान्तमें सामान्य नित्य है और व्यापक है, सदाकाल रहता है और लोकमें सर्वत्र फैला हुआ है । लेकिन, अब जब कि साध्यका अर्थ यह किया जाने लगा कि जो असत् हो उसे उत्पन्न करना सो साध्य है और साध्य माना यह सामान्यरूप तो साध्यको उत्पन्न किया, इसका अर्थ है सामान्यको उत्पन्न किया । और जो उत्पन्न होता है वह अनित्य होता है और व्यापक भी नहीं होता । इससे असत्को उत्पन्न करनेका नाम साध्यपना है यह बात नहीं बनती । यदि कहो कि सत्सदार्थका ज्ञान करा देना साध्यपना है तो यहाँ साध्यसामान्य दृश्य होनेपर धर्मीकी तरह प्रत्यक्ष हो जाता है, यह बात किसके द्वारा जनाई गई ? सत् पदार्थके जना देनेका नाम यदि साध्य है तो जैसे कि पक्ष प्रत्यक्षसे विदित हो रहा है यों ही साध्य भी विदित होने लग रहा तो यह बतलावो कि किस हेतुके द्वारा वह साध्य जाना गया । अन्यथा अर्थात् प्रत्यक्ष भी किसी हेतुके द्वारा ज्ञापित किया जाय तो धूम सामान्य भी अग्नि सामान्य द्वारा ज्ञापित की जाने लगे । यदि कहो कि धूम विशेषकी सहायतासे धूम सामान्य ही प्रत्यक्ष हो रहा, अग्नि सामान्य नहीं इस कारण यह दोष न आयगा तो यह बात यों ठीक नहीं है कि सामान्य किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखता । धूम सामान्य धूमविशेषकी सहायता पहिले पाये फिर प्रत्यक्ष बने यह बात नहीं होती । इस कारण साध्यपनेका कोई अर्थ न निकल सका, न यह ही अर्थ निकला कि सत्को जना देनेका नाम साध्य है ।

पक्षधर्मत्वके बलसे विशेषप्रतिपत्ति माननेपर प्रश्नोत्तर—जो तुमने कहा कि विशेष प्रतिपत्ति पक्ष धर्मत्वके बलसे ही होता है तो पक्षधर्मत्वके बलसे ही हो रहा है या धूम सामान्यका हो रहा है ? यदि पहिला पक्ष मानते तो असंगत है

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

क्योंकि विशेषरूपसे व्याप्तिकी प्रतिपत्ति न होनेसे व्याप्तिका परिज्ञान न होनेसे विशिष्ट धूम साध्यका गमक नहीं बन सकता। यदि कहो कि धूम सामान्यके साथ अग्नि सामान्य व्याप्त है पर उस धूमसे अग्नि विशेषकी याने पर्वतस्थ अग्निकी सिद्धि तो नहीं हुई क्योंकि धूम सामान्यके द्वारा विशिष्ट अग्नि व्याप्त नहीं है। यदि कहो कि साधन सामान्यसे साध्य सामान्यका परिज्ञान हुआ। फिर उससे ही अग्नि विशेषका ज्ञान बन जाता है क्योंकि सामान्य विशेषनिष्ठ होता है। सामान्य विशेषमें पाया जाता है तो पहिले सामान्यका परिज्ञान होने तो दो बहुत ही शीघ्र तुरन्त विशेषका भी परिज्ञान हो जायगा। तो यहां अनुमानसें पहिले धूमसामान्यका ज्ञान हो लेने दो पश्चात् यह ज्ञान होगा कि यह अग्नि विशेष है तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो सामान्य भी विशेषमात्रसे व्याप्त होता हुआ विशेषको ही जनावे फिर सामान्यको न जनावे। धूम के द्वारा एकदम विशिष्ट अग्निका ज्ञान होना चाहिये अग्नि सामान्यका नहीं। यदि कहो कि विशिष्ट जाना जाय विशेषके आधार रहने वाला साधन सामान्य जैसे कि पर्वतमें रहने वाले साध्य सामान्यका गमक हो जाता है याने विशिष्ट विशेषके आधारमें रहने वाले साधनसे विशिष्ट साध्यको जान लिया जाता है जैसे कि पहिले पर्वतमें रहने वाला धुवाँ है यों जाना, फिर उससे यों जाना जायगा कि पर्वतमें रहने वाली अग्नि है। यह भी कहना कथनमात्र है, क्योंकि इसकी कोई व्याप्ति नहीं मिलती कि जहां जहां आगे रहने वाले पर्वतमें रहने वाला धूम है वहां वहां अग्नि है। याने विशिष्ट विशेषके आधारमें रहने वाले साधनका विशिष्ट विशेषमें आधारमें रहने वाले साध्य सामान्यका अविनाभाव नहीं है। व्याप्ति नहीं बना करती। यदि कहो कि विपक्षमें सद्भावका बाधक अनुपलम्भ प्रमाण पाया जा रहा है उससे व्याप्तिकी सिद्धि हो जायगी तो कहते हैं कि ठीक है फिर तो अविनाभाव ही पर्याप्त रहा। अविनाभाव से ही अवस्था रही। फिर अन्वय बताकर अनुमानको नियमित सही सिद्ध करनेकी चेष्टा क्यों? इस कथासे अन्तर्व्याप्ति कहना भी खण्डित हो जाती है। सकल व्याप्ति जैसे सिद्ध नहीं हुई उसी प्रकार अन्तर्व्याप्ति भी सिद्ध नहीं हो सकती। उसे भी सिद्ध करने वाला प्रत्यक्ष आदिक कोई प्रमाण नहीं है। इससे यह कहना कि पूर्ववत् शेषवत् केवलान्वयी होता है यह बात युक्त नहीं है। साध्यके साथ अविनाभावी रूपसे निश्चित जो हेतु है वह साध्यको सिद्ध करता है और उससे अनुमान बनता है। पूर्ववत् आदिक अनुमानकी कल्पना करना व्यर्थ है।

पूर्ववत् सामान्यतोऽदृष्टसे केवल व्यतिरेकी हेतु सिद्ध करनेके सम्बन्धमें चर्चा समाधान—शंकाकार कहता है कि दूसरी प्रकारका अनुमान बनानेके लिये जो पूर्ववत् सामान्यतोऽदृष्टं च इस प्रकार जो च शब्द कहा गया है उस च शब्दका भिन्न क्रम वाला हुआ ही करता है तब अर्थ यह हुआ कि पूर्ववत् सामान्यता च अदृष्टं। अर्थात् जो पूर्ववत् है पक्षवाला है और सामान्यसे नहीं देखा गया, किन्तु विशेषरूपसे विपक्षमें न देखा गया हो वह अनुमान सही है, इससे केवल व्यतिरेकी हेतु बताया गया

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

है । जीवत् शरीर सात्मक है प्राणादि वाला होनेसे, इसमें वह केवल व्यतिरेकी हेतु घट जाता है, क्योंकि साध्य है सात्मक और जो सात्मक नही है ऐसे जो घट पट आदिक हैं उनमें जीवत् शरीरका अभाव और प्राणादिमत्वका अभाव पाया जाता है । इससे यह द्वितीय प्रकारका अनुमान जिसे पूर्ववतसामान्यतोदृष्ट कहते हैं वह केवल व्यतिरेकी हुआ । उत्तर देते हैं कि यह बात भी ठीक नही है, क्योंकि प्राणादिकका अन्वय दृष्टान्त नही है । तो अविनाभाव सम्बन्ध कैसे कहा जावे । यदि कहो कि व्यतिरेकसे जान लिया जा सकता । जैसे कि व्यतिरेक यहाँ बनेगा कि घट आदिकसे सात्मकपना निवृत्त होता है और प्राणादिक भी नियमसे निवृत्त होते हैं इस कारण सात्मकत्वका अभाव प्राणादिके अभावोंसे व्याप्त है जैसे कि अग्निका अभाव धूमके अभावसे व्याप्त है । जीवत् शरीरमें प्राणादिकके अभावका विरोध है अर्थात् वहाँ प्राणादिकका सद्भाव जाना जा रहा है सो प्राणादिकके अभावको निवृत्त कर देता है । और वह निवृत्त होता हुआ अपने द्वारा व्याप्त सात्मकपनेका अभावको लेकर निवृत्त होता है इस तरह सात्मकताकी सिद्धि हो जाती है । अर्थात् जहां प्राणादिमत्व नही है वहां सात्मकपना भी नही है । तो अर्थ हुआ कि जहां प्राणादि हैं वहाँ सात्मकता है उत्तरमें कहते हैं कि यह भी ठीक नही है, क्योंकि अन्य अनुमानोंमें भी उस प्रकारका अविनाभाव बराबर प्रसिद्ध है तो सारे अनुमान केवल व्यतिरेकी ही कहलायेंगे और केवल व्यतिरेकपना होना यह अनुमानकी समीचीनता का प्रबल प्रमाण है । अन्वयमात्रसे साध्यकी सिद्धि होनेपर कहीं अन्य अनुमान तो नही बन रहा । इससे अविनाभावको पक्का करना यह तो हेतुके लक्षणकी बात होगी । आखिर बात यह आयी कि जो साध्यके साथ अविनाभावी रूपसे निश्चित हो उसे हेतु कहते हैं ।

व्यतिरेककी असिद्धि और पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्टसे अन्वयव्यतिरेकी अनुमानकी अनुपपत्ति अब कुछ और विचार कीजिये । साध्यकी निवृत्तिसे साधनकी निवृत्तिको व्यतिरेक कहते हैं । तो वह व्यतिरेक कहीं किसी समय होता है या सर्वत्र सर्वदा होता है ? यदि कहो कि किसी समय कहीं होता है तो ऐसा व्यतिरेक जो कभी हो, कहीं हो वह तो साधनाभासमें भी सम्भव है यह तो निर्णायक नही हुआ । यदि कहो कि सब जगह सब समय व्यतिरेक होता है तो सामस्त्यरूपका व्यतिरेकसे ज्ञान प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे नही हो सकेगा । तो इससे व्यतिरेककी सिद्धि ही न हो सकेगी । इस प्रकार पूर्ववत्, शेषवत्, सामान्यतोदृष्ट ये तीन अन्वयव्यतिरेकी बनाते हैं । यह बात भी निराकृत हुई क्योंकि तुम्हारे दो प्रकारके हेतु तीन प्रकारके थे –पहिला (१) पूर्ववत् शेषवत् (२) दूसरा था पूर्ववत् सामान्यतोऽदृष्ट (३) तीसरा बनाया– पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोऽदृष्ट । पूर्ववत् शेषवत् तो हुआ केवलान्वयीको सिद्ध करने वाला, पूर्ववत्सामान्यतोदृष्ट हुआ केवलव्यतिरेकीको सिद्ध करने वाला और पूर्ववत्शेषवत्सामान्यतोदृष्ट हुआ अन्वयव्यतिरेकीको अनुमान बनाने वाला, सो जो दोष उन दोनों पक्षोंमें दिये गये थे केवलान्वयी औरकेवलव्यतिरेकी सिद्ध

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

करने वालेके हेतुमें वे दोनों दोष यहां भी उपस्थित होते हैं क्योंकि वहां अन्वय और व्यतिरेक दोनों माने और पूर्वमें एक जगह केवल अन्वय माना, दूसरी जगह केवल व्यतिरेक माना, बात वही हुई। जो दोष इन दोनोंमें था वह दोष इस अन्वयव्यतिरेक में लिया जायगा और फिर जो तुमने उदाहरण दिया था कि यह सारा संसार इन्द्रिय लोक आदिक सारा विश्व किसी बुद्धिमान् ईश्वरके द्वारा बनाया गया है क्योंकि कार्य स्वरूप होनेसे घटपट आदिककी तरह। यह भी अयुक्त है। यह ईश्वरके निराकरणके प्रकरणमें विशेषतया दोष देनेसे अयुक्त ईश्वरवादके प्रसङ्गमें बता ही दिया गया।

अविनाभाव माने बिना कारण कार्य अनुभय अर्थवाले पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्टकी अनुपपत्ति—अब शंकाकार कह रहा है कि पूर्ववत्का तो अर्थ है कारणसे कार्यका अनुमान करना क्योंकि पूर्व नाम है कारणका। कारण और कार्य में सबसे पहिले कारण हुआ करता है। तो कारण ही जिस अनुमानका लिङ्ग हो, साधन हो उसे कहते हैं पूर्ववत् अर्थात् कारणरूप साधनके द्वारा उत्पन्न हुआ अनुमान, शेषवत्का अर्थ है कार्यसे कारणका अनुमान बनना। शेषका अर्थ है कार्य। और कार्य है लिङ्ग जिस अनुमानका उसका नाम है शेषवत् अर्थात् कार्यसे कारणका अनुमान करना, जैसे यह पुरुष रूप आदिकके ज्ञान वाला है, क्योंकि चक्षु आदिक वाला होनेसे इसी प्रकार सामान्यतोदृष्ट उसे कहते हैं कि जो न कार्य है और न कारण है अर्थात् अकार्यकारणसे अकार्यकारणका अनुमान करना कि जो न कार्य है और न कारण है उसे कहते हैं सामान्यतोऽदृष्ट अर्थात् अकार्यकारणसे अकार्यकारणका अनुमान करना, क्योंकि वह अविनाभाव मात्र सामान्यसे हो जाता है। उत्तर देते हैं कि ऐसी भी व्याख्या करना यों सङ्गत नहीं होती कि अविनाभाव नियमका निश्चय करानेवाला प्रमाण है तर्क, सो वे तर्क प्रमाण मानते नहीं, इससे यह बात बनती नहीं। इस व्याख्यानमें समस्त ऊहापोह है, कारणसे कार्यका अनुमान सामान्यसे सामान्यका अनुमान अविनाभावरूप नियम अनुमानमें हो तब तो यह बनता है। कोई कार्य ऐसा होता है कि कारणके अभावमें होते ही नहीं, कोई कारण ऐसे होते हैं कि कार्यके अभावमें होते ही नहीं, अन्य भी जितने साधन साध्य हैं जो कि अनुमानको प्रमाण सिद्ध करते हैं, उनमें भी अविनाभाव है तो अविनाभावके नियमको मानना और उसका अवगम हुआ तर्कज्ञान उसे माने तो तो यह बात युक्त है और जो लोग मानते हैं तर्कज्ञानको जैसे स्याद्वादी लोग. उनके यहां यह बात युक्त होती है। ये तीन तरहके अनुमान बनाना उनके यहां सम्भव है।

शंकाकारकी पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्टके सम्बन्धमें अन्तिम व्याख्या—शंकाकार कहता है कि हमारे इन तीन हेतुवोंकी व्याख्या अब दूसरी सुनो, पूर्ववत् कहते हैं उस अनुमानको जिस अनुमानमें साधन साध्यका सम्बन्ध पहिले निश्चित किया गया। तो साध्य साधनके सम्बन्धके पहिले निश्चय करनेके बाद जो अनुमान

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

बनता है उसे पूर्ववत् हेतु कहते हैं। याने सबसे पहिले साध्य साधनके सम्बन्धका निर्णय हुआ करता है। जैसे यह पर्वत अग्नि वाला है धूमवाला होनेसे तो यहां अग्नि और धूमके सम्बन्धका ज्ञान सर्वप्रथम हुआ है। तब वह अनुमान बन सका। तो पूर्व में साध्य साधनका सम्बन्ध निश्चय किया जाता है और जिस अनुमानमें साध्यसाधन का सम्बन्ध पहिले निश्चित हो तो उस अनुमानके हेतुको पूर्ववत् कहा करते हैं। दूसरा है शेषवत्। शेष नाम है परिशेषका अर्थात् जो अनिष्ट है साध्यके विरुद्ध है उसका निषेध करके जो कुछ बचता है उसका जो अनुमान करता है, सिद्ध करता है उसे कहते हैं शेषवत् तीसरा है सामान्यतोदृष्ट अर्थात् सामान्यसे देखा गया हेतु याने विशिष्ट व्यक्तियोंमें सम्बन्धका ग्रहण नही हुआ करता। सम्बन्ध बनता है सामान्यसे। यों नही बनता कि जहाँ जहां रसोई वाली धूम है या जहाँ जहाँ धूम है वहाँ वहाँ रसोई वाली अग्नि है ऐसा कोई विशिष्ट आधार सहित सम्बन्ध नही बना करता। वह सामान्यसे ही दृष्ट हुआ करता है। जैसे अनुमान बना कि सूर्य गति वाला है। एक देशसे अन्य देशको प्राप्त होनेसे। देवदत्तका तरह। तो यहाँ सामान्यसे ही देखा गया हेतु जो एक देशसे दूसरे देशको प्राप्त हो जाय वह गति वाला होता है। तो यों ये अलग-अलग हैं पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्ट और इनके भाव न्यारे-न्यारे हैं।

शंकाकारके समस्त हेतुवोंका पूर्ववत्में अन्तर्भाव हो सकनेसे त्रैविध्य असिद्धि —अब पूर्ववत् आदिकी नई व्यवस्था के उत्तरमें कहते हैं कि यह व्यवस्था भी निराकृत हो जाती है क्योंकि युक्त प्रकारके जो भी तुमने अनुमान बनाये है हेतु दिया है, पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्ट, यो वह अहा प्रमाणसे सिद्ध होता है। उनका अविनाभाव तर्क ज्ञानसे हो सो तर्क ज्ञानसे जानकर फिर अनुमानको सिद्ध करनेकी पद्धति वही हुआ करती है जहां हेतुका लक्षण यह पाना जा रहा हो कि जो साध्यके साथ अविनाभावी रूपसे निश्चित हो उसे हेतु कहते हैं। और, फिर एक मोटीसी बात यह है कि ये तीन भेदकर देना, लिंगलिंगी सम्बन्ध वाला अनुमान, प्रसक्तका प्रतिषेध होने पर शेष बचे हुएका ज्ञान और सामान्यसे देखे गये अविनाभाव हुयेका अनुमान, ये भेद घटित नही होते, क्योंकि जैसे कि इन तीनके लक्षणोंमें कहा गया है अभी शंकाकार द्वारा वे सब लक्षण सबमें घटित हो जाते हैं। समस्त हेतु पूर्ववत् ही मान लो क्योंकि सब हेतुवोंमें चाहे वह शेषवत् हो अथवा सामान्यदृष्ट हो, साध्य साधनका सम्बन्ध बराबर सिद्ध है। जैसे शेषवतके अनुमानमें आप देख सकेंगे कि यह पूर्ववत् सिद्ध है क्योंकि प्रसक्तके प्रतिषेधकी परिशिष्टका प्रतिपत्तिके साथ कही अविनाभाव है तो जब प्रसक्त प्रतिषेधका परिशिष्टके साथ कही अविनाभाव निश्चित हो तब ना उपस्थित किए गए परिशिष्टका ज्ञान होता है। तो इससे सिद्ध हुआ कि वहां भी लिंगलिंगीके सम्बन्धका बराबर प्रयोग है तो वह पूर्ववत् हो गया। जैसे शेषवत्में उदाहरण दिया गया था कि शब्द किसी पदार्थके आश्रित हैं क्योंकि गुण होनेसे रूपकी तरह। जैसे रूप गुण है तो किसी न किसी के आश्रय तो रह रहा, इसी प्रकार शब्द भी गुण है

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

तो शब्द भी किसी के आश्रय रह रहा तो यहां प्रसक्त था अवाश्रितपना, जिसमे विवाद था या विरुद्ध रूपसे दूसरा कोई मान रहा था वह हुआ प्रसक्त । उस प्रसक्तका प्रतिषेध करके जो शेष बचा उसका अनुमान बने तो उसमें आप देख लो कि प्रसक्त प्रतिषेधकी प्रतिपत्तिके साथ अविनाभावका निश्चय है, सो पूर्ववत्में और करते ही क्या थे । साध्य साधनके अविनाभावका निश्चय कह रहे थे । वह शेषवत भी पूर्ववत् बनता है । सामान्यतोदृष्टका जैसे उदाहरण दिया था कि सूर्यगतिमान है एक देशसे अन्य देशको प्राप्त हो जानेके कारण । तो यहां अविनाभाव ही तो जाना गया एक देश से देशान्तरको प्राप्त हो जाने रूप साधनका गतिसत्त्वके साथ अविनाभाव हुआ है तब सामान्यतोदृष्टमें वह बल आया कि साध्यको सिद्ध कर सके अन्यथा तो साध्य साधन के सम्बन्धका निश्चय न मानोगे तो वह अनुमान भी नही बन सकता । तो इस प्रकार शेषवत् सामान्यतोदृष्ट इन तीनोंको न्यारा-न्यारा कहना युक्त नही है । ये सभीके सभी पूर्ववत् प्रतीयमान होते हैं ।

शङ्काकारके समस्त हेतुवोंका शेषवत्में अन्तर्भाव होनेसे त्रैविध्यकी असिद्धि--अथवा सभीके सभी परिशेषानुमान प्रतीत होते हैं, शेषवत् विदित होते हैं जैसे पूर्ववत्का अनुमान दिया जाता है कि पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे तो यहां अग्नि का अर्थ यह हुआ कि अग्निमें ऐसा जो कोई समझ रहे थे या प्रसक्त हो रहे थे, उस प्रकारकी बुद्धि बन रही थी उसका प्रतिषेध हुआ अर्थात् अग्निका प्रतिषेध करके फिर इसकी प्रवृत्ति हुई क्योंकि उस अनुमानमें जहां धूम हेतु सिद्ध कर रहे हैं, यदि अग्निकी प्राप्ति न हो तो विवाद ही नहीं बन सकता, फिर अनुमान भी व्यर्थ हो जाता । कोई पुरुष कोई अनुमान कर रहा है कि इस पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे यों अनुमान कर रहा है यों बता रहा है दूसरेकी बुद्धिमें यह ज्ञान नही हो रहा था कि पर्वतमें अग्नि है उसकी बुद्धि अग्निमें समाई हुई थी । तो जो अग्निका वहाँ ज्ञान नही रख रहे थे, अनग्नि जैसे सन्तोषसे रह रहे थे, वहां प्रशक्ति थी ना अग्निकी उसका प्रतिषेध किया गया है अर्थात् अग्नि सिद्ध की गई है । तो पूर्ववत् भी तो शेषवत् अनुमान बन गया । इसी प्रकार सामान्यतोदृष्ट भी शेषवत बन जाता है क्योंकि सभी अनुमानोंमें प्रसक्तका प्रतिषेध पाया जाता है । अनुमान इसलिए बनाया ही जाता कि जिस बातको दूसरा नही जानता, जिससे विपरीत दूसरेके ज्ञानका वातावरण बना है उसका निषेध करें । तो इस अनुमानमें भी अगतिमान प्रसक्त था । अनेक लोग यों समझ रहे थे कि सूर्य कहां चलता है, वह देखो ना अभी १० मिनटसे जहांका जहां ही दिख रहा है, ऐसी सूर्यमें अगतिमानकी प्रसक्ति थी, उसका प्रतिषेध किया गया, सूर्य अगतिमान नहीं किंतु गतिमान है तो प्रसक्त प्रतिषेधसे सामान्यतोदृष्टकी उत्पत्ति हुई है इससे सामान्यतोदृष्ट भी शेषवत् बन गया अर्थात तीनोंके तीनों शेषवत मानलो या पूर्ववत मानलो ।

शङ्काकारके समस्त हेतुवोंका सामान्यतोदृष्टमें अन्तर्भाव होनेसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

भविष्यकी आशंका—अब और देखिये कि ये तीनोंके तीनों सामान्यतोदृष्ट ही विदित हो रहे हैं, क्योंकि सामान्यतोदृष्टका यह अर्थ है कि सामान्यसे ही साध्य साधन के सम्बन्धका ज्ञान हुआ, फिर उससे अनुमान बना, क्योंकि विशेषरूपसे साध्य साधन का सम्बन्ध जाना नहीं जा सकता है। पहिले तो सब जगहके, सब समयके साध्य साधनके सम्बन्धका परिज्ञान होना ही अशक्य है और फिर किसी विशेष आधारमें रहते हुए साध्यके साथ साधनका सम्बन्ध बनाना भी उचित नहीं है। इससे पूर्ववत् हो अथवा शेषवत् हो या सामान्यतोदृष्ट हो, वे सबके सब सामान्यतोदृष्ट बन जायेंगे। अतः जो अनुमानके भेदको चाहता है उसको हेतुका प्रधान लक्षण पहिले अविनाभाव मान ही लेना चाहिये।

हेतुका साध्यविनाभावित्व लक्षण माननेपर अनुमान प्रमाणकी सम्यक् व्यवस्था—हेतुके सही लक्षणको माने बिना तो बहुत बहुत जगह बुद्धि भ्रमेगी। नाना अनुमान बनाने आदिकी व्यवस्थायें करनी पड़ेंगी। और, एक हेतुका सही लक्षण मान लिया जाय तो फिर बुद्धि न भ्रमानी पड़ेगी। हेतुका लक्षण है जो साध्यके बिना न हो, और होवे कहीं हेतु, ऐसा मिल जाय साधन तो जरूर साध्यको सिद्ध कर देगा क्योंकि हेतुमें यह नियम बन गया कि हेतु वही होता है जो साध्यके बिना कभी भी सम्भव नहीं है। यह बात होती है तर्क प्रमाणसे, क्योंकि प्रत्यक्ष हो, अनुमान हो, प्रत्यभिज्ञान हो, सभी प्रमाणोंमें एक सीधी गति है, तर्कणापूर्वक गति नहीं। नियम बनाकर। कानून करके, ऊहापोह करके उन प्रमाणोंमें गति नहीं है और अनुमान प्रमाण ऐसा होता है कि जिस किसीका भी अनुमान किया जाय उसके सम्बन्धमें पहिले ऊहापोह होकर साध्य साधनके अविनाभावका निर्णय हो चुकना चाहिये अन्यथा अनुमान बन ही नहीं सकता। तो अनुमानका यह लक्षण कि साधनसे साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान कहते हैं। उसमें साध्य तो हुआ करता है इष्ट अबाधित्व और असिद्ध और साधन हुआ करता है वह जो साध्यके साथ अविनाभाव रूपसे निश्चित होता हो। अब चाहे अनुमानोंके कितने ही भेद कर दिये जायें पर सब अनुमानोंमें हेतुका लक्षण केवल एक यही पाया जायगा। तभी वे हेतु अपने अपने साध्य सिद्ध कर सकेंगे। इस प्रकार यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि साधनका लक्षण यह मानना होगा जो साध्यके बिना न हुआ करता हो, ऐसा जिसमें निर्णय पड़ा हो वह साधन हुआ करता है और अनुमान सही जाननेके लिये हेतुकी यह यथार्थता जान लेना भर आवश्यक है। अनुमान यथार्थ कहलाने लगेगा। और उसके अंगों पांगोंका समर्थन करके अनुमानको सही बनानेका प्रयत्न करें और हेतुका यह लक्षण इस हेतुमें पाया न जाय तो वह अनुमान सही नहीं बन सकता है, इससे केवल हेतुका लक्षण सही मान लो तो सारी व्यवस्था युक्त हो जायगी।

अविनाभावके स्वरूपके सम्बन्धमें जिज्ञासा—अब एक जिज्ञासु कहता है

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

कि हेतुका प्रधान लक्षण अविनाभाव है यह बात युक्त जच रही है साध्यके साथ अवि-नाभाव रूपसे जिसका निश्चय हो ऐसा हेतु मिलनेपर साध्यकी अवरूप सिद्धि होती है। किन्तु अविनाभावका स्वयंका क्या स्वरूप है वह तो प्रसिद्धिमें आना ही चाहिये क्योंकि लक्ष्यका लक्षण अतिप्रसिद्ध न हो तो वह लक्षण क्या बन सकता है। फिर तो लक्षण के जाननेके लिये दूसरा लक्षण बनावें और यों अप्रसिद्ध लक्षण रहा करे तो लक्षणों की पहिचानके लिये लक्षणोंके बनाये जानेका ही काम रहेगा, प्रकृत बात कुछ बन न सकेगी। व्यवहारमें भी जिसका परिचय नहीं होता उसका परिचय करानेके लिये ऐसा मोटा लक्षण बताते हैं जो एकदम समझमें आये जैसे बहुतसे आदमी बैठे थे। उनमें एक सेठ भी था। सेठ ही केवल पगड़ी बाँधे था व किसीने बताया कि जो पगड़ी बाँधे है वह सेठ है। अब कोई पगड़ी ही न समझता हो तो सेठको पहिचाने क्या ? सो पगड़ी प्राय: समझते हैं सब सो पहिचान हो जाती लक्षण तो एकदम प्रसिद्ध हुआ करता है। तो हेतुका लक्षण जो अविनाभाव कहा है वह तो युक्त है, परन्तु अविना-भावका स्वरूप क्या है। वह एकदम प्रसिद्ध है या नहीं ? या उसको भी समझनेके लिये बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना करनी होगी। ऐसा जिज्ञासु जाननेकी इच्छासे मनो पूछ रहा है और उसके उत्तरमें आचार्यदेव अविनाभावका स्वरूप बतला रहे हैं।

सहक्रमभावनियमोऽविनाभाव ॥ ३–१६०॥

अविनाभावका स्वरूप व प्रकार—सहभावके व नियम क्रमभावके नियमको अविनाभाव कहते हैं अर्थात् साध्य साधन एक साथ रहे तो उनमें एकके रहनेसे दूसरे का ज्ञान हो जाता है क्योंकि उनमें अविनाभाव है। एकके बिना दूसरा नहीं रह सकता है। यद्यपि इस सद्भाव नियममें भी थोड़ासा अन्तर है उसे अब अगले सूत्र की व्याख्याके समय बतावेंगे लेकिन अविनाभाव कहलाता है कि साध्यके बिना साधन न हो। क्रमभाव नियम उसे कहते हैं कि जिसमें क्रमसे होनेका नियम हो। साध्य साधन ये क्रमसे जहाँ हुआ करते हों वहाँ एकको देखकर दूसरेका निश्चय कर दिया जाता है। क्रमभावके नियमोंके अन्दरमें कुछ भेद रहता है जिसको अब अगले सूत्रकी व्याख्यामें कहेंगे। पर अविनाभावमें या तो सद्भाव नियम होता है या क्रमभाव नियम होता है। किसका तो सद्भाव नियम होता और किसका क्रमभाव नियम होता ऐसी जिज्ञासा होना प्राकृतिक है। उसका प्रतिबोध करनेके लिये कहते हैं—

सहचारिणो: व्याप्यव्यापकयोश्च सहभाव: ॥ ३–१७॥

सहभावनियम अविनाभावका विवरण—सहचारी साध्य साधनका तो सद्भाव नियम होता है और व्याप्य व्यापक भाव वालेका भी सद्भाव नियम होता है। इस प्रकार सद्भाव नियमके दो आधार बतानेका मर्म यह निकला कि कुछ तो ऐसे सद्भावी होते हैं कि जिनमेंसे एक कोई भी पाया जायगा। जैसे कोई अनुमान करना

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

है कि इस आममें रस है रूप होनेसे तो कोई यह भी अनुमान कर सकता है कि इस आममें रूप है रस होनेसे। जैसे रात्रिके समयमें कोई आम चूस रहा है तो उसे रस का तो परिज्ञान हो रहा वह तो प्रत्यक्ष है, पर उसके साथ उसे रूपका भी ज्ञान हो रहा तो वह अनुमानसे जाना जा रहा है। इस आममें रूप है रस होनेसे। और जब कभी दिनमें बाजारमें देखते हैं आमको तो उसका रूप दिखता है, उसे चूस तो नहीं रहे, पर उसका वहाँ यह अनुमान बनता है कि इसमें रस है रूप होनेसे। तो रूप, रस, गंध, स्पर्श ये सब एक साथ होते हैं। इनमेंसे कोई एक हो तो शेषके तीन अवश्य होते हैं। एक तो ऐसा सद्भावी होता है उसमें सद्भाव नियम दोनों तरहसे मा गया, पर कोई सद्भाव नियम ऐसा होता है कि इन दोमेंसे एक तो ऐसा है जो दूसरेके बिना हो ही न सके और दूसरा ऐसा है कि जो उस एकके बिना हो सकता है। ऐसे सद्भाव नियममें साधन एक ओरसे होगा, दोनों ओरसे नहीं हो सकता। इसे कहते हैं व्याप्य व्यापक भावका नियम। जैसे उदाहरण है कि यह वृक्ष है सीसम होनेसे। तो यद्यपि ये दोनों एक साथ रह रहे हैं, ऐसा नहीं है कि वृक्षपना पहिले होता है और सीसमपना बादमें रहता है या सीसमपना पहिले रहे वृक्षपना बादमें रहे। दोनों ही बातें एक साथ हैं, किन्तु व्याप्य व्यापकका सम्बन्ध है। सीसम तो वृक्षपनेके बिना कभी हो ही नहीं सकता, किन्तु वृक्षपना सीसमके बिना भी रह सकता है क्योंकि सीगम भी एक वृक्ष है और नीम आम आदिक अनेक और भी वृक्ष हैं। तो इसमें व्याप्य हुआ सीसम। जो कम स्थलोंमें रहे वह व्याप्य है जैसे यहां सीसमपना और जो बहुत स्थलों में रहे वह है व्यापक जैसे व्यापक हुआ वृक्षपना। तो यहाँ व्याप्य हेतु बन सकता है, व्यापक हेतु नहीं बन सकता। तो एक सहभावमें दोनों ओरसे नियम बनता है हेतुपन बनता है और इस व्याप्य व्यापक भावके सहभावमें व्याप्य हेतु बनता है और व्यापक साध्य बनता है। हैं दोनों जगह सहभाव। एक ही साथ वे दोनों हैं। अब क्रम भाव नियमकी बात सुनो!

पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च सहभावः ॥ ३-१८ ॥

क्रमभावनियम अविनाभावका विवरण-- जो पूर्वचारी है अथवा उत्तरचारी है इसमें क्रमभाव नियमसे होगा और जो कार्यकारणरूप हैं उनमें क्रमभाव नियमसे होगा। इसमें आप दो प्रकारकी बात देखेंगे कि एकमें तो आदिसे अन्त तक क्रम है अनिवार्य क्रम है और दूसरेमें उत्पत्तिसे पहिले तो क्रम है, उत्पत्तिके बाद फिर वे एक साथ भी रह सकते हैं। जैसे पूर्वचारी हेतुका अनुमान है कि कल गुरुवार होगा आज बुधवार होनेसे तो यहाँ सर्वथा क्रममें है बुध समाप्त होनेपर गुरु आयगा। बुध और गुरु किसी भी समय एक साथ न रह सकेंगे। यही बात उत्तरचारीमें है। जैसे कहा कि कल मंगलवार था, आज बुधवार होनेसे, तो ये मंगल बुध भी पूरे क्रममें रह रहे हैं। मंगलवारकी समाप्ति होनेपर ही बुधवार आया तो पूर्वचारी और उत्तरचारी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

हेतुमें साध्यके सद्भावका काल अलग है हेतुके सद्भावका काल अलग है लेकिन इसका ज्ञान किया जा रहा है । यह क्रमभाव नियम वाला है । कार्यकारण भावमें हम देखेंगे कि यद्यपि कारण पहिले होता है, कार्य बादमें होता है पर कार्यके उत्पन्न होनेके समय भी कारणका सद्भाव रहता । जैसे अग्निसे धूमकी उत्पत्ति होती, पर धूमके रहनेके कालमें भी अग्निका सद्भाव पाया जाता है लेकिन कारण कार्यपनेकी जो बात है वह क्रममें पड़ी हुई है और उस ही क्रमको बतानेका इस प्रसङ्गमें भाव है, इस कारण कार्यभावमें क्रमभाव नियम बनता है । अब ये दोनों प्रकारके अविनाभाव किस ज्ञानसे जाने जाते हैं उसका प्रतिपादन करते हैं ।

तर्कात्तन्निर्णयः ॥ ३-१९ ॥

तर्क ज्ञानसे अविनाभावका निर्णय—तर्क ज्ञानसे उस अविनाभावका निर्णय होता है । अविनाभावका निर्णय न प्रत्यक्ष ज्ञानसे हो सकता न अनुमानज्ञानसे हो सकता । प्रत्यक्ष तो हेतुको देख रहा है, जान रहा है इतना ही मात्र काम कर रहा है, उसमें ऊहापोह करना, अविनाभावका निरीक्षण करना, यह बात नहीं बनती । अनुमान तो तर्कज्ञान पूर्वक होता है । यदि अनुमानसे अविनाभावका निर्णय तो या अनवस्था दोष आयगा या इतरेतराश्रय दोष आयगा । दोनों अविनाभावका निर्णय तर्क प्रमाणसे ही हो सकता है । और इस तर्कज्ञानका किसी भी ज्ञानमें अन्तर्भाव नहीं बनता । जैसे प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणका स्वरूप उनका उनमें है, अन्य प्रमाणों से निराला है, इसी प्रकार तर्क ज्ञानका स्वरूप उसका उसमें है और अन्य प्रमाणोंसे निराला है । इसी बातको इस सूत्रमें सिद्ध किया है कि सहभाव नियमरूप अविनाभाव और क्रमभाव नियमरूप अविनाभाव ये सब तर्कसे ही निर्णीत किये जाते हैं—यहाँ तक साधनके विषयमें विवरण चला । यह प्रकरण है अनुमान ज्ञानका । अनुमानज्ञान को लक्षण किया गया है—साधनसे साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान कहते । तो उस साधनकी विशेषता बतानेमें इतने सूत्र कहे गए । अब साध्यकी विशेषता बतानेके लिए सूत्र करते हैं जिसमें बतायेंगे कि साध्य कैसा हुआ करता है ।

इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् ॥ ३-१० ॥

साध्यका लक्षण—साध्य वही हो सकता है जो इष्ट हो, अबाधित हो और असिद्ध हो । इष्टका अर्थ यह है कि जिसमें साध्य बनानेका अभिप्राय हो । अनुमान प्रयोग करने वाला पुरुष जिस तत्त्वको साध्य बनाना चाह रहा हो । जिसकी वह सिद्धि करना चाहता है उसको कहते हैं इष्ट । साध्यका इष्ट होना अत्यन्त आवश्यक है । कौन पुरुष ऐसा है जो अपने अनिष्ट तत्त्वको सिद्ध करनेके लिए प्रमाण खोजे और अपने अनिष्ट तत्त्वकी सिद्धि करे । सभी लोग अपने इष्टकी ही सिद्धि करना चाहते हैं । तो अनुमान प्रमाणमें साध्य वही हो सकता है जो प्रयोक्ताको इष्ट हो । इसी प्रकार साध्य

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

अबाधित होना चाहिये। साध्य तो कह दिया, पर उसमें एकदम प्रत्यक्षसे भी बाधा आ रही तो उसे कौन मान लेगा ? वह साध्य सही नही है। जैसे कोई यह बतानेका साहस करे कि अग्नि ठंढी होती है, इसे सिद्ध करनेके लिये कितने ही हेतु देवे, कैसी ही युक्तियाँ लगाये पर अग्नि तो प्रत्यक्ष विदित है कि गर्म हुआ करती है। सब लोग जानते हैं। वह कैसे साध्य बन सकता है ? तो जो अबाधित है वही साध्य है। जिसमें किसी प्रमाणसे बाधा आये वह साध्य नही हो सकता इसी प्रकार साध्य असिद्ध होना चाहिये। जिसको समझा रहे हैं उसे साध्य पहिलेसे ही सिद्ध है तो फिर समझानेकी आवश्यकता क्या रही ? अनुमान प्रमाण तो तब बनाया जाता है जब कि प्रतिपाद्य को साध्य असिद्ध हो और उसे सिद्ध करना आवश्यक हो तब अनुमान किया जाता है। तो साध्य वही ठीक है जो इष्ट है, अबाधित है और असिद्ध है। अब इन तीन विशेषणोंकी सूत्रों द्वारा भी समर्थित करेंगे जिसमें पहिले असिद्ध विशेषणको सिद्ध करनेके लिये सूत्र कहते हैं।

संदिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धं पदम्। ३-२१।

साध्यके असिद्ध विशेषणकी सार्थकता—जो साध्य संदिग्ध हों अथवा विपर्यस्त हों या अव्युत्पन्न हों उनको ही साध्यपना होवे इस प्रयोजनसे साध्यके लक्षण वाले सूत्रमें असिद्ध पद दिया गया है। जैसे जिसे वस्तुके बारेमें संदेह हो रहा है कि यह ठूठ है या पुरुष है कुछ अंधेरेमें उजेले सवेरेके समय घूमने जा रहे थे। किसी नये रास्तेसे घूमने चले तो कुछ दूरपर एक कोई ठूठ खड़ा था वह उतना ही ऊँचा था और उतना ही मोटा और कुछ ऊपर दो शाखाओंकी थोड़ी ठूठी भी रही थी, उसे देखकर उसे संदेह हो गया कि यह ठूठ है या पुरुष है। अब यहाँ देखिये—चलितज्ञान हो रहा ना। क्या है क्या नही, ऐसा जो जाननेमें आ रहा पदार्थ वह संदिग्ध पदार्थ होता है। उसमेंसे एकका निर्णय करनेके लिए जो अनुमान बनता है वह ठीक है, क्योंकि असिद्ध को सिद्ध किया जा रहा है। यह तो ठूठ ही है, क्योंकि जरा भी चलता हिलता डुलता नही है। आदिक जो कुछ भी हेतु दिया उससे ठूठ सिद्ध करना यह असिद्धको सिद्ध करनेकी बात है। और एकदम सामने सबको स्पष्ट जानकारी हो रही हो, खूब उजेला है, पास हीमें ठूठ खड़ा है। सिद्ध है सबको, उसे कौन अनुमान प्रमाणसे सिद्ध करनेका श्रम करेगा ? तो संदिग्ध पदार्थका साध्यपना बन इसलिये असिद्ध शब्द है। इसी प्रकार कुछ पदार्थ विपर्यस्त होते हैं जैसे पड़ी तो थी सीप और जान लिया चाँदी तो यह विपरीत परिज्ञान हुआ ना। अब ऐसा विपरीत परिज्ञान हुआ ना। अब ऐसा विपरीत परिज्ञान होनेपर कोई जानकार पुरुष समझाता है उसी स्थलका निवासी कि यह तो सीप है क्योंकि सीप जैसा ही चौड़ा गोल आकार होनेसे अथवा एक ओरका रङ्ग रूखा होनेसे आदिक जो कुछ भी हेतु देकर समझा रहा है तो वहां अनुमान करना यों ठीक है कि पदार्थका विपरीत ज्ञान हो रहा था तो विपर्यस्त पदार्थमें साध्यपना हो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

इसके लिये साध्यके लक्षण वाले सूत्रमें असिद्ध पद दिया है। इसी प्रकार कुछ पदार्थ अव्युत्पन्न होते हैं, अनिश्चित होते हैं। चाहे पहिले उस पदार्थको जाना हो अथवा न जाना हो, वर्तमानमें जिसके बारेमें वह यथावत् स्वरूप निश्चित नहीं हो रहा है उस पदार्थको अव्युत्पन्न कहते हैं। तो जिस पदार्थके सम्बन्धमें अनध्यवसाय है वह पदार्थ अनिश्चित है। ऐसे पदार्थमें साध्यपना हो इस प्रयोजनके लिये असिद्ध पद दिया है साध्यके लक्षणमें जैसे कि संदिग्ध पदार्थ असिद्ध था। विपर्यस्त पदार्थ असिद्ध था इसी प्रकार अनध्यवसायके विषयभूत अव्युत्पन्न पदार्थ जिसके बारेमें थोड़ा सामान्यरूपसे कुछ जानकारी हो पायी फिर एकदम चित्तसे उतरने लगा। उसके बादमें कुछ निश्चय ही नहीं किया जा सक रहा। ऐसा पदार्थ साध्य बन सके इस प्रयोजनके लिये साध्य के लक्षण वाले सूत्रमें असिद्ध पद दिया है। जो संदिग्ध हो, विपर्यस्य हो। अव्युत्पन्न हो। ऐसे ही साध्यकी सिद्धि करनेमें साधनकी सामर्थ्य है। अनिष्टका साधन कोई न बना। बाधितको साधन बनानेसे कोई फायदा नहीं और पूर्ण निश्चयको सिद्ध करनेके लिये अनुमानका भी कोई प्रयास नहीं करता, इस कारण साध्यके लक्षणमें जो तीन विशेषण दिये वे पूर्णतया युक्ति संगत हैं। अब सूत्र रूपसे असिद्ध पदका प्रयोजन तो बता चुके। अब इष्ट और अबाधित इन दो शब्दोंका प्रयोजन बतलानेके लिये सूत्र कह रहे हैं।

अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोःसाध्यत्वं माभूदितीष्टाबाधितवचनम् ॥३-२२॥

साध्यके अनिष्ट और अबाधित विशेषणोंकी सार्थकता—अनिष्ट तत्त्वको और प्रत्यक्षादि बाधित तत्त्वको साध्यपना न बन जाय इस प्रयोजनसे इष्ट और अबाधित शब्दसे साध्यको विशेषित किया गया है। जैसे जैन लोग शब्दको सर्वथा नित्य नहीं मानते और वे ही जैन शब्दको सर्वथा नित्य सिद्ध करनेका हेतु देने लगे तो इससे उनके ही सिद्धान्तका घात हुआ। इसका फल प्रतिवादीने पाया और वादीका स्वयं घात हुआ। जो जो भी सिद्धान्तवादी जो कुछ भी इष्ट सिद्धान्त करते हैं उनके खिलाफ अनिष्ट तत्त्वको सिद्ध करनेका प्रयास स्वयं तो नहीं करते, करें तो मूढ़ता है, तो यों अनिष्ट कभी साध्य नहीं बनाया जाता है। इसी प्रकार जो बात प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंसे बाधित हो उसे भी साध्य नहीं बनाया जा सकता। जैसे कोई कहने लगे कि शब्द कानोंसे सुनाई नहीं दिया करता, हेतु कुछ भी देने लगे। तो यहाँ अश्रावणत्व अर्थात् कानोंसे सुनाई न देने वाली यह बात तो प्रत्यक्ष बाधित है। सबको शब्द कानोंसे सुनाई देते हैं फिर उसकी विपरीत सिद्धि कैसे की जा सकती है? यह तो हुआ प्रत्यक्षबाधित। इसी प्रकार अनुमान बाधित, स्ववचन बाधित, लोकबाधित भी हुआ करते हैं। उनका भी कोई साध्य बनाये तो वह अनुमान युक्त नहीं है। जैसे कोई यह सिद्ध करने लगे कि धर्म मरेके बाद बड़ा दुःख देता है तो यह आगम बाधित है। आगम इसे स्वीकार करता ही नहीं। और, आगम प्रामाण्यसे इतना विदवस्त है पुरुष

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

कि ऐसा सुनना भी कोई पसंद नही करता कि धर्म दुःखका देने वाला होता है। और वह भी मरेके बाद कह रहे। कुछ लोग तो ऐसे हैं कि जो यही देखते हैं कि धर्म इस जीवनमें दुःख देता है, कैसी उनकी मोटी बुद्धि है। धर्म, उपवास, नियम व्रत आदि करनेमें तत्काल कष्ट मालूम होता है। सो भी मरेके बादकी बात कह रहे हैं। वह एकदम आगम बाधित है और वह आगम बाधित क्या स्व सम्वेदन ज्ञानसे ही बाधित हो रहा हैं, ऐसा साध्य नही बनाया जा सकता। कोई अनुमान बनाये कि मेरी माता बंध्या है और हेतु कुछ दे तो उसके कहनेसे ही विरोध आ रहा है। मेरी माता। माता भी बताता है और बंध्या भी कहता है तो ऐसा स्ववचनबाधित है। ऐसे बाधित पदार्थमें साध्यपना न हो जाय इसलिये अबाधित शब्द दिया है। कोई अनुमान बनाये कि मनुष्यकी खोपड़ी पवित्र होती है प्राणीका अंग होनेसे। जैसे शंख, सीप, मोती कौड़ी आदिक ये पवित्र हैं, प्राणीके अंग हैं। तो मरे हुए मनुष्यकी खोपड़ी भी प्राणीका अंग है इस कारण पवित्र होना चाहिये, किन्तु यहाँ यह बात लोकबाधित है। भल ही प्राणीके अंगमें समता है लेकिन शंख सीप आदि तो लोकमें पवित्र माने गए हैं और मनुष्यकी खोपड़ी अपवित्र मानी गई है। थोड़ा इसमें यह अन्तर भी है कि शंख सीप आदिक तो ये उन कीड़ोंके ऊपरके देहके खोल हैं। चामके भीतर रहने वाली हड्डी नही है, किन्तु मनुष्यकी खोपड़ी तो चामके भीतर रहने वाली है। यों भी उनमें अन्तर है इससे लोकमें सीप आदि अशुचि नही माने गये। मनुष्यके सिर कपाल को पवित्र सिद्ध करने लगे तो वह लोकबाधित है। इसका साध्यपना नही हुआ करता यों जितने भी बाधित हैं वे साध्य नही बन सकते। न अनिष्ट पदार्थको साध्य बनाया जा सकता है, और न बाधितको साध्य बनाया जा सकता है। यो इन दोनोंमें साध्य पना न हो जाय इस कारण साध्यके लक्षण वाले सूत्रमें इष्ट और अबाधित शब्द दिया गया है इससे साध्यका लक्षण यह युक्त बैठ गया कि जो इष्ट हो, अबाधित हो और असिद्ध हो उसे साध्य कहते हैं।

वादी प्रतिवादी सबके लिये इष्टको साध्य माननेकी आशङ्का—अब यहाँ शङ्कार कहता है कि साध्यके लक्षणमें जो विशेषण दिये हैं वे सब विशेषण सामान्यरूपसे हैं और वे सभीमें घटना चाहिये। जैसे इष्ट शब्द है तो वादीको भी इष्ट हो, प्रतिवादीको भी इष्ट हो! जैसे कि शब्द कथंचित् नित्य है यह जैनोंको इष्ट है तो इसमें अनित्यत्व साध्य है तो अन्य लोगोंको वैशेषिक आदिकोंको शब्द सर्वथा नित्य और आकाशका गुण है ऐसा इष्ट है। तो सर्वथा अनित्यपना या आकाशका गुण होना यह भी इष्ट बन जाना चाहिये। यह भी साध्य हो जाय, क्योंकि ऐसा नियम नही बनाया जा सकता, जो वादीको इष्ट हो वही साध्य हो सकता है, यह तो सामान्य कथन है। इष्ट जो हो साध्य है, चाहे वादीको इष्ट हो चाहे प्रतिवादीको। इस तरह शंकाकारका यह अभिप्राय है कि जो बात विरोधी चाहता है वह भी साध्य बन जाना चाहिये। अब इस शंकाका निवारण करनेके लिए सूत्र कहते हैं।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः ॥ ३-२३ ॥

अनुमानमें वादीके लिये ही इष्ट साध्यकी साध्यता असिद्धकी तरह इष्ट विशेषण प्रतिवादीके लिए नहीं है जैसेकि असिद्धपना प्रतिवादीके लिए ही है वादीके लिए नही, जो अनुमान बना रहा है और दूसरेको समझा रहा है तो स्वार्थानुभवसे तो इस वादीने निर्णय कर ही लिया है अथवा व्याप्ति द्वारा सामान्यतया इसकी सिद्धि हो ही गई है तब यह अनुमान बना रहा और दूसरेको समझा रहा तो असिद्ध पद तो प्रतिवादीके लिए ठीक है पर इष्ट विशेषण प्रतिवादीके लिए नहीं लग सकता क्योंकि सर्व विशेषण सबकी अपेक्षा नही होते, विशेषण विशेष्य भाव प्रतिनियत हुआ करता है। जो विशेषण जिस विशेष्यमें कब सकता है वह वहाँ लगाया जाता है। तो इष्ट और असिद्ध विशेषण तो प्रतिवादीकी अपेक्षा है। वादीकी अपेक्षासे नही, क्योंकि वादी तो अर्थके स्वरूपका प्रतिपादन करने वाला है। जो हेतु बनाया जा रहा है उसमें जो साध्य सिद्ध किया जा रहा है, उसके स्वरूपका प्रतिपादक है वादी। यदि वादी को अर्थके स्वरूपका परिज्ञान नही हुआ, जिसको कि साध्य बनाया जा रहा। तो वह प्रतिपादक बन नही सकता। समझाये फिर क्या वह जब व्याप्तिका भी ज्ञान नही, साध्यका भी उसे निश्चय नही, तो दूसरेको समझायेगा कैसे ? तो वादी चूँकि अर्थका प्रतिपादक है जो सिद्ध किया जा रहा है, उसको समझाने वाला है इस कारण वादी के लिये असिद्ध नहीं है साध्य, किन्तु प्रतिवादी के लिये असिद्ध है। क्योंकि वह प्रतिवादी प्रतिपाद्य है, उसे समझाया जा रहा है। जिस स्वरूपको समझा नहीं है प्रतिवादी ने उस स्वरूपको समझाया तो जायगा उसकी अपेक्षा तो है असिद्ध विशेषण और इष्ट यह विशेषण है वादीकी अपेक्षा। क्योंकि जो वादीको इष्ट होगा वही साध्य है। जो सबको इष्ट है वही साध्य नही, जब इष्ट है सबको तो अनुमानकी जरूरत क्या रहती है ? तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो इष्ट होनेपर भी प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे बाधा न जाय वही साध्य हो सकता है, क्योंकि ऐसे साध्यका ज्ञान करानेमें ही साधन का सामर्थ्य है। अब इस ही बातका समर्थन करते हुए सूत्र कहते हैं।

प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव ॥ ३-२४ ॥

वादीके लिये ही साध्यकी साध्यताका कारण—इष्ट विशेषण वादीके लिए ही क्यों है ? इस प्रश्नका उत्तर इस सूत्रमें दिया है। इष्ट कहते हैं उसे जो इच्छा के द्वारा विषय किया गया हो अर्थात् जिसे चाहा गया हो उसे इष्ट कहते हैं। अपने अभिप्रायमें आये हुए अर्थको वस्तुको प्रतिपादन करनेके लिए इच्छा वक्ताके ही तो होती है। जो प्रथम बोलने वाला है, वादी है अथवा प्रतिवादी भी हो हो, तो जो वह अपना उसमें अभिप्राय समझाना चाहता है उसको अपने अनुमानके लिये वह इष्ट हुआ तो जिसको चाहा गया है उसे इष्ट कहते हैं। वक्ता जिसे चाहे सो इष्ट है। कभी वादी ने कोई अनुमान किया तो वादीके अनुमानमें साध्य वादीको इष्ट होगा और उसके

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

विरोधमें प्रतिवादीने अनुमान किया तो प्रतिवादीके अनुमानमें साध्य प्रतिवादीको इष्ट होगा। जो भी वक्ता हो वह अपने प्रसंगमें वादी है उसे जो इष्ट है वह साध्य होता है। इष्ट शब्दका ही अर्थ यह है कि जो इच्छामें आये जिसकी चाह हो उसे इष्ट कहते हैं। तो यह सिद्ध हुआ कि इष्ट अबाधित असिद्ध ये जो साध्यके तीन विशेषण दिये गए हैं उनमें इष्ट तो वादीकी अपेक्षा है असिद्ध प्रतिवादीकी अपेक्षा और अबाधित एक सामान्य कथन है। वादीके निर्णयमें वह अबाधित हो और प्रतिवादी भी माना जाय कि हाँ अबाधित है तो वह अनुमान सही होता है। अब साध्यके हेतुके साथ जो व्याप्ति का प्रयोग किया जाता है तो प्रयोग कालकी अपेक्षासे साध्य क्या होता है उसका भेद दिखानेके लिये सूत्र कहते हैं।

साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्ठो वा धर्मी ॥३-२५॥

अनुमान प्रयोगमें साध्यविशिष्टधर्मीकी साध्यता व व्याप्तिमें केवल साध्यधर्मकी साध्यता चूंकि कहीं तो साध्य ऐसा आता है कि जिसको किसी आधारमें सिद्ध किया जा रहा है। और कोई साध्य ऐसा आता है कि जिसको किसी आधारमें सिद्ध नही किया जा रहा किन्तु उसके ही अस्तित्व नास्तित्वकी सिद्धि करना है. अथवा कोई साध्य ऐसा होता है कि पक्ष आधारसहित साध्यका प्रयोग किया जाता है। कोई साध्य ऐसा होता है कि पक्षके बिना प्रयोग कर दिया जाता है। जैसे कोई यह अनुमान बनाये कि इस पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे, तो इसमें केवल अग्नि साध्य हुआ, पर्वत तो एक आधार है और वह साध्यमें न आये, किन्तु इस तरह अनुमान कोई बनाये कि यह पर्वत अग्नि वाला है धूम वाला होनेसे, तो अग्नि वाला यह जो साध्य किया गया है वह धर्मधर्मी दोनोंको मिलाकर किया गया है। कुछ साध्य ऐसे होते कि जिसमें केवल हाँ और ना की सिद्धि की जाती है। जैसे सर्वज्ञ है, क्योंकि उसमें कोई प्रमाण बाधक नही है अथवा गधेका सींग नहीं है, क्योंकि उसमें बाधक प्रमाण है। तो यहाँ है और ना साध्य बन गया। सर्वज्ञ है इसका कोई आधार तो नही कहा जा रहा। गधेके सींग नही हैं इसमें ना सिद्ध किया है, इसका कोई आधार तो नही बताया जा रहा। यों अनेक प्रकारके साध्य हुआ करते हैं। तो यहाँ यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि साध्य वस्तुत: किस ढङ्गसे हुआ करना है उसीके उत्तरमें यह सूत्र कहा गया है। कहीं उस व्याप्तिके कालमें साध्यधर्म होता है और उस धर्मके साथ ही हेतुकी व्याप्ति सम्भव है पर प्रयोग कालमें कभी साधनरूप धर्मीसे युक्त धर्मी साध्य होता है, क्योंकि प्रयोगके समयमें जिसे साध्य कर्म बनाया जा रहा है उससे विशिष्ट होनेके कारण धर्मी सिद्ध किया जाना इष्ट हो रहा है इसलिए व्याप्तिकालमें तो धर्म ही साध्य होता है पर प्रयोग कालमें साध्ययुक्त धर्मी साध्य होता है। यहाँ इतनी बात और जानना चाहिये कि गुणप्रयोगके प्रयोयसे प्रयोगकालमें भी धर्म ही साध्य होता है व्याप्तिके सम्बन्धमें तो साध्यधर्म ही होता है। जैसे अग्नि और धूमकी व्याप्ति लगेगी

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

तो केवल धर्मके साथ लगेगी। जहाँ-जहाँ अग्नि नही है वहाँ वहां धूम नहीं है। अथवा जहाँ जहाँ धुवां है वहाँ वहां अग्नि है। इस तरह साध्यके साथ ही हेतुकी व्याप्ति चलेगी व्याप्तिके समयमें तो यह पूर्ण निश्चित बात है वहाँ साध्य विशिष्ट धर्मी साध्य न बनेगा क्योंकि यह व्याप्ति कभी न बन सकेगी। जहां धुवाँ होता है वहाँ अग्नि वाला पर्वत होता है। या जहाँ अग्नि वाला पर्वत नही है वहाँ धुवाँ भी नहीं होता ऐसा मान तो नही सकता कोई तो व्याप्तिके समयमें जहाँ कि अविनाभाव दिखाया जा रहा है उस समय तो साध्य केवल धर्म होता है। परन्तु जब कभी प्रयोगका समय है, कोई घटना बतानेका समय है वहाँ साध्यधर्म सहित धर्मी साध्य होता है, क्योंकि वहाँ सिद्ध तो यही करना है कि ये पदार्थ इस साध्यसे युक्त है। अब साध्य विशिष्ट धर्मीका दूसरा नाम भी क्या हो सकता है उसको सूत्रमें कहते हैं।

पक्ष इति यावत् ॥३-२६॥

साध्यधर्मविशिष्ट धर्मीका नाम पक्ष अथवा प्रतिज्ञा -पक्ष यह भी एक पर्याप्त नाम हो सकता है। शंकाकार पूछता है कि धर्मी पक्ष कैसे हो जायगा, क्योंकि धर्म और धर्मीके समुदायको पक्ष कहा गया है। उत्तर कहते हैं कि साध्य धर्म विशेषणसे युक्त होनेके कारण चूंकि धर्मीसे ही साध्य सिद्ध करना इष्ट हो रहा है इस कारण धर्मीको पक्ष नामसे कहनेमें किसी प्रकारका दोष नहीं है। अथवा इसको नाम है प्रतिज्ञा। पक्ष और साध्य दोनोंको मिलाकर जो प्रयोग होता है उसे प्रतिज्ञा कहते हैं। जैसे यह पर्वत अग्नि वाला है यह प्रतिज्ञा हुई। इसमें अलग अलग समझनेके लिए जब यह कहा जायगा कि इस पर्वतमें अग्नि है तो 'पर्वतमें" यह पक्ष हुआ, "अग्नि है" यह साध्य हुआ और दोनोंका जो समुदाय है, प्रयोग है वह प्रतिज्ञा हुई। यहाँ मुख्य कहनेका प्रयोजन यह है कि व्याप्तिके समयमें तो सिर्फ धर्मसाध्य होता है किन्तु प्रयोगके समयमें अनुमान करके समयमें साध्य सहित पक्ष साध्य बन जाता है। उसे पक्षरूपसे माना ही गया है।

प्रसिद्धो धर्मी ॥ ३-२७॥

धर्मीकी प्रसिद्धता - जो प्रसिद्ध हो सो धर्मी है। जब पक्ष प्रसिद्ध होता है तो वादी भी अनुमान बनाता है तो वादीके अनुमानमें जो पक्ष है वह तो प्रसिद्ध होना ही चाहिये। इसमें तो विवाद न वादीका है और न प्रतिवादीका है किन्तु साध्यसे सहित पक्ष जो इसका विवाद है प्रतिवादीको। उसे समझानेके लिए फिर प्रतिज्ञा की जाती है और हेतु देकर उसे सिद्ध किया जाता है। जैसे अनुमान बनाया कि पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे तो पर्वत पक्ष है वह तो सबको प्रसिद्ध है। वादी प्रतिवादी दोनोंको आंखोंसे दिख रहा है कि यह पर्वत है। तो धर्मी प्रसिद्ध हुआ करता है। अब उसका प्रसिद्धि कहीं तो विकल्पोंसे होती है, किसी अनुमानमें प्रत्यक्ष आदिकसे

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

होती है, किसी अनुमानमें प्रत्यक्ष और विकल्प दोनोंसे होती है। यहां बात यह बतायी गई है कि जो धर्म साध्य बनाया जा रहा वह साध्य कहीं कहीं तो प्रमाणसे प्रसिद्ध है। जैसे पर्वतमें अग्नि है तो यहां पर्वत प्रमाण प्रसिद्ध है। प्रत्यक्षसे आँखों दिख रहा है और सर्वज्ञ है, यह जब हम सिद्ध करते हैं तो सर्वज्ञ प्रत्यक्ष प्रमाणसे कहाँ सिद्ध है। उसीके बारेमें तो सिद्ध किया जा रहा है। तो यह विकल्प सिद्ध होता है। जो प्रत्यक्ष सिद्ध ही धर्मी हो जाय ऐसा एकान्त नही है। उस एकान्तका निराकरण करनेके लिये सूत्र कहते हैं।

विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये ॥ ३-२८ ॥

विकल्पसिद्ध धर्मीमें सत्ता व असत्ताकी साध्यता—जो विकल्पसिद्ध धर्मी हो उसमें या तो सत्ता साध्य है या असत्ता साध्य है। विकल्पसिद्धका अर्थ यह है कि हमारे अभिप्रायमें वह सिद्ध है और दूसरेके अभिप्रायमें हम उसे जमाना चाहते हैं, उसका कोई पक्ष प्रकट नही है। जैसे पर्वतमें अग्नि है यहां पक्ष अलगसे है, इस तरह सर्वज्ञ है ऐसा अनुमान करनेमें कोई पक्ष अलगसे नही है सो यह विकल्पसिद्ध है, इसमें सत्तासाध्य है, या कोई कहे कि सर्वज्ञ नही है अनुमान हेतु देकर तो उसके लिए असत्ता साध्य है। तो विकल्पसिद्ध भी धर्मी हुआ करता है प्रमाणसिद्ध ही नही। सो उसीके बारेमें उदाहरण बतानेके लिए सूत्र कहते हैं।

अस्ति सर्वज्ञः नास्ति खरविषाणमिति ॥ ३-२९ ॥

विकल्पसिद्ध धर्मीके साध्यका उदाहरण—जो विकल्पसे सिद्ध है—विकल्प मायने ऐसा शब्द ज्ञान जहां विवाद और सम्वाद चल रहा है अस्तित्वके बारेमें, ऐसा विकल्पसिद्ध कोई धर्मी हो उसमें या तो सत्तासाध्य मिलेगा या असत्ताधाध्य। जैसे अनुमान बना कि सर्वज्ञ है क्योंकि इसमें बाधक प्रमाण असम्भव है, उसमें बाधा देने वाला कोई प्रमाण नही आता। अब बाधा देने वाला कोई प्रमाण नही आता, यह कैसे सिद्ध हुआ? दूसरा आदमी बाधा देनेका प्रमाण उपस्थित करे और उसमें फिर यह सिद्ध करे कि इन प्रमाणोंमेंसे इसमें बाधा नही आती, बाधाके लिये दिया गया यह प्रमाण दूषित है। तो जो विकल्पसिद्ध है, जिसके बारेमें अस्तित्व और नास्तित्वका सम्वाद विसम्वाद चल रहा है, उसमें तो सत्ता ही साध्य हो सकती है अथवा असत्ता ही, अन्य बात नही। जैसे पर्वतमें अग्नि है तो यहां अग्नि वस्तुसाध्य है ऐसा विकल्प सिद्धमें नही होता अथवा अनुमान बनाया कि गधेके सींग नही हैं क्योंकि उसमें बाधक प्रमाण मौजूद है। क्या मौजूद है कि प्रत्यक्षसे ही नही दिखाई देता। तो यहां जो दो अनुमान बनाये गए हैं उनमें जो दो धर्मी हैं—सर्वज्ञ और गधेके सींग। इन दोनोंमें या तो सत्ता साध्य हो या असत्ता साध्य हो, इन विकल्पोंको छोड़कर अन्य प्रकार साध्यकी सिद्धि नही होती, क्योंकि इसमें इन्द्रिय व्यापारका अभाव है सर्वज्ञ है

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

ऐसा समझनेमें इन्द्रियां क्या व्यापार करें ? शङ्काकार कहता है कि इन्द्रियके द्वारा जाने हुए अर्थमें ही मनके विकल्प जुड़ा करते हैं। तो जिसमें हमने इन्द्रियोंके द्वारा जाना नहीं, जिसमें इन्द्रियोंका व्यापार चल सकता नहीं, उसमें विकल्प कैसे प्रवृत्त हो जायेंगे ? शङ्काकारका कहना कुछ दृष्टियोंसे यों ठीक बैठ रहा कि लोग प्रायः उनके विकल्प किया करते जिसको इन्द्रियोंसे जान सकते हैं। जैसे हम इन्द्रिय द्वारा ज्ञात कर सकते हैं, उसमें ही तो मनके विकल्प चलते हैं, मन जो कुछ सोचता है वह उस ही बातको सोचता है जो कानोंसे सुना जा सकता है, आंखोंसे देखा जा सकता है, नाकसे सूँघा जा सकता है, जो रसनासे चखा जा सकता है और स्पर्शन इन्द्रियसे छुवा जा सकता है उसमें ही तो मनके विकल्प चलते हैं। तो सर्वज्ञमें गधेके सींगमें कभी इन्द्रिय व्यापार होता ही नहीं तो उसके सम्बन्धमें मनके विकल्प कैसे चल उठेंगे ? उत्तरमें कहते हैं कि यदि ऐसी हठ करोगे कि जिन वस्तुवोंमें इन्द्रियका व्यापार चलता है उनमें ही मनके विकल्प उठ सकते हैं तो धर्म धर्मी पुण्य पाप इनमें तो इन्द्रियका व्यापार नहीं चल रहा। इसे कौन इन्द्रियसे स्पष्ट जान रहा। फिर तो इसके सम्बन्ध में मनके विकल्प न चलना चाहिये। यदि कहो कि आगमकी सामर्थ्यसे धर्म अधर्मका ज्ञान बन जाता है इसलिए इसके सम्बन्धमें मनके विकल्प चलते हैं तो उत्तर देते हैं कि यही बात प्रकृतमें भी मान लो सर्वज्ञ और गधेके सम्बन्धमें चूंकि आगमका भी सामर्थ्य है और इतना तो प्रत्यक्षमें भी लोग जानते हैं कि गधा होता है व होते हैं। अब उसमें यह सिद्ध किया जा रहा कि गधेके सींग नहीं है तो यह अन्य प्रकारसे भी ज्ञात हो रहा तो इसमें भी मनके विकल्प चले क्योंकि आगम नाम कहा ही है शब्दका शब्द गम्य हो ही रहे हैं। सर्वज्ञ भी शब्द गम्य है गधेका सींग भी। और उनकी सत्ता और असत्ताका उसमें निरुपण किया जा रहा है। तो जितने भी विकल्प सिद्ध धर्म होते हैं उनमें या तो सत्ता साध्य होता या असत्ता साध्य होता लेकिन जो विकल्प सिद्ध नहीं है उनमें क्या साध्य होता है। तो सूत्रमें कहते हैं।

प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता ॥ ३-३० ॥

प्रमाणसिद्ध उभयसिद्धमें साध्यधर्मविशिष्ट धर्मीकी साध्यता—जो धर्मी प्रमाण सिद्ध है अथवा उभयसिद्ध है। प्रमाणसे भी सिद्ध है। विकल्पसे भी सिद्ध है उसमें साध्यधर्मसे युक्त होना यह साध्य बन जाता है। जैसे पक्ष, पर्वत प्रमाणसे सिद्ध हैं तो उसमें यह पर्वत अग्नि वाला है यों साध्य विशिष्ट पक्ष पूराका पूरा साध्य बना दिया गया है अनुमानमें। ऐसा अनुमान करनेपर भी व्याप्ति बनेगी तो केवल धर्म साध्य रहेगा। जहाँ जहाँ धुवां होता वहाँ वहां अग्नि होती। पर्वत छोड़ दिया जायगा व्याप्तिके समय, व्याप्तिके साध्यमें पर्वतको भी घसीट दे तो वह व्याप्ति गलत हो जायगी जहां जहां धुवां होता है वहां आग लगा पर्वत होता है यह कोई अनुमान है क्या इस की व्याप्ति असिद्ध है ? तो जो प्रमाण सिद्ध हो अथवा प्रमाण विकल्प दोनोंसे सिद्ध हो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

तो वहीं पर साध्य धर्मसे युक्त धर्मी साध्य होता है। उभय सिद्धके मायने यह है कि प्रमाणसे भी सिद्ध हो रहा है और उसमें जो कुछ सिद्ध किया जा रहा है वह कभी प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता किन्तु विकल्पसे सिद्ध होता है। तो जहां पक्ष प्रमाण सिद्ध है। साध्य विकल्प सिद्ध है तो वह उभय सिद्ध कहलाता है अथवा अन्य देश कालमें जो पक्ष सिद्ध नहीं, वर्तमानमें ही है वह उभय सिद्ध है और जहां साध्यका प्रमाण सिद्ध बन सकेगा और पक्ष तो है ही, वह प्रमाण सिद्ध कहलाता है। इन दोनों स्थितियोंमें साध्ययुक्त धर्मी साध्य होता है।

अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा ॥ ३-३१ ॥

प्रमाणसिद्ध और उभयसिद्ध साध्यके दृष्टान्त - प्रमाणसिद्ध पक्षमें तो साध्यधर्म विशिष्ट धर्मी साध्य होता है और इसी प्रकार उभय सिद्धमें भी साध्यधर्म विशिष्ट धर्मी साध्य होता है, किन्तु विकल्पसिद्धमें सत्ता अथवा असत्ता साध्य होता है। विकल्पसिद्धके साध्यका उदाहरण बतलाते हैं। प्रमाण सिद्धका उदाहरण बतलाते हैं। प्रमाण सिद्धका उदाहरण है —जैसे यह पर्वत अग्नि वाला है धूम वाला होनेसे तो यह जो आधार है पर्वत -वह प्रत्यक्ष सिद्ध है। तो यह पक्ष प्रमाण सिद्ध हो गया, जिसका पक्ष प्रमाणसिद्ध हो उसमें साध्य विशिष्ट धर्मी होता है। क्या सिद्ध करना है यह अग्नि वाला पर्वत है यह सिद्ध करना है। तो पूरी प्रतिज्ञा ही साध्य बन जाती है। उभय सिद्धका दृष्टान्त है शब्द परिणामी है तो यहां शब्द बहुत कुछ अंशोंमें प्रमाण सिद्ध तो है ही। सुनाई देते हैं, और उसमें साध्य सिद्ध किया जा रहा है परिणमित वह आंखोंसे नहीं दिखाई देता, वह मनसे समझा जाता है। तो जिसका साध्य इन्द्रियगम्य नहीं है, पक्ष इन्द्रिय गम्य है तो वह उभयसिद्ध बन जाता है। जैसे अग्निमान यह पर्वत है तो यहां धर्मी रूपसे कहा गया पर्वत प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है ना किन्तु दूसरे दृष्टान्तमें शब्द परिणामी है। यहां पर शब्द केवल प्रत्यक्षसे ही सिद्ध नहीं, अथवा प्रत्यक्षसे ही तो उसकी सिद्धि नहीं बन पाती, किन्तु प्रमाणसे भी, युक्तिसे भी सिद्धि कर पाते हैं। तो जो पक्ष कुछ प्रत्यक्ष जैसा लगता हो उसकी सिद्धि कहलाता है। कोई बहुत दूरका शब्द है बहुत समय भूत कालका शब्द है उसमें तो प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति नहीं होती। केवल जब सुन रहे हैं उस ही कालमें शब्दकी और बहुत अंतरित दूर देशके शब्दकी पकड़ को प्रवृत्ति हो पाती है मानसिक विकल्पके द्वारा हम विदेह क्षेत्रके शब्दको भी कह सकते हैं कि वहां भी जो लोग बोल रहे हैं वे शब्द परिणामी हैं अथवा राम रावण आदिकने जो शब्द बोले थे, वे सब भी परिणामी हैं तो उन शब्दोंमें विकल्पकी गति हुई इसलिये वे उभय सिद्ध कहलाते हैं। जो पक्ष कहीं तो प्रत्यक्ष सिद्ध हो और कहीं प्रत्यक्ष सिद्ध न हो, केवल युक्ति विकल्पोंसे ही जाना जाय उसे कहते हैं उभयसिद्ध।

शब्दवत् पर्वतादि सभी पक्षोंकी असिद्धताकी शंकाकार द्वारा आशंका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

शंकाकार कह रहा कि इस तरह तो जैसे कि शब्दको सिद्ध किया है कि यह सारा प्रत्यक्षसे सिद्ध नही हो रहा तो इसी तरह पर्वत भी सारा प्रत्यक्षसे सिद्ध कहां है। अग्नित्व साध्यमें जो पक्ष बताया है देश पर्वत वे भी प्रत्यक्ष कैसे सिद्ध हैं क्योंकि उस पर्वतमें जो भाग दिख रहा है वहां तो तुम अग्नि सिद्ध कर नही रहे क्योंकि वह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है और अग्नि वहाँ अगर है तो जैसे जो पर्वतका भाग प्रत्यक्षसे दिख रहा तो अग्नि भी प्रत्यक्षसे दिखेगी और प्रत्यक्षमे देखी जाने वाली अग्निका सिद्ध करनेका अनुमान क्या बने। वह तो सिद्ध साधन हो बैठेगा। तो जो दृश्यमान भाग है उसमें अगर अग्नि सत्त्व सिद्ध कर रहे हो तो प्रत्यक्ष बाधित है। वहाँ अग्नि है ही नही। वहां यदि है अग्नि तो सिद्ध साधन दोष है। वहाँ हेतु सही नही और अनुमान प्रमाण भी ठीक नही। वह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है और जो भाग दिख ही नही रहा। पक्ष तो प्रमाणसिद्ध है ही नही, तुम साध्य क्या सिद्ध करोगे। याने पर्वतका जो भाग दिख रहा उसमें तो अनुमान व्यर्थ है। जो भाग प्रत्यक्षसे नही दिख रहा उसमें साध्यकी सिद्धि करोगे तो लो पक्ष ही प्रमाण सिद्ध नही, पक्ष ही प्रसिद्ध न रहा तो फिर अनुमान कैसे लेवेंगे ?

अवयवी द्रव्यकी अपेक्षा पक्षकी सिद्धताका समाधान उक्त शंकाका उत्तर देते हैं कि तुम्हारा यह कथन समीचीन नही है, क्योंकि अवयवी द्रव्यकी अपेक्षा से पर्वतको सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे प्रसिद्ध माना है अर्थात् पर्वतके सारे भाग हमें दिखें ऐसा मंतव्य नही है। एक अवयवी सामान्य एक पर्वत दिख गया, हिस्सा दिख गया। कुछ नही दीखा पर वह प्रसिद्ध हुआ। और ऐसा यदि अत्यन्त सूक्ष्मदृष्टिसे तुम विचार करोगे तो कोई और भी प्रत्यक्ष न कहलायेगा। तुम्हें घड़ी दिखी तो घड़ीके भीतर क्या अथवा घड़ीके पीछे क्या, यह तो न दिखा। तो यह भी प्रत्यक्ष न रहा। यदि कहो कि अवयवी द्रव्यकी अपेक्षा सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है मानो घड़ी पिण्ड अवयवी हमको दिख गई। अब यह जरूरी नही कि उसके भीतरका भी भाग दिखे। एक चीज दिख गई चाहे कितने ही हिस्सेमें दिखी हो। वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष होगा। तो मान लीजिये इसी तरह यह पर्वत भी प्रत्यक्ष है। अवयवी द्रव्यकी अपेक्षा वहाँ भी यह जरूरी न बनना चाहिये कि पर्वतके एक एक पेड़ एक एक कंकड़ दिखने चाहिये। मोटे रूपसे वह एक पूरा पर्वत है वह हमें दिख गया। उसका ही कोई भाग दीखा तो पर्वत ही कहलाया दिखानेमें, अन्यथा अर्थात् ऐसी सूक्ष्म दृष्टि देखनेकी बात करोगे तो फिर कुछ प्रत्यक्ष न होगा, क्योंकि हम लोगोंका प्रत्यक्ष बाहरमें भीतरमें सब प्रकारसे पदार्थका साक्षात्कार करनेमें समर्थ नही है, किन्तु ऐसा समर्थ तो सर्वज्ञ प्रत्यक्ष है। इससे अवयवी द्रव्य प्रत्यक्षसे विदित हो गया सामान्य और से तो वह सामान्य प्रत्यक्ष सिद्ध कहा जायगा, इसी प्रकार प्रमाणसिद्धमें और विकल्प सिद्धमें साध्य धर्म विशिष्ट धर्मी होता है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव ॥ ३–३२ ॥

व्याप्तिमें साध्यधर्मकी ही साध्यता – जैसे कि प्रयोग कालमें साध्य साध्य धर्म विशिष्ट धर्मी होता है यों व्याप्ति कालमें भी साध्य विशिष्ट धर्मी क्यों नही साध्य, हो जाता ? अर्थात् जैसे व्याप्तिके समयमें ऐसी व्याप्ति बनाते हैं कि जहाँ जहाँ अग्नि नही होती वहां वहा धूम नहीं होता और जहां जहां धूम होता वहां वहां अग्नि होती यों व्याप्ति एक खालिस धर्म धर्मीकी लगाते । वहाँ प्रयोग कालकी तरह साध्य विशिष्ट धर्मीके साथ क्यों नही व्याप्ति लगाते । इस जिज्ञासाके समाधानमें यह सूत्र कहा गया है कि व्याप्तिमें साध्य धर्म ही होता है । धर्मवाला साध्य नही होता, क्योंकि प्रयोग कालकी तरह यदि हम व्याप्तिमें साध्यधर्म विशिष्ट धर्मीका साध्य करने लगे तो उसमें बड़ी आपत्ति आती है । घटित ही न होगा । जैसे व्याप्ति बना दी —जहां जहां अग्नि वाला पर्वत नही होता वहां धुवां भी नही होता । तो यह व्याप्ति घट जायगी क्या सब जगह ? साध्य विशिष्ट धर्मीके साथ साधनकी व्याप्ति नही बन सकती । कैसे नही बन सकती । उसके उत्तरमें कहते हैं ।

अन्यथा तदघटनात् ॥ ३–३३ ॥

व्याप्तिमें साध्यधर्मविशिष्ट धर्मीके साध्य बनानेपर व्याप्तिका अघटन साध्य विशिष्ट धर्मीके साथ साधनकी व्याप्ति यदि बना लोगे साधनसे साध्य विशिष्ट धर्मी को सिद्ध किया जाने लगेगा तो इसमें बड़ी आपत्ति है । घटित ही नही होता है, फिर कही कुछ जान ही न सकेंगे । साध्य विशिष्ट धर्मीके साथ हेतुका अन्वय सिद्ध नहीं है । जहां जहां धुवां होता है वहां वहां अग्नि वाला पर्वत होता है यह बात सही हो गयी क्या ? धुवां तो रसोईघरमें है, वहां पर्वत धरा है क्या ? अथवा जैसे उभय सिद्धका अनुमान देते कि शब्द अनित्य है कृतक होनेसे तो क्या उस कृतकपने साधनकी व्याप्ति अनित्य शब्दके साथ लग जायगी कि हां जहां कृतक पना है वहां वहां अनित्य शब्द है यह व्याप्ति तो नही लगती । कृतकपना तो घट पट आदिकमें भी है पर वहां अनित्य शब्द तो नही सिद्ध किया जा सकता ।

पक्ष प्रयोगकी अनावश्यकता और अनुचितताकी शंका--अब यह क्षणिकवादी शंकाकार शंका कर रहा है कि प्रसिद्धो धर्मी इस प्रकारसे पक्षका लक्षण करना युक्त नही है, अर्थात् जो प्रसिद्ध हो वह धर्मी होता है, साध्य धर्मका आधारभूत प्रसिद्ध ही हुआ करता है ऐसा पक्षका लक्षण करना सही नही है क्योंकि सर्वज्ञ है आदिक अनुमान प्रयोगमें पक्षका प्रयोग ही असम्भव है । क्योंकि वह तो अर्थागत है । स्वयं सिद्ध है । अर्थसे ही बोलनेके साथ ही सिद्ध होनेको कहनेमें पुनरुक्त दोष होता है और फिर पक्षका प्रयोग करनेपर भी हेतु आदिकके कहे बिना साध्य तो सिद्ध नही होता तो हेतु वचनसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है इसलिए पक्षका प्रयोग करना व्यर्थ

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

है। इस शंकाकारका अभिप्राय यह है कि किसी भी अनुमानमें पक्षका प्रयोग भी कर दिया जाय पर वहाँ पर हेतु न कहा जाय तो साध्य सिद्ध हो जायगा क्या ? तो अनुमानमें सार्थकता तो हेतुकी है और कहीं पक्ष नहीं मिल रहा, वहां हेतुके बोलनेसे साध्य सिद्ध हो जाता है। पक्षके बिना भी साध्य सिद्ध होता है, पर हेतुके बिना साध्य सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे यही सर्वज्ञ है बाधक प्रमाण न होनेसे तो यहाँ पक्ष क्या बताया ? कुछ भी पक्ष नहीं। विकल्प सिद्ध मान रहे ना तुम। जहाँ पक्ष न हो प्रमाण सिद्ध न हो वहाँ साध्य सत्ता या असत्ता होता है तो यहां पक्षके बिना भी काम चल गया पर कोई भी अनुमान ऐसा है कि हेतुके बिना बन सके ऐसा कोई अनुमान हो ही नहीं सकता। इसलिये साध्यकी सिद्धि केवल हेतुसे होती है। तब पक्षका प्रयोग करना व्यर्थ है, ऐसी आशंका पर उत्तर देते हैं।

साध्यधर्माधारसंदेहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ॥ ३-३४ ॥

पक्षप्रयोगकी आवश्यकताका वर्णन – साध्यरूप धर्मके आधारका संदेह मिटानेके लिये गम्यमान भी पक्षका कथन किया जाता है। जैसे साध्य धर्म है अस्तित्व आदिक, उसका आधार जहाँ पर पाया जाय उसे कहते हैं साध्यधर्म। तो जैसे विकल्प सिद्ध अनुमानमें कहा गया कि सर्वज्ञ है तो वहाँ पर भी है की सिद्धिकी जा रही है तो वह अस्तित्व कहां सिद्ध किया जा रहा। सर्वज्ञमें सिद्ध किया जा रहा या सुख आदिकमें सिद्ध किया जा रहा। तो पक्ष तो वहां भी मिल गया। सर्वज्ञ है बाधक प्रमाण न होनेसे तो यहां यह स्पष्टरूपसे पक्ष विदित नहीं हो रहा, यों नहीं हो रहा कि सर्वज्ञ कोई यहां प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं है लेकिन सिद्ध किया जा रहा है सर्वज्ञमें। तो इस तरहसे सर्वज्ञ पक्ष बन गया और अस्तित्व साध्य बन गया। सर्वज्ञ है ऐसा कहनेमें सर्वज्ञ कहनेकी खास जरूरत रही कि नहीं रही ? ऐसा अनुमान तो न बना दोगे कि है बाधक प्रमाण होनेसे। क्या है उसका आधार तो कुछ कहा ही नहीं। तो जैसे सामान्य अनुमानोंमें भी साध्य धर्मका आधार पाया जाता है उस आधारका संदेह दूर करनेके लिये पक्ष कहा जाता है। तो ऐसे ही सर्वज्ञ धर्मके आधारका सन्देह दूर करनेके लिए पक्ष कहा जाता है। कोई कहे—अरे अग्नि है धुवां होनेसे तो इसमें क्या समझा वह ? किसमें अग्नि है इसकी तो जिज्ञासा रहेगी ना। और जब तक उस साध्यके आधारका परिज्ञान न होगा तब तक हेतुका हाँ हाँ हूँ हूँ है। तो जैसे सर्वज्ञ है इस अनुमानमें अस्तित्वके आधारभूत सर्वज्ञ सिद्ध कहना आवश्यक हो गया है। इसी प्रकार सर्वत्र अनुमानोंमें साध्य धर्मका आधार बनाना आवश्यक होता है। इसी बातको उदाहरण देकर खुलासा करते हैं।

साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत् ॥ ३-३५ ॥

पक्षप्रयोगकी आवश्यकताका समर्थन एवं पक्षप्रयोगके अनौचित्यके दो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

विकल्पोंमेंसे प्रथम विकल्पका निराकरण - जैसे साधनधर्मीमें साधनधर्म समझाने के लिये पक्ष धर्मका उपसंहार किया जाता है अर्थात् उपनयका प्रयोग होता है उसी प्रकार साध्यधर्मके आधारका संदेह दूर करनेके लिए आधार बतानेके लिये पक्षका भी कथन किया जाता है। अन्यथा यह बतलाओ कि पक्षका प्रयोग क्यों न करना चाहिये, जिस आधारमें साध्यको सिद्ध करना है उस आधारका प्रयोग क्यों न करना चाहिये, क्या इसलिये न करना चाहिये कि पक्षका प्रयोग साध्यकी सिद्धिमें बाधा डालता है अथवा इसलिए न करना चाहिये कि उसका कोई प्रयोजन नहीं है। न दो विकल्पों का खुलासा यह है कि जैसे कहते कि पर्वतमें अग्नि है धुवां होने से तो शङ्काकार यह कह रहा है कि पर्वतमें इतना शब्द न बोलना चाहिये। तो पूछ रहे कि क्यों न बोलना चाहिये ? क्या 'पर्वतमें" ऐसा कहनेसे अग्निको सिद्ध करनेमें बाधा आ जाती है। अर्थात् 'पर्वतमें' अगर कह दें तो अग्नि सिद्ध न होगी क्या, ऐसी नौबत आती है अथवा 'पर्वतमें" क्या इतना शब्द कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है इसलिये यह पक्ष न कहना चाहिये तो इन दो विकल्पोंमेंसे पहिला विकल्प तो अयुक्त है अर्थात् पक्षका प्रयोग करनेसे साध्यकी सिद्धिमें बाधा आती है या वह साध्यको सिद्ध करने ही न देगा, यह बात तो अयुक्त है क्योंकि वादीके द्वारा जो अपना पक्ष प्रस्तुत किया गया है उस पक्षमें साध्य सिद्ध करना जो प्रयुक्त किया गया है जिसका कि साध्यके साथ अविनाभावरूप नियम पाना जाना ऐसा हेतु मिल रहा है तो वह तो बाधक न होगा। प्रतिज्ञाका प्रयोग बाधक नहीं होता बल्कि पक्ष प्रयोगसे साध्यको अच्छी तरह समझने में मदद मिलती है। जैसे सर्वज्ञ है ऐसा जो पक्ष सिद्ध कर रहे हो उसमें तो और स्पष्टता आती है कि हम क्या सिद्ध कर रहे हैं ? पक्षके बोलनेसे तो घटना स्पष्ट समझमें आती है। 'पर्वतमें' यह बोल देनेसे बात प्रकरणकी ठीक समझमें आ गयी कि यहां क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? पक्षके प्रयोग बिना तो साधयकी सिद्धि व्याप्तिसे ही सिद्ध हो रही थी फिर अनुमान क्या बने ? पक्षके प्रयोग बिना प्रतिज्ञाके कहे बिना अनुमानका रूप ही नहीं बन सकता। वह तो व्याप्तिका विषय है, तर्कज्ञानका विषय है कि पक्ष बोले बिना साध्यका साध्यसाधनसे सम्बन्ध बनाना इससे यह कहना अयुक्त है कि पक्षका प्रयोग करनेसे साध्यकी सिद्धिमें रुकावट हो जाती है।

पक्षप्रयोगके अनौचित्यके द्वितीय विकल्पका खण्डन दूसरा पक्ष भी अयुक्त है अर्थात् यह कहना कि पक्षका प्रयोग यों न करना चाहिये कि उसका प्रयोग करनेका कोई प्रयोजन ही नहीं है। यह विकल्प क्यों अयुक्त है ? यों कि पक्षका प्रयोग करनेपर प्रतिपाद्य शिष्यको जो बात समझायी जा रही है वह ज्ञान विशेष अच्छी तरह समझमें आता है, यह प्रयोजन मौजूद है और फिर पीछे आग जल रही है और धुवां दिख रहा है कुछ आगे सो वहां अनुमान करें कि देखो यहां कहीं आग जल रही है क्योंकि धुवां उठ रहा है। अब 'यहीं कहीं" यह तो हुआ पक्ष और उसका प्रयोग करते हैं, अन्यथा इसका फल क्या होगा कि फिर तो उस अग्निसे बच कर भी न

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

निकल सकेगा वह आग बढ़कर आयगी और खुदको जला देगी। तो पक्षको कहनेका प्रयोजन रहता ही है, उसमें ज्ञान विशेष होता है और किसमें साध्य सिद्ध किया जा रहा है ? वह तो मूल प्रयोजन है ही सो प्रयोजन होनेसे पक्षका प्रयोग करना चाहिये। पक्षका अगर प्रयोग न करें तो जो कोई मंद बुद्धि वाले लोग हैं उनको प्रासंगिक अर्थ का ज्ञान हो ही न सकेगा। साध्यधर्मका आधार न बोला जाय जैसे "पर्वतमें" इतने शब्द न बोले जायें, अग्नि है धुवां होनेसे, इससे कोई क्या समझे और उसका प्रयोजन क्या निकले ? हाँ जो पुरुष पक्षके प्रयोग बिना भी प्रकृत अर्थको समझ सकते हैं उनके प्रति पक्षका प्रयोग न करें तो यह बन सकता है क्योंकि प्रयोग करनेकी जो परिपाटी है कुछ बोलनेकी जो परम्परा है वह प्रतिपाद्य पुरुषके अनुरोधसे होती है। जैसे प्रतिपाद्य पुरुष हो, जिसको समझाया जा रहा है वह जिस योग्यताका हो उसके अनुसार वचनोंका प्रयोग हुआ करता है।

गम्यमान होनेपर भी पक्षप्रयोगकी आवश्यकता सो प्रयोजन होनेसे पक्षका प्रयोग उचित ही है। यद्यपि पक्षगम्यमान है, प्रमाण सिद्ध है, प्रत्यक्ष सिद्ध है, प्रसिद्ध है तो भी उसका प्रयोग करना युक्त है अन्यथा यदि गम्यमान भी पक्षका प्रयोग न किया जाय तो शास्त्र आदिकमें भी प्रतिज्ञाका प्रयोग कैसे बनेगा ? शास्त्रमें, नियत कथामें गोष्ठी में "प्रतिज्ञा" नहीं कही जाती यह बात तो नहीं है क्योंकि यहां अग्नि है धुवां होनेसे, यह वृक्ष है सीसम होनेसे आदिक अनेक जगहोंमें पक्षका प्रयोग किया ही जाता है। यदि कहो कि दूसरेको करुणामें लगे हुए शास्त्रकार होते हैं तो उन्हें समझना है शिष्योंको, सो शिष्योंके समझानेके आधीन उनकी बुद्धि हुई है याने जिस प्रकार कुछ शिष्य समझ सकें उस प्रकारकी बुद्धि शास्त्रकारोंको बनानी पड़ती है इसलिये शास्त्रके आदिमें प्रतिज्ञाका प्रयोग करना सही है उपयोगी है। तो कहते हैं कि यही बात बादमें है अनुमानमें है कि वहां भी जो दूसरेको समझाया जा रहा है। वह जिस प्रकार समझ ले उस ही प्रकार तो बोलना पड़ेगा। तो समझनेके लिये साध्यके आधारका बोलना आवश्यक है, इस कारण गम्यमान पक्षका भी कथन करना जरूरी है, क्योंकि उससे ही साध्यधर्मके आधारका संदेह दूर होता है और शिष्य समझ जाता है कि इस अनुमानमें यह बात कही गई है।

को वा त्रिधा हेतुमूक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति ॥ ३६ ॥

पक्षधर्मत्ववादी हेतुप्रकार मानने वालोंके मतमें पक्षप्रयोगकी अनिवार्य सिद्धि—प्रकरण यह चल रहा है कि क्षणिकवादी यह कह रहे हैं कि अनुमानके प्रयोगमें पक्षके कहनेकी कुछ जरूरत नहीं है। जैसे अनुमान बना करता है कि पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे तो 'पर्वतमें" इतने शब्द पक्ष कहलाता है। शंकाकारका कहना है कि पक्षको कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। केवल हेतुसे साध्यकी सिद्धि हुआ करती

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

है। उसके प्रति कहा जा रहा है कि ये क्षणिकवादी हेतुको तीन प्रकारके मानते हैं, अथवा त्रैरूप्य कहते हैं पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व विपक्षव्यावृत्ति। हेतुको तीन रूपोंसे मान लिया जिसमें पक्षधर्मत्वका अर्थ यह है कि पक्षमें साधनका होना। सपक्षसत्त्वका अर्थ है सपक्षमें साध्य साधनका होना, विपक्षव्यावृत्तिका अर्थ है कि जो पक्ष नहीं उनमें साध्य साधनका न होना तो हेतुके इस त्रैरूप्यमें पक्षकी बात मानी जा रही है पर प्रकट रूपमें पक्षको नहीं स्वीकार करते। अथवा उन्होंने हेतुको भी तीन प्रकारका माना है। कार्य, स्वभाव और अनुपलब्धि। कोई हेतु कार्यरूप है तो किसका कार्य है, किसमें कार्य है यह समझे बिना तो कार्यका स्वरूप नहीं जाना जाता। तो इसीको ही पक्षका स्वरूप मान लिया, स्वभावरूप हेतु माना। स्वभाव किसका, स्वभाव किसमें है केवल माने बिना स्वभाव तो नहीं बनता तो पक्ष मान ही लिया। जहाँ अनुपलब्धि हेतु माना है न पाया जाय, कहां न पाया जाय यह तो समझना ही पड़ेगा तो यों पक्ष माना जा रहा है पर एक नियममें पक्षका अङ्गीकरण नहीं करते। इन क्षणिकवादियों ने कहा है कि दोष तीन प्रकारके होते हैं हेतुमें—असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक। जो हेतु सिद्ध नहीं है पक्षमें पाया ही न जाय उसे कहते हैं असिद्ध। जो हेतु साध्यसे विरुद्ध बनता हो उसे कहते हैं विरुद्ध और जो हेतुपक्षमें भी जाय सपक्षमें भी जाय विपक्षमें भी जाय उस हेतुका क्या महत्त्व है? वही अनैकान्तिक दोष है। तो इन तीन प्रकारके दोषोंके वर्णनमें भी पक्ष मान लिया। दोषके परिहार द्वारा जो भी समर्थन करेंगे उसमें पक्ष मान लिया, पर यहां नियममें उसे अङ्ग नहीं मान रहे। तो जैसे पक्ष का प्रयोग किये बिना पक्षका समर्थन करते जा रहे हैं, ये क्षणिकवादी तो हेतुको माने बिना हेतुका समर्थन करते जावें हेतुको भी अंग क्यों मानते हो? यदि कहो कि समर्थन नहीं हो सकता माने बिना और समर्थन हुए बिना साध्यकी सिद्धि नहीं हो सकती तो यही बात यहां है, यहां भी पक्षका समर्थन करना और पक्षको कहना आवश्यक है, शङ्काकार कहता है कि हेतुको यदि न कहोगे तो समर्थन किसका। उत्तर देते हैं कि पक्षको भी न कहोगे तो हेतु कहाँ रहेगा, यह भी तो स्पष्ट नहीं होता। यदि कहो कि जो प्रत्यक्षसिद्ध है, प्रतिज्ञाका विषय है उसमें रह जायगा हेतु तों यों प्रत्यक्षसिद्ध हेतु आदिकका भी समर्थन बन जाय तो इस कारण जैसे कि गम्यमान भी हेतुका कथन करना पड़ता है। प्रत्यक्षसे जाने हुयेको भी साधनका कथन करना पड़ता है। मंद बुद्धियोंके समझानेके लिये इस ही प्रकार प्रतिज्ञाका भी वचन मंद बुद्धियोंके समझाने के लिए करना चाहिये। इससे जो साध्यका ज्ञान चाहते हैं उन्हें जैसे हेतुका बोलना आवश्यक जंच रहा है इसी प्रकार पक्षका बोलना भी आवश्यक समझना चाहिये। यहाँ तक ही अनुमानके खास अंग है। क्या? प्रतिज्ञा और हेतु। पूर्वमें तो आ गया वह पक्ष जहाँ साध्य सम्मिलित है और इस ही विषयको कभी पक्ष नामसे भी कह दिया जाता है। तो दो ही अनुमानके अंग है, उसको सूत्र रूपमें कहते हैं।

एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम् ॥ ३७ ॥

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

शंकाकार द्वारा उदाहरणको अनुमानका तृतीय अङ्ग माननेका कथन

प्रतिज्ञा और हेतु अथवा कहो पक्ष और हेतु ये दो ही अनुमानके अंग हैं। उदाहरण अनुमानका अवयव नहीं है। अवयव वह कहलाता है कि जिसके बिना अवयवी ही न रहे। वैसे उदाहरण आदिक कुछ कुछ उसमें मदद देते हैं मंद बुद्धियोंको समझानेके लिये लेकिन यह खोज करें कि यह न रहें तो क्या अनुमान बन नहीं सकता ? तो जिसके रहनेसे अनुमान बन ही न सके, अंग तो वही कहलावेगा ? अन्य तो फालतू मदद हैं। इसपर शंकाकार कहता है कि वाह अनुमानके अवयव तो ५ हैं –पक्ष, हेतु, दृष्टान्त, उपनय और निगमन। दृष्टान्त आदिक भी तो अनुमानके अंग हो सकते हैं। फिर यह कहना कि केवल प्रतिज्ञा और हेतु अर्थात् पक्ष और हेतु यही अनुमानके अंग है यह ठीक नहीं हैं। देखिये –प्रतिज्ञा है एक आगम। आगमके मायने एक विधेय शब्द रचना। क्या कहना है उसका नाम है प्रतिज्ञा। पर्वत अग्नि वाला है यह सिद्ध करना है तो इस वचनका नाम है प्रतिज्ञा। तो प्रतिज्ञा कहलाया आगम। आगमके मायने यहाँ यह न समझना कि कोई भगवत् प्रणीत शास्त्र कहा जा रहा हो, किन्तु जो शब्द रचना है जिस शब्दको सुनकर अवबोध होता है उसका ही नाम आगम है तो प्रतिज्ञा आगम है और हेतु अनुमान है, क्योंकि प्रतिज्ञा किए हुए अर्थका हेतुसे ही अनुमान किया जाता है। तो यों कारणमें कार्यका उपचार करके कहा गया है कि वह हेतु ही अनुमान है। यहाँ यह बतला रहे हैं कि अनुमानके जो ५ अवयव कह रहे हैं वे सब प्रमाणरूप हैं अप्रमाण नहीं है। तभी कह रहे ना कि पक्ष तो आगम है और हेतु अनुमान है और उदाहरण प्रत्यक्ष है। क्योंकि जो भी उदाहरण दिया जायगा वह वादी और प्रतिवादी दोनोंसे सम्मत होता है। तब उदाहरण काम देगा। पक्षमें साध्य तो वादीको ही इष्ट है मगर उदाहरण जो उसका दिया जायगा उसे वादी भी मानता है और प्रतिवादी भी। तब उदाहरण है। तो वादी प्रतिवादीकी बुद्धिमें जो समान रूपसे रहे उदाहरण वही हो सकता है। इससे सिद्ध हुआ कि उदाहरण प्रत्यक्ष है उपनय उपमान है। उपमान प्रमाण उसे कहते हैं कि जिसमें दूसरेसे सदृशता दी जाय। इसका मुख चन्द्रमाके समान है। यह गाय रोझके सदृश है, यह सब उपमान कहलाता है तो उपनयमें क्या किया गया कि दृष्टान्त विशिष्टधर्मी और साध्य विशिष्ट धर्मी इन दोनोंमें सदृशता बतायी गई है। जैसे पर्वत अग्नि वाला है धूम होते हैं, जैसे रसोईघर। तो अग्नि वाले पर्वतकी उपमा दी गई है रसोईघरसे। रसोईघर भी अग्नि वाला है तो यह पर्वत भी अग्नि वाला है। ऐसी उपमा देनेसे उपनय उपमान कहलाता है। उपनयमें क्या किया जाता है और यह भी धूम वाला है यह उपनय है। तो ऐसा कहनेमें दोनोंकी समानता आ गई। तो यह उपमान प्रमाण हुआ और निगमन तो इन सब अवयवोंका एक विषयरूप फल बताता है उसका नाम निगमन है। जैसे इस कारण पर्वत अग्नि वाला है निगमनकी बात समाप्त हो जाती है तो इन सब प्रमाणोंके द्वारा जो निर्णय किया गया है वह तो ठीक ही होता है, प्रमाणभूत है, इस

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

तरह अनुमानके जो ५ अवयव हैं वे साक्षात् प्रमाणभूत हैं। ऐसे प्रामाणिक अवयवोंका तुम कैसे निराकरण करते हो ?

उदाहरणको अनुमानका अंग माननेका निराकरण—शंकाकारने अनुमानके अवयवक ५ अवयव बतानेके लिये कैसी युक्ति दी है कि वे अवयव स्वयं प्रमाण भूत हैं। प्रमाणभूतको मना कौन कर सकता है ? प्रतिज्ञा है आगम। हेतु है अनुमान उदाहरण है प्रत्यक्ष, उपनय है उपमान और निगमन है सबका फल। तो ये ५ अवयव सही हैं। तुम उदाहरणको अनुमानका अंग बताना चाहते यह बात अयुक्त है ऐसी आशंका होनेपर उत्तर दिया जा रहा है कि उदाहरण अनुमानका अंग नही हैं। इस को अगले सूत्रमे कहेंगे, पर प्रकृतमें यह कहा जा रहा है कि उदाहरण अनुमानका खास अवयव नहीं है। कुछ भी अनुमान करें, उदाहरण बिना भी तो समझ आती है। अरे यहाँ आग है, धुवाँ उठ रहा है इतनेसे ही समझ गया सबको, अब उसमें दृष्टान्त देना यह तो मंद बुद्धि वालोंके लिये है। यह अनुमानका अंग न बनेगा। यदि उदाहरणको अनुमानका अंग हो कह रहे हो तो यह तो बतलावो कि उदाहरण किस लिये दिया जाता है, उदाहरण किस काममें आता है ? ऐसा कौन सा काम है कि जिसका उदाहरणके बिना स्पष्टीकरण न हो। क्या इसलिये उदाहरण कहा जाता है कि साक्षात् साध्यका ज्ञान हो जाय ? उदाहरण देनेसे साक्षात् साध्यका ज्ञान हो जाय यह मंतव्य है ? अथवा क्या उदाहरणका यह प्रयोजन है हेतुके साध्यके साथ अविनाभाव रख रहा है अर्थात् साध्यके बिना यह हेतु नहीं हो सकता। यह निर्णय करानेके लिये उदाहरण दिया जाता है क्या ? अथवा व्याप्तिका स्मरण करानेके लिये उदाहरण दिया जाता है ये तीन विकल्प किये गए कि उदाहरणकी आवश्यकता क्यों है और उदाहरणसे काम क्या निकलना है। अब इन तीन विकल्पोंका निराकरण सूत्रकार स्वयं क्रमशः सूत्रोंमें कह रहे हैं।

न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापारात् ।। ३-३८ ।।

उदाहरणमें साध्यकी प्रतिपत्तिके अंगपनेका अभाव—पहिला विकल्प था कि उदाहरण साध्यकी प्रतिपत्तिके लिये दिया जाता है। तो कहते हैं कि उदाहरण साध्यकी प्रतिपत्तिका अंग नही है। उदाहरण न दिया जाय तो साध्यका ज्ञान न हो ऐसा नही है। जैसे वहाँ अग्नि है धुवाँ होनेसे। अब इसके बाद यदि उदाहरण न दिया जाय तो कोई अटक नहीं है। समझ जायगा सब इसलिये उदाहरण अनुमानका अङ्ग नहीं बन सकता। वहाँ तो लोगोंने अविनाभाव वाले हेतुके कहनेसे ही सब समझ लिया अग्निके बिना धुवां नही होता और धुवां यहाँ दिख रहा है तो अपने आप सब समझा गया कि अग्नि होनी चाहिये। तो अविनाभाव नियमरूप जो हेतु है, जो साध्यके बिना नही हो सकता, अग्निके बिना नही हो सकता तो उस धूमके कहने

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

मात्रसे ही वहां अग्निका परिज्ञान लोगोंने कर लिया तो साध्यकी प्रतिपत्तिका अंग तो हेतु है जिस चीजको हम सिद्ध कर रहे हैं उसके सिद्ध करनेका कारण तो मूल हेतु है। हेतुसे ही उसकी सिद्धि हो जायगी, वहां उदाहरणकी जरूरत नही है।

तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः ॥ ३९ ॥

अविनाभावके निश्चयके लिए उदाहरण प्रयोगकी निरर्थकता अब जो दूसरा विकल्प किया गया था कि उदाहरण किस लिये दिया जा रहा। क्या साध्य के साथ हेतुका अविनाभाव निश्चित होनेके लिये उदाहरण दिया जा रहा है? तो यों भी नही है। साध्यके साथ अविनाभाव बतानेके लिये भी उदाहरण नही दिया जा रहा, क्योंकि उसका अविनाभाव तो विपक्षमें बाधक प्रमाणसे ही सिद्ध हो जाता है। अर्थात् धुवां और अग्निका विपक्ष है तालाब। तालाबमें न अग्नि है न धुवां है। साध्य जहां न हो उसे विपक्ष कहते हैं। तो वहां विपक्षमें बाधक प्रमाण है। प्रत्यक्ष सिद्ध है, धुवां नही है, तो विपक्षमें बाधक प्रमाण आया, उससे साध्यके साथ हेतुका अविनाभाव निर्धारित हो जाता है। वहां उदाहरण कहनेकी कोई जरूरत नहीं। इससे स्पष्ट है कि अविनाभावके निश्चयमें उदाहरण अनुमानका अंग नहीं है। कोई कहते कि व्याप्ति तो सपक्षमें सत्त्व बतानेसे सिद्ध होती है, यहां क्या कहा जा रहा था कि विपक्षमें बाधक होनेसे, उदाहरण विपक्षमें साध्य साधन न पाये जानेसे अनुमानकी सिद्धि हो जाती है। यहां शंकाकार कह रहा है कि नहीं, सपक्षमें सत्त्व दिखानेसे व्याप्ति सिद्ध होती है। जैसे जहाँ जहां धुवां होता है वहां वहां अग्नि होती है। जैसे रसोईघर। तो रसोईघर हुआ सपक्ष और उसमें धूम आदिकका बताया गया सत्त्व तो व्याप्ति बने ना? उत्तर देते हैं कि यह व्याप्ति कही गलत भी हो सकती है। सपक्ष सत्त्वसे हेतुका अविनाभाव मान लेना यह कहीं गलत भी हो सकता है। जैसे— एक अनुमान बनाया। देवदत्तका वह लड़का काला है क्योंकि देवदत्तका लड़का होनेसे। अन्य पुत्रोंकी तरह। मानलो देवदत्तके ५ लड़के थे जिनमेंसे चार तो थे काले और एक था गोरा। अब कोई यह अनुमान बनाये कि जो गोरा था उसके प्रति कि वह तो काला है क्योंकि देवदत्तका पुत्र होनेसे, जैसे बाकीके चार पुत्र। तो अब देखो सपक्ष सत्त्व पाया गया या नहीं? देवदत्तका वे पुत्र भी है हेतु मिल गया और काले भी है साध्य मिल गया मगर यह अनुमान क्या सही है? यह सही नहीं है क्योंकि वह तो गौर है सो हेतु हेत्वाभास बन गया। तो सपक्षसत्त्व दिखने मात्रसे व्याप्ति नही बनती किन्तु विपक्षमें हेतु साध्य न रहे उससे व्याप्ति बनती है शंकाकार कहता है कि सामस्त्यरूपसे साध्यकी निवृत्ति होनेपर साधनकी निवृत्ति यहां असम्भव है, क्योंकि दूसरा जो गौर देवदत्तका पुत्र है उसमें देवदत्तकी पुत्रता तो मौजूद है पर साध्य निवृत्तिसे साधन निवृत्ति नही बन रही इसलिये व्याप्ति न होगी। तो उत्तर देते कि यही तो हम कह रहे हैं। सर्वरूपसे जहां साध्य न रहे वहां साधन भी न रहे ऐसा

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

जहां निश्चय हो वही तो अविनाभाव है। उसीका नाम विपक्षमें बाधा आना है। तो विपक्षमें बाधक हेतु होनेसे अविनाभावका भी निश्चय होता है। उदाहरण देनेसे इस अविनाभावका निश्चय नही होता, इस कारण जो दूसरा विकल्प था याने उदाहरण इसलिये दिये जाता है कि उससे हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव निश्चित हो जाय, सो बात युक्त नही है। और भी देखिये।

व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिः तत्रापि तद्विप्रतिपत्ता-वनस्थानं स्यात् दृष्टान्तरापेक्षणात् ॥४०॥

उदाहरणसे अविनाभावके अनिश्चयका विवरण और उदाहरणकी अङ्गतामें दोष—शङ्काकारका यह कहना है कि अनुमान प्रमाणमें उदाहरण देना जरूरी है। उदाहरण दिये बिना हेतुमें साध्यके साथ अविनाभाव नही जाना जाता लेकिन यहा बात और ही मिल रही है। उदाहरण होता है व्यक्तिरूप विशेषरूप और व्यक्ति होती है सासान्यसे। कोई ऐसी व्याप्ति तो न ठर सकेगा कि जहाँ जहाँ धुवां होता है वहां वहां अग्नि वाला पर्वत होता है। यह व्याप्ति घटित ही नही होगी क्योंकि वह विशिष्ट ले लिया। इसी तरह उदाहरण भी जो दिया जायगा वह भी विशिष्ट होगा तो व्यक्तिरूप होता है उदाहरण उससे भी व्यक्ति नही जमती कि जहां जहां धुवां हो वहाँ वहां आग वाला रसोईघर होता है। तो व्यक्तिरूप होता है उदाहरण और सामान्यसे की जाती है व्याप्ति। दूसरी बात यह है कि उस उदाहरणमें भी यदि विवाद हो व्याप्तिका तो उसके लिए दूसरा व्यक्ति बनेगी, उसके लिए फिर उदाहरण दिया जायगा, यों विवाद होगा। तो यों उदाहरणकी परम्परा लग जायगी, अनवस्था दोष हो जायगा। दृष्टान्त हुआ करता है वह जो वादीको भी मान्य हो और प्रतिवादीको भी। साध्य वह होता है जो केवल वादीको मान्य हो प्रतिवादीको नही तभी तो प्रतिवादीको समझानेके लिए अनुमान बनाया जाता है, पर दृष्टान्त वह दिया जाता है जो वादीको भी मान्य है और प्रतिवादी भी मान ले। जैसे अग्निका साध्य सिद्ध करनेमें रसोईघर आदि दृष्टान्त दिये जाते हैं। कहा कि जहां धुवां होता है वहां आग होती है, जैसे रसोईघर! तो दूसरेने भी मान लिया कि हां बात ठीक है और कहने वाले मान ही रहे थे। तो उदाहरण होता है सर्वसम्मत वह होता है व्यक्तिरूप। तो वह व्यक्तिरूप उदाहरण साध्य और हेतुके अविनाभावके निश्चयके लिए कैसे बन सकता है? क्या यह अविनाभाव बन जाता है। जहां धुवां होता है वहां आग वाला रसोईघर है प्रतिनियत व्यक्तिमें किसी खास जगहमें व्याप्तिका निश्चय नही किया जा सकता व्याप्ति जब बनती है तो खालिस धर्म धर्मके साथ बनती है। जो किया हुआ होता है वह अनित्य होता है, जो अनित्य नही होता है वह किया हुआ नही होता। यह तो सामान्यसे व्याप्ति बन जायगी पर जहां शब्दमें अनित्य सिद्ध कर रहे हैं कि शब्द अनित्य है, विनाशीक है, क्योंकि किया हुआ होनेसे तो वहां यह व्याप्ति लगा देगा कोई कि जो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

किया हुआ होता है वह अनित्य शब्द होता है या इसके दृष्टान्तमें घट पट आदिक दिया तो क्या यह व्याप्ति लगा दी जायगी कि जो किया हुआ होता है वह अनित्य घट पट होता है। खास व्यक्तिमें व्याप्ति नही चलती। व्याप्ति चलती है सामान्यरूपसे। जिसका देश नियत न हो, जिसका काल नियत न किया जाय, जिसका आकार नियत न किया जाय, ऐसे सामान्य से अगर मेल बैठा लेंगे तो व्याप्ति बनेगी अन्यथा नही। विशेषके साथ व्याप्ति नही होती, सामान्यके साथ व्याप्ति होती है। यदि सामान्यसे व्याप्ति न हो जाय तो अन्य विशिष्टके साथ लगाई गई व्याप्ति अन्य विशिष्टमें कैसे साध्यको सिद्ध कर दे। व्याप्ति तो यह लगा बैठे कि जहां धुवां होता है वहां आगवाला रसोईघर होता है और सिद्ध करें हम पर्वतमें तो कैसे सिद्ध कर देंगे ? यदि वहां भी दृष्टान्तमें भी उस व्याप्तिमें विवाद हो जाय तो फिर अन्य दृष्टान्त देने पड़ेंगे। तो यों अनवस्था दोष होता है। इससे यह मान लेना चाहिये कि हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव निश्चित करनेके लिए भी उदाहरण अंग नही बन सकता। उसका निश्चय तो तर्क प्रमाण द्वारा होता है। इसलिये द्वितीय विकल्प भी ठीक नही है।

तापि व्याप्ति स्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः ॥ ४१ ॥

व्याप्तिस्मरणके लिये भी उदाहरणकी अनुमानांगताका अभाव—तीसरा विकल्प था कि व्याप्तिके स्मरणके लिये उदाहरण अंग बनता है, सो भी बात नही, क्योंकि जिस हेतुका साध्यके साथ अविनाभाव बना ऐसे हेतुके कहने मात्रसे ही व्याप्ति का स्मरण हो जाता है। व्याप्तिके स्मरणके लिये दृष्टान्तोंका देना युक्त नही है वह तो हेतुसे तुरन्त सिद्ध हो जाता है। समझाये जाने वाले हेतुके प्रयोगसे ही जान जाते है हैं कि यह साध्यके साथ अविनाभाव रखने वाला हेतु है। जो वाद विवादके स्थल होते हैं उनमें विद्वानोंका ही तो अधिकार है। वे जरा जरा सी बातोंको सिद्ध करनेके लिये दृष्टान्त देते रहे तो यह तो उनके समयका दुरुपयोग हैं और बुद्धिमानीका सूचक नही है और खास कर अनुमान जैसा प्रमाण उपस्थित करनेमें उदाहरण दें तो उनकी वह विद्वता भी नही है। यह कहीं शिष्यको समझानेका प्रसंग नही है। वह तो वाद विवादका प्रसंग है तो बादमें उदाहरण अंग नहीं बन सकती है। इसी प्रकार तीसरा जो विकल्प किया गया था कि व्याप्तिके स्मरणके लिये उदाहरण दिया जाता है। वह भी ठीक नहीं है। तो उदाहरण प्रयोजन रहित हो गया। उदाहरणका कोई प्रयोजन नही रहा। तब अनुमानके अंग केवल दो ही सिद्ध हुये—प्रतिज्ञा और हेतु।

तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति ॥ ४२ ॥

केवल अभिधीयमान उदाहरणसे साध्यधर्मीमें साध्यसाधनका सन्देह

प्रकरण यह चल रहा था कि शंकाकारका मंतव्य है कि पक्षका प्रयोग करना व्यर्थ है। पक्ष कोई अनुमान अंग नही है। उसके उत्तरमें तो अभी प्रकरण निकल चुका है।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

उसके सिलसिलेमें शंकाकार अब यह कह रहा है कि उदाहरण भी अनुमानका एक खास और अत्यन्त आवश्यक अंग है इसलिये अनुमानके प्रयोगमें उदाहरणको अवश्य कहना चाहिये। इसके उत्त में काफी विवेचना चली। और यह सिद्ध किया कि उदाहरण अनुमानका अंग नही है। न तो उदाहरण साध्यके ज्ञानका प्रमुख अंग है और न उदाहरण हेतुके साध्यके साथ अविनाभाव निश्चय करनेके लिये अंगभूत है, और न व्याप्तिके स्मरणके लिये उदाहरणको कहा जाता है, इसलिये उदाहरण अनुमानका अंग नही हो सकता। अब इस सूत्रमें यह कह रहे हैं कि उदाहरण अनुमान का अंग तो है नही, बल्कि केवल उदाहरण ही कहा जाय तो साध्य विशिष्ट धर्मीमें साध्य और साधनका संदेह और हो जाता है। जैसे कुछ अनुमान बोलकर झट उदाहरण दे दें तो उदाहरणके सुननेसे अभी साध्य और साधनके बारेमें खुलासा नही हो पाया यों बात वरण बन जाता है। आखिर इसके निष्कर्षमें बात क्या आती है और कहाँ साध्य साधनको सिद्ध करना है, कोई पूछे कि यह संदेह कैसे हो सकता है तो उसके उत्तरमें सूत्र कहते हैं।

कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ॥ ४३ ॥

केवल उदाहरणसे साध्य साधनमें संदेह होनेका युक्तिपूर्वक समर्थन—केवल कहा गया उदाहरण साध्य विशिष्ट धर्मीमें साध्य साधनको संदिग्ध कर देता है यदि ऐसे संदेहका अवसर न आता होता तो फिर उपनय और निगमनके कहनेकी आवश्यकता ही क्या थी ? अनुमानको समझानेके लिये पूरा रूप यह बनाया गया है जैसे कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे। जहाँ जहाँ धूम होता है वहां वहां अग्नि होती है, जैसे रसोईघर। जहां अग्नि नही होती वहां धूम नही होता है। जैसे तालाब और, इस पर्वतमें धूम है इस कारण पर्वतमें अग्नि होनी ही चाहिये। इस प्रयोगमें जो इतना अंश है कि और, इस पर्वतमें धूम है, यह तो उपनयका अंश है इस कारण पर्वतमें अग्नि होनी ही चाहिये यह निगमनका अंश है। तो उदाहरण प्रयोगके बाद यदि समस्या पूर्ण सुलझ गई होती समाधान पूरा हो चुका होता तो उपनय और निगमन कहनेकी क्या जरूरत थी ? उपनय और निगमनका प्रयोग यह सिद्ध करता है कि अभी साध्यकी सिद्धिमें कुछ कमजोरी है। उस कमजोरीको टालनेके लिए उपनय और निगमनका प्रयोग किया गया है। इससे यह सिद्ध है कि दृष्टान्त अनुमानका अंग नहीं हो सकता है। अब शंकाकार कहता है कि दृष्टान्त अनुमानका अंग नहीं होता तो न सही पर उपनय और निगमन तो अनुमानके अंग होंगे ही, क्योंकि आखिर फैसला तो देना ही पड़ेगा। इसके उत्तरमें कहते हैं —

न च ते तदंगे साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवाऽसंशयात् ॥ ४४ ॥

उपनय और निगमनमें भी अनुमानाङ्गका अभाव उपनय और निग-

अब अनुमानके अंग नहीं हैं, क्योंकि साध्यविशिष्टधर्मीमें हेतु और साध्य दोनोंके कहने मात्रसे हेतु और साध्यके ज्ञानमें संशय नहीं रहता है अर्थात् उपनयका प्रयोजन क्या था ? यह सिद्ध कर देना कि इस पर्वतमें भी धूम है अर्थात् इस पर्वतमें साधन है सो पक्षमें साधन है, यह तो पक्षमें साधन बताने ही सिद्ध हो जाता है और निगमनका प्रयोजन यह है कि पक्षमें साध्यको बता दे। जैसे यह कहा गया कि इस पर्वतमें भी अग्नि है तो पक्षमें साध्यको सिद्ध करनेका प्रयोजन है निगमनका सो जब पक्षमें साध्य को कथन कर दिया शुरूमें ही तो उससे ही साध्यकी सिद्धि होजाती है। जो बुद्धिमान लोग हैं वे प्रतिज्ञा और हेतु इन दोनोंके कहने मात्रसे ही अनुमानमें साध्यकी सिद्धि समझ लेते हैं पर्वत अग्नि वाला है धुवाँ होनेसे इतना कहने मात्रसे पूर्णज्ञान होजाता है। अंग वही कहलाता है जिसके प्रयोग बिना किसी भी अंगीकी सिद्धि न हो। तो ऐसे केवल दो ही अंग हैं प्रतिज्ञा और हेतु, जिनके कहे बिना अनुमान नहीं बनता। जैसे सिर्फ इतना ही कोई कहदे – धूम होनेसे, तो क्या कुछ अनुमान बना ? या कोई इतना भी कह दे कि पर्वत अग्नि वाला है तो क्या यह कोई अनुमानकी सकल है ? अनुमानके प्रयोगमें प्रतिज्ञा और हेतु इन दोका बोलना आवश्यक है। अतः ये दो ही अंग अनुमानके कहे जा सकते हैं। उदाहरण, उपनय, निगमन ये तीन अनुमानके अंग नहीं हैं। तो इस प्रकार दो अंग सिद्ध हुए –प्रतिज्ञा और हेतु। इतना सिद्ध होनेपर भी यदि यह हठ करते हो कि दृष्टान्त आदिक तो अनुमानके अवयव हैं ही। अथवा दृष्टान्त उपनय और निगमन इन तीनका प्रयोग ही तो हेतुरूप है, सो उसके उत्तरमें कहते हैं।

समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तदुपयोगात्। ३–४५।

अनुमानके अवयव बनानेके आग्रहमें एक समर्थन इतना सब कुछ निखार होनेपर भी यदि दृष्टान्त उपनय इन तीनको अनुमानके अवयव बनानेका ही आग्रह है तब तो फिर सीधी बात है कि एक समर्थन ही मान लो। वही रूप हुआ, अनुमानका अवयव हुआ क्योंकि साध्यके सिद्ध करनेमें समर्थनका उपयोग हो रहा है। अर्थात् हेतु साध्यको सिद्ध करे ऐसे प्रयत्नके लिये दृष्टान्त उदाहरण उपनय सब कुछ बोल बोलकर क्या किया गया है ? एक समर्थनमें भी जिस जिस आशयका आश्रय किया गया है वे वे सब तुम्हारे हेतुरूप बन रहे हैं। उपनय क्या चीज है ? पक्षमें हेतु का दुहराना निगमन क्या चीज है ? पक्षमें साध्यको दुहराना। और, हेतुके प्रयोगमें भी क्या किया जाता ? पक्षमें हेतुका दुहराना। निगमन क्या चीज है ? पक्षमें साध्य को दुहराना। और, हेतुके प्रयोगमें भी क्या किया जाता ? पक्षमें हेतुका बतलाना। तो यह सारा हेतुरूप ही हुआ। अनुमानमें और क्या किया जाता ? पक्षमें साध्यका बतलाना। यही अनुमानका अवयव कह लीजिये। समर्थनमें हेतुकी असिद्ध विरुद्ध अनैकान्तिक दोषका निराकरण करके अपने साध्यके साथ अविनाभावका कथन किया

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

जाता है। तो फिर साध्यके प्रति हेतु साधक बन जाय इस कार्यमें समर्थनका ही उपयोग है अन्य किसीका नही है। यों समर्थन ही समर्थन रह गया और सब बातें समाप्त हो जायेंगी। इससे यही सीधा स्पष्ट मान लेना चाहिये कि अनुमानके अंग प्रतिज्ञा और हेतु हैं। जो कुछ भी कहा जाता है इसके बाद वह सब शिष्योंको, बालकोंको समझानेके लिये भी उसका विवरण मात्र है। अब शंकाकार कहता है कि जो लोग बुद्धिमान हैं, जिनकी प्रज्ञा पूर्ण निष्पन्न है ऐसे पुरुषोंको जो दृष्टान्त उपनय, निगमन कहना अनर्थक रहा आया क्योंकि यदि विद्वान पुरुषने साध्य विशिष्ट धर्ममें हेतु और साध्य बता दिया इतने ही मात्रसे उनको संशय नही रहता और वे साध्यको सिद्ध कर लेते हैं, उन्हें अर्थका परिज्ञान हो जाता है। लेकिन जिनकी बुद्धि निष्पन्न नही है, अव्युत्पन्न पुरुष है बालक है उनको समझानेके लिये तो दृष्टान्त उपनय और निगमन कहना ही पड़ेगा। उनके प्रति तो अनर्थक नही है ना, दृष्टान्त उपनय निगमनका बोलना इसके सूत्रमें कहते हैं।

बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्रएवासौ न वादेऽनुपयोगात् । ३–४६ ।

बच्चे और अव्युत्पन्नके लिए दृष्टान्त—उपनय और निगमन इन तीनको मान लेनेपर यों कहा जा सकता है कि ये शास्त्रोंमें ही उपयोगी हैं। अर्थात् शिष्योंको समझानेके लिये जो शास्त्र लिखे जाते हैं उनमें दृष्टान्त, उपनय निगमनका प्रयोग किया जा सकता है तथा कक्षाओंके विद्यार्थियोंको समझानेके लिये जो व्याख्यान चलता है, पढ़ाई चलती है उस मौकेपर भी दृष्टान्त उपनय और निगमन इनका प्रयोग उपयोगी हो सकता है, परन्तु वाद विवादके प्रसंगमें शास्त्रार्थके समय इन तीनका प्रयोग नहीं है। इसका कारण यह है कि वाद विवादके समय कोई शिष्य गुरूका नाता नही रहता कि कोई पढ़ा रहा है और दूसरे शिष्य समझ रहे हैं, क्योंकि जिनकी प्रज्ञा निष्पन्न है उनका ही वादमें अधिकार है शास्त्रार्थ करनेमें अधिकार है। जो बड़े विद्वान हैं, अनेक शास्त्रोंके पारगामी है, युक्तियोंके प्रेमी हैं तो ऐसे विद्वानोंके साथ वाद विवाद होनेके प्रकरणमें दृष्टान्त, उपनय, निगमन अनर्थक हैं क्योंकि उन विद्वानोंको तो प्रतिज्ञा और हेतु याने पक्षमें हेतु और साध्यका बता देना इतना ही मात्र पर्याप्त होता है। शास्त्रमें जो उदाहरण आदिक दिये जाते हैं उसमें उस समय जो प्रतिपाद्य सामने है, शिष्य सामने है, उन्हें जिस प्रकारसे समझाया जाना चाहिये उसके प्रयोगसे ही तो समझाया जायगा। शास्त्रकालमें अथवा अध्यापन कालमें शिष्योंको एक कोमल रीति से समझाया जायगा, विवरण बताया जायगा। किन्तु वादविवादके समय उन विद्वानोंको एक संक्षिप्त वाक्योंको बोलकर ही बताया जायगा। और उसमें ही विद्वताकी छाप रहती है। जो कुछ भी व्याख्यान किया जाता है, जिसके लिये किया जा रहा है उसके अनुरोधसे उसके अनुरूप किया जाता है ऐसा सभी लोग मानते हैं। तब इस प्रकार अब अन्तमें यह भी सिद्ध कर दिया गया कि यद्यपि अनुमानके अंग दो ही हैं —

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रतिज्ञा और तु किन्तु शिष्योंको समझानेके लिये अनुमान प्रयोगके अवसरपर उदाहरण उपनय और निगमनका भी प्रयोग किया जा सकता है। अब शिष्योंको समझाने के लिये दृष्टान्त उपनय और निगमनका जो प्रयोग करना बता दिया है उनका स्वरूप कहा जायगा। उनमें सबसे प्रथम दृष्टान्तका स्वरूप और दृष्टान्तके भेद बतलाते हैं।

दृष्टान्तो द्वेधाऽन्वयव्यतिरेकभेदात् ॥ ४७ ॥

दृष्टान्तके अर्थ और दृष्टान्तके प्रकार—दृष्टान्त दो प्रकारका है—अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्त, इस सूत्रमें दृष्टान्तका स्वरूप स्पष्ट नहीं बताया गया किन्तु भेद के कहनेसे ही दृष्टान्तका स्वरूप कुछ कुछ विदित हो ही जाता है। दृष्टान्त दो तरहके होते हैं—एक अन्वय दृष्टान्त और दूसरा व्यतिरेक दृष्टान्त। तो इससे यह सिद्ध हो गया कि अन्वय व्याप्ति करके जो दृष्टान्त बताया जाय वह अन्वय दृष्टान्त है। व्यतिरेक व्याप्ति करके जो दृष्टान्त बताया जाय वह व्यतिरेक दृष्टान्त है। दृष्टान्त शब्दका शब्दार्थ क्या है? इसमें दो शब्द हैं दृष्ट और अन्त। अन्त मायने हैं धर्म, जैसे अनेकान्त। अनेक हैं अन्त मायने धर्म, जिनके। अंत शब्दका अर्थ धर्म होता है और इस प्रकरणमें धर्म हैं दो, साध्य और साधन। तो दिखाया गया है साध्य साधन रूप धर्म जहाँपर उसे कहते हैं दृष्टान्त। दृष्टः अन्तः यत्र स दृष्टान्तः। अब उसकी व्याख्या यह समझ लीजिये कि विधि और निषेधरूपसे वादी और प्रतिवादियोंके द्वारा निर्विवाद रूपसे जाना गया साध्य साधन धर्म जहाँ मिले उसे दृष्टान्त कहते हैं। इस दृष्टान्त को विशेषतया समझनेके लिये आगे दो सूत्रों में स्वरूप बतायेंगे उससे यह स्पष्ट हो जायगा।

साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः ॥ ४८ ॥

अन्वय दृष्टान्तका स्वरूप साध्यसे व्याप्त साधन जहाँ दिखाया जाता है वह अन्वय दृष्टान्त है। जैसे अग्नि—साध्यसे व्याप्त धूम जहां बताया गया है जैसे रसोईघर आदिक, वह अन्वय दृष्टान्त है। जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है। जैसे रसोईघर। तो यह अन्वय व्याप्तिपूर्वक दृष्टान्त दिया गया है इस अन्वय व्याप्तिके कहनेके दो रूप होते हैं—एक तो यों कहना कि जहां जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है दूसरे इस प्रकारसे कहना कि अग्निके होनेपर ही धुवाँ होता है। ये दोनों अन्वय व्याप्ति बतानेके ढंग हैं। अन्वय व्याप्ति पूर्वक जो दृष्टान्त कहा जाता है उसे अन्वय दृष्टान्त कहते हैं। साध्य साधनका अन्वय बता दिया अर्थात् साधन साध्य के पीछे पीछे चलता है—जो पीछे चले अनुरूप कहे उसे कहते हैं अन्वय। जब श्लोक का अन्वय करो—यह कहा जाता है तो उस अन्वयका अर्थ यह है कि जो अर्थके अनुकूल चले और जिस प्रकार शब्दोंको रखकर बोलना इसका नाम अन्वय है। यह है अनुमानका प्रकरण सो अन्वयका अर्थ यह होगा कि साध्यके अनुरूप साधन चले अर्थात्

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

साध्यके होनेपर ही साधनका रहना बने उसे कहते हैं अन्वय व्याप्ति ऐसी व्याप्ति दिखा कर जो दृष्टान्त दिया जाता है उसे अन्वय दृष्टान्त कहते हैं।

साध्यभावे साधनव्यतिरेको यत्र कथ्यते स व्यतिरेक दृष्टान्तः ॥ ३-४९ ॥

व्यतिरेकदृष्टान्तका स्वरूप—साध्यके अभावमें साधनका अभाव जहां बताया जाता है उसे व्यतिरेक दृष्टान्त कहते हैं। व्यतिरेक व्याप्तिमें अभाव होनेपर अभाव बताया जाता है। साध्यके अभाव होनेपर साधनका अभाव होना यह व्यतिरेक व्याप्ति है। व्यतिरेक व्याप्ति एक मजबूत व्याप्ति है। साध्य के बिना साधन नहीं हो सकता है। फिर साधन मिले वह तो नियमसे साध्यको सिद्ध करेगा। उदाहरणमें जैसे कहा गया कि जहां जहाँ अग्नि नहीं होती है वहां वहां धुवाँ भी नहीं होता जैसे तालाब। अग्नि है साध्य, धुवाँ है साधन। साध्यके अभावमें साधनका अभाव दिखाया गया है इस तालाब दृष्टान्तमें। यह व्यतिरेक दृष्टान्त हो गया। यों ये दृष्टान्त बच्चों को समझानेके लिए उपयोगी होते हैं। सो यह दृष्टान्त दो रूपोंमें बताया जाता है—अन्वय दृष्टान्तके रूपमें और व्यतिरेक दृष्टान्तके रूपमें। इस प्रकार दृष्टान्तका वर्णन करके उपनयका वर्णन करेंगे।

हेतोरूपसंहार उपनयः ॥ ३-५० ।

उपनयका स्वरूप—साध्यके अविनाभावी रूपसे सहित साध्य विशिष्ट धर्मी में जिसके द्वारा हेतु दिखाया जाय उसे उपनय कहते हैं। तो पक्षमें हेतुके पुनः देखने को उपनय कहते हैं। हेतुको पक्षमें अनुमान प्रयोगमें दिखाया ही गया था और वह अनुमानका अंग ही है। दो अंग बताये गए थे प्रतिज्ञा और हेतु। प्रतिज्ञामें आता है पक्ष और साध्य, तो हेतु पक्षमें दिखाया हो गया था। अब उसे और विवरण कर के पक्षकी व्युत्पत्तिके लिये शास्त्र निबद्धके रूपमें समझानेके लिये जो और कुछ विवरण किया गया है। जैसे प्रतिज्ञा और हेतुके कहनेके बाद व्याप्ति कह कर दृष्टान्त देते हैं जिसका कि वर्णन अभी अभी हो चुका है। उसके बाद फिर हेतुको पक्षमें दुहराना इसे कहते हैं उपनय। जैसे कि पहिले भी संकेत किया गया था कि दृष्टान्त अनुमानका अंग नहीं है क्योंकि दृष्टान्तके कहनेपर तो कभी कभी संदेह हो जाता है और उस संदिग्ध अवस्थाको दूर करनेके लिये उपनय और निगमनका प्रयोग किया जाता है तो इसी दृष्टिसे यह उपनय कुछ अज्ञानमें आयी हुई कमजोरीको दूर करनेके लिये कहा जाता है। इसलिये पहिली बातका ही दुहराना इसमें आया करता है।

प्रतिज्ञायास्तुनिगमनम् ॥ ५१ ॥

निगमनका स्वरूप—प्रतिज्ञाके दुहरानेको निगमन कहते हैं। जैसे उपनय

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

की व्युत्पत्ति है—उपनियते इति उपनय:। जो पक्षके समीप पक्षमें ले जाया जाय। अर्थात् पक्षमें हेतुके ले जाये जानेको उपनय कहते हैं। तो निगमनका अर्थ है कि जिस ज्ञानके द्वारा, जिस प्रयोगके द्वारा प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण और उपनयमें साध्यको सिद्ध करनेके एक मात्र प्रयोजनसे निगमित किया जाय, सम्बंधित किया जाय उसे निगमन कहते हैं। निगम्यते इति निगमनं अर्थात् प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण और उपनय इन सबका प्रयोग कर चुकनेके बाद निष्कर्षरूपमें जो बताया जाता है उनका सम्बन्ध कराया जाता है, प्रतिज्ञा दुहराई जाती है उसे निगमन कहते हैं। "इस कारण पर्वत में अग्नि अवश्य है" तो इसमें सब कुछ सम्बन्धित कर दिया गया है पक्षमें साध्य। लेकिन इसकी झाँकीमें सब चीजें दुहरानेको आ जायेंगी। इस प्रयोगके बाद जैसे कि पर्वतमें अग्नि है धुवां होनेसे, जहाँ जहां धुवां है वहां वहां अग्नि है जैसे रसोईघर। जहां अग्नि नहीं वहां धुवां नहीं। जैसे तालाब। और, इस पर्वतमें धुवां है इस कारण अग्नि है। तो निगमनका रूप छोटा सा है, कहा कि 'इस कारण यहां अग्नि है। लेकिन इसका सम्बन्ध सबसे हो गया। जितना जो कुछ भी प्रयोग किया गया था, उसकी सफलता बता रहा है यह, इससे इसका नाम निगमन पड़ा।

तदनुमानं द्वेधा ॥ ३-५२ ॥

अनुमानके प्रकार—मुख्य तो यह प्रकरण अनुमानका है और अनुमानको बतानेके लिये उसके अंगोंका विवरण भी चला है, तो अंगोंका विवरण करनेके बाद अब अनुमानके प्रकार बताये जा रहे हैं। किसीने अनुमान दो तरहके माने थे किन्हीं अन्य रूपोंमें, किसीने तीन तरहके माने थे, किसीने ५ तरहके माने थे, ऐसे भिन्न भिन्न प्रकारसे माने जानेपर कुछ अव्याप्ति और अतिव्याप्ति आते थे इसलिये उसके सही प्रकार बतानेके लिये यह सूत्र कहा गया है। वह अनुमान दो प्रकारका है। वह कहनेसे कुछ सूत्रकी याद आती है जो इस प्रकरणमें सर्वप्रथम कहा गया था कि साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम्। साधनसे साध्यका ज्ञान होना अनुमान है, जिस अनुमानको युक्तियोंसे, अंगोंसे, प्रकारोंसे सिद्ध किया गया है, वह अनुमान दो प्रकारका है। वह किस तरह दो प्रकारका है सो बतावेंगे।

स्वार्थपरार्थभेदात् ॥ ३-५३ ॥

अनुमानके प्रकारोंके नाम—उस अनुमानके दो प्रकार ये हैं—एक तो स्वार्थानुमान और दूसरा परार्थानुमान। इन शब्दोंसे भी इसके भेद व्यक्त हो जाते हैं—स्व अर्थ अनुमान। जो ज्ञान अनुमान प्रमाण वाला ज्ञान स्वके लिये होता है वह स्वार्थानुमान कहलाता है। अनुमानसे जो जाना है स्वयंके लिए प्रतिबोधके लिए जाना है। इसमें परका सम्पर्क नहीं और इसी कारण इस जानकारीमें कोई वचन प्रयोग भी नहीं देखा और समझ गये। साधन देखा और साध्य जान गये। इस शैलीसे ज्ञान होनेको

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

नाम है स्वार्थानुमान । परार्थानुमानका अर्थ है -इसमें तीन शब्द हैं--पर अर्थ अनुमान । जो अनुमानज्ञान दूसरेके लिए होता है उसको परार्थानुमान कहते हैं । अब शब्दसे यद्यपि इसका अर्थ ध्वनित हो गया, फिर भी सूत्ररूपमें इसका लक्षण कहते हैं ।

स्वार्थमुक्तलक्षणम् ॥ ३-५४ ॥

स्वार्थानुमानका लक्षण -जो स्वार्थानुमान है वह तो उक्त लक्षण वाला है, जो सर्वप्रथम अनुमानका लक्षण किया गया था । साधनसे साध्यका विज्ञान होना सो अनुमान है । साधन देखा और साध्यका ज्ञान हो गया । धुवाँ देखा और अग्निका ज्ञान हो गया । अग्नि दिख नही रही थी फिर भी धुवाँके दिखनेसे ज्ञान हो गया कि यहाँ अग्नि है । ऐसा बोले बिना, दूसरेको बताये बिना अपने आप साधनको निरखकर जो साध्यका ज्ञान होता है वह स्वार्थानुमान कहलाता है यह अनुमान स्मृति प्रत्यभिज्ञान आदककी तरह व्यर्थ ही है । देखो साधन और साध्यका परिज्ञान हो गया, ऐसा स्वार्थानुमान प्रायः मनुष्योंके बहुत बहुत बार हुआ करता है । कुछ तो विशेष अभ्यास होनेके कारण उसे अनुमानकी श्रेणीमें नही डालते, पर है वह अनुमानका ही रूप । जैसे रसोईघरसे दूर धुवाँ और अग्नि सहित दिखती रहे, उसी जगह धुवां नजर आये तो देखकर तुरन्त अग्निका ज्ञान होता पर इतने अभ्यास वाला वह अनुमान प्रमाण है कि उसमें अनुमान जैसी बात नही समझते और समझते हैं स्पष्ट । जैसे मान लो अग्नि प्रत्यक्ष हो गयी हो तो अनेक स्वार्थानुमान इस तरहके हैं कि जो होते रहते हैं पर प्रत्यक्षके कारण हम उसे अनुमान जैसी बोलकर सकल नही देते ऐसा स्वार्थानुमान हुआ करता है । अब परार्थानुमान किसे कहते हैं ? उसे एक सूत्र द्वारा बतलाते हैं ।

परार्थं तु तदर्थपरामर्शिवचनाज्जातम् ॥ ५५ ॥

परार्थानुमानका लक्षण -जो स्वार्थानुमानके साध्य साधनको प्रकट करने वाले वचनोंसे ज्ञात होता है वह परार्थानुमान कहा जाता है । स्वार्थानुमानसे पहिले जाना फिर स्वार्थानुमानसे समझा । उस साध्यको जब हम दूसरेको समझानेके लिये बोलते हैं तो वह परार्थानुमान कहलाता है । तो परार्थानुमान स्वार्थानुमानके बाद होता है । कोई भी पुरुष जो भी दूसरेको समझायेगा तो वह पहिले समझ जायगा । इस अनुमानको भी सब कोई यदि पहिले समझ लेंगे तब कहेंगे । उसे कहते हैं परार्थानुमान । जो दूसरेके प्रतिबोधके लिये वचनोंके द्वारा समझाया गया है परार्थानुमान वह ज्ञान है जैसा कि स्वार्थानुमानका ज्ञान था । प्रमाण ज्ञान ही हुआ करता है । वचन कहीं परार्थानुमान नही हैं । उन वचनोंसे जो ज्ञान होता है वह परार्थानुमान है । लेकिन कुछ कुछ प्रसिद्धि यह भी है कि परार्थानुमान तो वचनात्मक होता है और स्वार्थानुमान ज्ञानात्मक होता है । तो वचनात्मक जो साध्यका विज्ञान है या वचनोंसे उत्पन्न हुआ तो साध्यका विज्ञान होता है उसे परार्थानुमान कहते हैं, ऐसा वर्णन करने

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

में वचनात्मक परार्थानुमान तो आया नहीं, ऐसी शंका की जा सकती है। उसके उत्तर में एक सूत्र कहते हैं।

तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात् ॥ ५६ ॥

अनुमानकी भी उपचारसे अनुमानरूपता—यद्यपि परार्थानुमान भी ज्ञान रूप ही है। किसीने वचनोंसे समझाया, युक्ति देकर कोई साध्यकी सिद्धि की तो उस अनवस्थामें, उस घटनामें जो दूसरेने समझा वह है अनुमान ज्ञान परार्थानुमान, लेकिन उसके कारणभूत जो वचन हैं, वचनोंको सुनकर दूसरेने समझा तो वे वचन भी अनुमान कहलाते हैं, क्योंकि अनुमान ज्ञानमें वह हेतु पड़ता है। तो मुख्य तो ज्ञानरूप अनुमान है, लेकिन ज्ञानरूप अनुमानमें कारण पड़ते हैं वे वचन इस कारण उपचारसे उन वचनोंको भी परार्थानुमान कहा जाता है उसमें उपचारका निमित्तपना क्यों डाला, क्यों वे उपचारमें कारण बने, इसका कारण यह है कि एक तो है समझाने वाला दूसरा है समझने वाला तो समझने वाला और समझाने वाला इन दोनोंमें जो सम्बन्ध जुटा है वह तो वचनोंसे जुटा है, इसलिये उस अनुमान रूप कार्यमें कारणपना होनेसे उपचार कहा गया है। तो समझाने वालेका जो ज्ञान है वह अनुमान तो बना उस वचनका कारण यानें उस अनुमानका कार्य है वचन और समझने वाले शिष्यका जो ज्ञान बना उस ज्ञानरूप अनुमानका कारण हुआ वह वचन, इस कारणसे वचनमें भी अनुमानपनेका उपचार किया गया कि वह वचन एक अनुमानका तो कार्य है और एक अनुमानका कारण है। जिसके स्वार्थानुमान किया था उस स्वार्थ ज्ञान वालेका तो वचन कार्य हुआ क्योंकि जानो ना और उसके अनुरूप वचन निकले तो यह वचन जो प्रतिपादक और प्रतिपाद्यके बीचमें एक सम्बन्ध जोड़ रहा है वह प्रतिपादकके स्वार्थानुमानका तो कार्य है वचन और जो समझाया जा रहा है उसके अनुमान ज्ञानका कारण है वचन। तो जो वचन एक अनुमानका कार्य है, दूसरे अनुमानका कारण है, उसमें यदि अनुमानपनेका उपचार किया जाय तो यह कुछ अव्यवहारी नहीं है। हां मुख्यरूपसे देखा जाय तो ज्ञान ही प्रमाण है। चाहे स्वार्थानुमान है वह तो वचनोंसे रहित था ही और चाहे परार्थानुमान है वह भी एक ज्ञानरूपसे प्रमाण है, क्योंकि दूसरेकी अपेक्षा न रखकर पदार्थका प्रकाश किया है। अब जिस तरह अनुमानको २ प्रकारका बताया इसी प्रकार हेतु भी दो प्रकारका होता है यह दिखानेके लिये सूत्र कहते हैं।

स हेतुर्द्वेधा उपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् ॥ ५७ ॥

हेतुके दो प्रकार—वह हेतु दो प्रकारका है जिस हेतुसे साध्यकी सिद्धि को जाती है। जो साध्यको अविनाभाव रूपसे जानता है जिसका कि लक्षण पहिले विवरणके साथ बता दिया गया है वह हेतु दो प्रकारसे पाया जाता है। एक अनुपलब्धि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

हेतु दूसरा अनुपलब्धि हेतु कुछ अनुमानोंमें हेतुका प्रयोग निषेधरूपसे होता है और कुछ में प्रसंग सम्बन्धित, उसी बारेमें चर्चा चल रही है, हेतुका काम साध्य सिद्ध करना है साध्य सिद्ध करनेके लिए जो हेतुके प्रकार बताये गए हैं उनसे कोई यह समझले कि जो विधिरूप हेतु होता है वह विधिरूप साध्यको ही सिद्ध करता है और जो निषेधरूप हेतु होता है वह निषेधरूप साध्यको सिद्ध करता है, सो बात ठीक नही है। ऐसा कोई समझ न ले उसके प्रतिषेधके लिए सूत्र कहते हैं।

उपलब्धिविधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च ॥ ३-५८ ॥

दोनों हेतुओंकी विधि और प्रतिषेध सिद्ध करनेमें क्षमता - चूँकि साध्य और साधनमें गम्य गमक भाव होता है और वह अविनाभावसे सम्बन्ध रखता है, अर्थात् साधनसे साध्यका ज्ञान होता है। और उस साध्यके साथ उसका अविनाभाव होता है। तो किसी हेतुका जो कि विधिरूपसे उपस्थित किया है, हो सकता है कि किसीका निषेध करने रूप साध्य सिद्ध करदे और अस्तित्वको सिद्ध करे, यह तो सभी लोग एक दम समझ जाते हैं। और जो अनुपलब्धिरूप हेतु है, निषेधरूप ऐसा न होनेसे इस प्रकारका जो हेतु है वह साध्यकी विधिको सिद्ध करे और प्रतिबोधरूप साध्यको भी सिद्ध करे। दोनों तरह सम्भव है। जैसे पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे अर्थात् इसमें हेतु भी विधिरूप है और साध्य भी विधिरूप है। और ऐसा कहे कोई कि अब इस शरीरमें प्राण नही है क्योंकि पूर्ण स्थिर होनेसे निष्कम्प होनेसे तो यहां साध्य निषेधरूप आ गया। कहीं हेतु तो हो निषेधरूप और साध्य हो जाय विधिरूप यह भी सम्भव है। जैसे यहाँ तलघरमें ठंढा होगा, यहाँ लू न आनेसे, तो हेतु तो दिया गया निषेधरूप और सिद्ध किया गया विधिरूप ये सब बातें बड़े विवरण सहित दृष्टान्त पूर्वक आगे कही जायेंगी। इस सूत्रमें यह बताया गया कि जैसे उपलब्धिरूप हेतु विधिरूप साध्यके अविनाभावको रखता है और इसी कारण वह साधन साध्यका सिद्ध होता है इसी तरह उपाधिरूप हेतु कहीं प्रतिषेधरूप साध्यके साथ अविनाभाव रखता है और वह उपलम्भ हेतु प्रतिषेध साध्यको सिद्ध करता है इसी प्रकार अनुपलब्धिरूप हेतु जैसे कि प्रतिषेध साध्यमें आया करता है और उसे जनाता है इसी प्रकार अनुमानरूप हेतु विधिरूप साध्यमें भी गमक होता है। तो अब हेतुके चार भेद हो गए। मूल भेद तो दो हैं— उपलब्धि विधिको सिद्ध करे तो इसका अर्थ यह है कि उसने अविरुद्धको सिद्ध किया। तो उस हेतुका नाम हुआ अविरुद्धोपलब्धि। इसी प्रकार जो प्रतिषेधको सिद्ध करे तो वह हेतु उस प्रतिषेध को सिद्ध करे तो वह हेतु उस प्रतिषेधको सिद्ध कर सकता है जिसका कि प्रतिषेध किया गया है, उससे विरुद्ध हेतु है सो इसका नाम होगा विरुद्धोपलब्धि। इसी प्रकार प्रतिषेधको ही प्रतिषेध द्वारा सिद्ध करे तो उसका नाम है अविरुद्धानुपलब्धि। और, जो अनुमान रूप हेतु विधिको सिद्ध करे तो उसका नाम है विरुद्ध उपलब्धि। उन ४

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रकारके हेतुवोंमेंसे इस समय अविरुद्धोपलब्धि हेतुके प्रकार कहे जा रहे हैं।

अविरुद्धोपलब्धिविधौ षोढा व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरभेदात् ।३-५६।

अविरुद्धोपलब्धि हेतुके प्रकार—साध्यसे अविरुद्धव्याप्य (स्वभाव) कारणकार्य आदिककी जो उपलब्धि है उसे कहते हैं अविरुद्धोपलब्धि, जो हेतु अपने अपने अविरुद्ध साध्यको सिद्ध करे, साध्यसे अविरुद्ध हेतु हो जैसे अग्निसे अविरुद्ध है धूम। तो जो हेतु विधिरूप साध्यको सिद्ध करे अर्थात् साध्यके साथ अविरुद्ध हो हेतु उसे अविरुद्धोपलब्धि कहते हैं। और वह उसे सिद्ध करनेमें कुशल है। उसकी छह प्रकारसे विधि होती है। अविरुद्धव्याप्योपलब्धि, अविरुद्ध कार्योपलब्धि अविरुद्ध कारणोपलब्धि, अविरुद्ध पूर्वचारोपलब्धि, अविरुद्ध उत्तरचारोपलब्धि, अविरुद्धसहचरोपलब्धि। इस तरह हेतु ६ प्रकारसे परिणत होते हैं। इनके उदाहरण बताये जायेंगे और उनसे बहुत स्पष्ट होगा कि अविरुद्ध व्यापोपलब्धि आदिक हेतुवों का भाव क्या है।

क्षणिकवादमें कारणको अहेतु माननेकी आशंका व समाधान—इस प्रसंगमें क्षणिकवादी जन शंकाकर रहे हैं कि लोकमें कार्यकारणभाव तो किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नही हैं। फिर कोई कारणका कार्य हो अथवा कोई कार्यका गमक हो, कारण हो यह बात कैसे सिद्ध होंगी? क्षणिकवादमें प्रत्येक वस्तुका क्षण क्षणमें होना मिटना माना गया है। जो जब वस्तु उत्पन्न हुई और तत्काल नष्ट हो गई तो वह वस्तु फिर किसका कारण बनेगी? ऐसी मनमें शंका रखकर क्षणिकवादी यह सिद्धान्त बना लेते हैं कि लोकमें कोई भी किसीका कारण नही है। और। न कोई कारण है। यह बात तो पहिले परिच्छेदमें ही निराकृत कर दी गई थी कि कार्य कारण सम्बन्ध होता तो है यह कहकर और आगे भी कहा जायगा और लोग भी समझ रहे हैं कि कार्यकारणका परस्परमें सम्बन्ध होता ही है। अग्निसे रोटी पकती है, सभी लोग जानते हैं तो झट उसमें परिणति भी तो करते हैं। कारणकार्यका विज्ञान तो सभी व्यवहारियोंको हो ही रहा है। कार्यकारणका निषेध करना किसी प्रकार योग्य नही है। शंकाकार कहता है कि कार्यकारणभाव प्रसिद्ध भी हो तो भी कार्य ही कारणका गमक हो सकता है याने कार्यसे कारणका परिज्ञान हो जायगा क्योंकि कार्यका कारणसे ही अविनाभाव है। किन्तु कारण कार्यका गमक नही बन सकता। जैसे कई जगह कारण पड़े हैं और कार्य नही हो पा रहे तो कारणसे कार्य भी सिद्ध नहीं हो सकता। पर कहीं कार्य हुआ दिखे तो वहां यह निश्चय है कि उस का कारण था या है तो यों कार्य ही कारणका गमक होगा पर कारण कार्यका गमक नही हो सकता। उत्तर देते हैं कि यह बात अयुक्त है। कार्यके अविनाभावरूपसे जो जो निश्चित होता है और अनुमानकालमें प्राप्त होता है ऐसा कारण कार्यका अनुमापक होता ही है। जैसे कोई यदि छत्ता लिये हुए होता है तो उससे यह अनुमान तो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

किया ही जा सकता है कि यहाँ छाया है क्योंकि छत्ता होनेसे जहां छत्ता लगा हुआ है वहां छाया भी है। तो जैसे कार्यके साथ कारणका अविनाभाव है। छाता है तो उसकी छाया भी वहीं है इस कारण कार्यका अनुमापक सुप्रसिद्ध है।

अविनाभावकी स्थितिके बिना अन्त्यक्षण प्राप्त कारणकी अलिङ्गता—यह कहो कि अनुकूल और अन्तिम क्षणमें प्राप्त कारण ही लिंग होता है, अर्थात् जैसे कपड़ा बुना जाता है तो ताना कर लिया, सब चीजें बनादी अब जो अंतिम तंतुका संयोग है वह कहलाता है अंतिम क्षणमें प्राप्त कारण। जिसके बाद कार्य हो ही जाना चाहिये। कारणका अंतिम संयोग। जिसे समर्थ कारणके रूपमें कहा जा सकता है। समर्थ कारण उसे कहते हैं कि जिन कारणोंकी उपस्थितिमें कार्य बन सकता है वे सारे कारण मिल जायें तो कार्य होगा। तो सारे कारण मिल जायें इसको इस शब्द में कहते हैं कोई दार्शनिक कि अंतिम क्षणमें जो कारण मिलता है वह लिंग होता है। तो ऐसा नहीं कह सकते कि अंतिम क्षणमें प्राप्त ही कारण लिंग कहलाता है, क्योंकि मान लो प्रतिबंधक कारण भी सामने हैं तो कार्य कैसे हो जायगा ? कारण भी हो गया। जितने कारणोंके मेलसे कार्य बनते हैं उतने सारे कारण भी मिल गए लेकिन प्रतिबंधक कारण सामने है जो कार्यका तिरोभाव करता है तब तो कार्य न बन सका, लिंग व्यभिचारी हो जायगा। अथवा पहिलेके कारणोंमें कोई कारण नहीं है तो भी आपका लिंग व्यभिचारी हो जायगा। आपने कहा कि अंतिम क्षणमें जो कारणका संयोग होता है वह कारण कार्यका अनुमापक होता है तो अंतिम कार्यको करने वाला कारण मिल गया और पहिले वालेसे कोई कम रहा अथवा कोई प्रतिबन्धक कारण सामने आ गया तब तो कार्य नहीं हो सकता। जैसे अग्नि जल रही है और अग्नि के सामने प्रतिबंधक मणि रखे तो वह अग्नि अपना काम नहीं कर सकती। कोई दोनाके नीचे चूना और नौसादर लगा दिया जावे तो उसपर दाल पकाई जा सकती अग्नि उस दोनेको नहीं जला सकती क्योंकि उसके पास प्रतिबन्धक कारण लगा हुआ है। अतः अन्त्यक्षणप्राप्त कारणको लिंग नहीं कहा जा सकता और द्वितीय क्षणमें जब कार्य प्रत्यक्ष हो गया तब अनुमान अनर्थक हो जायगा याने जब कार्यसे कारणका अनुमान करना व्यर्थ हो गया। प्रयोजन यह है कि कार्य भी कारणका अनुमापक होता है और कारण भी कार्यका अनुमापक होता है। अब इसी बातको कि कारण कार्यका अनुमापक होता है शङ्काकारके ही सिद्धान्तका एक उदाहरण देकर कहते हैं।

रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबंधकारणान्तरावैकल्ये। ३–६०।

क्षणिकवादमें भी कारणोपलब्धि हेतु माने गयेका कथन—शङ्काकारके सिद्धान्तमें कोई अंधेरेमें आम चूसा जा रहा है और आम चूसकर जो रूपका अनुमान

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

होता है वह किस तरह सो सुनो। स्वादमें आया हुआ जो रस है उस रसके तो रसके उत्पन्न करने वाली सामग्रीका अनुमान होता है। जो रसके सहकारी कारण हैं अथवा यहां वह पिण्डरूप फल आम उसका अनुमान होता है। उसके बाद फिर उस सामग्रीके अनुमानसे रूपका अनुमान होता है—एक बात! दूसरी बात—शङ्काकारके सिद्धान्त में यह बताया कि सजातीयरूप क्षणको उत्पन्न करता हुआ पहिले रूप क्षण विजातीय रस आदिक क्षणान्तरोंकी उत्पत्तिमें समर्थ होता है अन्य प्रकार नहीं। याने जैसे आम में जो रूप है इस समय वह रूप क्या करेगा कि अगले समयके रूपको उत्पन्न करेगा और उस रूपको उत्पन्न करते हुए ही वे पुराने रूप रस आदिक क्षणान्तरोंको उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं। तो इन दोनों बातोंमें मान तो लिया कारण। एक सामग्रीके अनुमानके द्वारा जो रूपका अनुमान चाहते हैं उन्हें ने कोई विशिष्ट कारण मान लिया ना! जहाँ कि सामर्थ्यका प्रतिबन्धक कारण न हो और अन्य कारणोंकी विकलता न हो। अर्थात् जितने कारण होते हैं वे सब कारण मिलें और उसकी सामर्थ्यका रोकने वाला कारण न आये तो वह कारण बनता है। तो मान तो लिया कि कारणसे कार्य होता है और एक कारण कार्यका अनुमापक बनता है। तो कारण नामका हेतु रूपका अनुमान चाहने वाले शङ्काकारने भी मान लिया। अभी जो अविरुद्धोपलब्धि हेतुके ६ भेद किये गये थे—व्याप्य, कार्य, कारण, पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर इन छह भेदोंमेंसे क्षणिकवादी शङ्काकार दो हेतुवोंको तो मान रहा था व्याप्य और कारण। व्याप्यका अर्थ है कार्य। शेष हेतुवोंको नहीं मान रहा था। तीसरा मान रहा है अनुपलब्धिको सो अनुपलब्धिका यह प्रकरण है नहीं, सो शङ्काकारके सिद्धान्तने भी सिद्ध कर दिया कि कारण नामका भी हेतु होता है। अब पूर्वचर और उत्तरचर हेतुवोंको सिद्ध करने के लिए सूत्र कहते हैं।

न च पूर्वोत्तरकालवर्तिनोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः ॥ ३-६१ ॥

पूर्वचर और उत्तरचर हेतुओंकी अनुमान सिद्धि—पूर्वचर हेतुमें पूर्व रहने वाले पदार्थसे उत्तरमें आगे आने वाले पदार्थका अनुमान किया जाता है। जैसे कल बुधवार होगा आज मंगलवार होनेसे। तो इस पूर्वचरके अनुमानमें मंगल और बुधमें तादात्म्य सम्बन्ध तो नहीं। तो इसमें मंगल दूसरा तदुत्पत्ति सम्बन्ध नहीं है कि मंगलने बुधको पैदा किया हो। वह एक हिसाब है मंगलके बाद बुध आता है, ऐसी ही बात उत्तरचरमें लगाओ। आगे होने वाले हेतु पूर्वमें होने वाले साध्यको सिद्ध करे तो वह उत्तरचर हेतु होता है। जैसे कल सोमवार था आज मंगलवार होनेसे तो यहां भी सोमवार और मंगलवारमें न तो तादात्म्य सम्बन्ध है और न तदुत्पत्ति सम्बंध है। क्यों नहीं कि ये दोनों साध्य साधन पूर्वचर और उत्तरचरमें भिन्न-भिन्न कालमें पाये जाते हैं। इस निराकरणका अब प्रयोग बनाइये। जो जिस कालमें व अनन्तर

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

नही होता है उसके साथ उसका तादात्म्य अथवा तदुत्पत्ति सम्बन्ध नही होता। जैसे भविष्यत्कालमें जो होने वाले चक्रवर्ती हैं जैसे कि भविष्यमें शंख नामका चक्रवर्ती होगा तो उसके कालमें अतु रावण आदिकका तादात्म्य तो नही है। अथवा जिस समय शकट नक्षत्रका उदय हो रहा है उस कालमें कृतिकाका उदय तो नही है। शकट कहलाता है रोहणी तो रोहिणीका उदय बादमें होता है कृतिकाका उदय पहिले होता है। तो एक कालमें न होनेसे तादात्म्य सम्बन्ध नही है अनन्तर न होनेसे तदुत्पत्ति सम्बन्ध नही होता। दूसरे इसमें एक दूसरेमें व्यवधान न हो तो तदुत्पत्ति सम्बन्ध होता है। कालका व्यवधान होनेपर भी उसमें तदुत्पत्ति मानोगे तो इसमें अतिप्रसंग दोष होता है। इससे यह सिद्ध किया है कि पूर्वचर और उत्तरचर हेतुवोंसे जो साध्य सिद्ध किया जाता है उसका सम्बन्ध तादात्म्यसे नही है जिससे कि वह स्वभावरूप हेतु बन जाय और तदुत्पत्ति भी सम्भव नहीं है जिससे कि कार्यरूप हेतु बन जाय। शकाकारके सिद्धान्तमें केवल दो ही हेतु उपलब्धि रूप माने गए हैं स्वभाव और कार्य। स्वभाव होता है तादात्म्य सम्बन्धमें और कार्य होता है तदुत्पत्ति सम्बन्धमें सो पूर्वचर और उत्तरचरमें जो साध्य साधन कहा जाता है उनका न तादात्म्य सम्बन्ध है और न तदुत्पत्ति सम्बन्ध है इस कारण उन दोनों हेतुवोंसे भिन्न हेतु है यह पूर्वचर और उत्तरचर।

भावी घटनाका कार्य पूर्ववर्ती माननेकी आशंका—अब शंकाकार कहता है कि जो कि भावीको कारण मानता है एक प्रभाकर नामका दार्शनिक है जिसका सिद्धान्त है कि कार्य पहिले होता है कारण भविष्यकालमें होता है। जैसे असगुन पहिले होता है और मरण आदिक भविष्यकालमें होते हैं। तो मरण आदिक असगुन को बनाता है, क्योंकि भविष्यकालमें मरण न हो तो असगुन कैसे बने? इसलिए भविष्यकालका मरण तो है कारण और आज जो असगुन हो रहा है यह कार्य है तो ऐसा भाव कारणको मानने वाला क्षणिकवादी शंकाकार कह रहा कि भविष्यमें जो रोहणीका उदय होगा उसका कार्यरूपसे कृतिकाके उदयकी सिद्धि होती है। तब फिर वह कार्य हेतुमें कैसे अन्तर्भाव न होगा? जैसे बुधवारके उदयका कार्य है मंगलवारका होना क्योंकि हमेशा बुधसे पहिले हुआ करता है। अगर बुध न होना होता तो मंगलवार कहाँसे होता इसलिए बुधवार तो कारण है और मंगलवार होना कार्य है। तो इस हेतुमें कार्य हेतु बना, कारण हेतु नहीं बना। तो उत्तरचर हेतुका कार्य हेतुमें अन्तर्भाव होगा। और, पूर्वचर हेतुका भी कार्य हेतुमें अन्तर्भाव होगा।

भावी घटनाका कार्य पूर्ववर्ती माननेकी आशंकाका समाधान—अब उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं—तो फिर पहिले जो भरणीका उदय हुआ कृतिकाके उदय होनेसे यह अनुमान कैसे बनेगा? ऐसे ही सोमवार गुजर चुका मंगलवार होनेसे यह अनुमान कैसे बनेगा? यदि कहो कि भरणीका उदय भी कृतिकाके उदयका कारण

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

है तो कार्य न कारण है तो कार्यने कारणको जता दिया इस कारण दोष नही है, याने मंगलवारके उदयका कारण सोमवारका उदय है इस कारण वहाँ भी कार्य हेतु रहा। तो उत्तर देते हैं कि जिस स्वभावसे कृत्तिकाके उदयसे रोहिणीका उदय हो गया उसी स्वभावसे कृत्तिकाके उदयसे भरणीका उदय हुआ या अन्य स्वभावसे ? इसमें दो बातें पूछी गयी हैं। शंकाकारके अभिप्रायसे केवल सोमवार या मंगलवार होनेसे तो यहां मंगलवार कार्य है, सोमवार कारण है। इसी प्रकार कल बुधवार होगा मंगलवार होनेसे तो यहां मंगलवार कार्य है और बुधवार कारण है तो कहते हैं कि मंगलवारमें दोनोंकी कार्यता आ गयी। सोमवारका भी कार्य मान लिया और मंगलका भी कार्य मान लिया तो मंगलमें जो कार्य स्वभाव सोमवारको सिद्ध करता है क्या उसी स्वभावसे मंगलवार बुधवारको सिद्ध करेगा या अन्य स्वभावसे सिद्ध करेगा तब तो गड़बड़ हो गया। कहो सोमवारकी जगह बुधवार कहना पड़ेगा। कल बुधवार था आज मंगलवार होनेसे, कल सोमवार होगा मंगलवार होनेसे। तो यों आगे पीछे किसी भी जगह आगे पीछे उन साध्योंको रख दिया जायगा। कोई समाधान नही बन सकता। यदि कहो कि अतीत और भविष्यत दोनोंमें एक जगह कार्यका व्यापार होता है तो स्वादमें आया हुआ रसका अतीत रस और भावीरूप हेतु बन जायगा। इससे फिर वर्तमान रूप या अतीत रूपमें प्रतीति नहीं हो सकती। इससे यह कार्यकारण व्यवस्था ठीक नही, इससे आगे कार्य बनेगा वह कारण है और पहिले कारण था। उसका भी यह कार्य है। ये दोनों बातें एक साथ नही बन सकती कि बुधवार होनेका कार्य मंगलवार है और सोमवार होनेका भी कार्य मंगलवार है ऐसी बात नही बन सकती। उसमें किसी एककी ही प्रतीति हो सकती है अब शंकाकार कहता है कि अपनी सत्ताके समवायके पहिले मरण आदिक तो हैं नहीं और असगुन आदिक कार्यों को पैदा कर देते हैं इससे तुम्हारा हेतु अनेकान्त हो गया, उसके उत्तरमें सूत्र कहते हैं।

भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुत्वम् । ३-६२ ।
तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम् ॥ ३-६३ ॥

भावी मरणादिककी पूर्वभूत असगुनमें हेतुत्वका अभाव - भविष्यत कालमें होने वाला मरण वर्तमानके सुगनका कारण नही हो सकता और इसी तरह अतीतकालमें हुआ जागृत बोध सोकर उठे हुए उद्बोधका कारण नही हो सकता। शंकाकार जिस प्रकार यह मानता है कि मरण तो होगा छह माह बाद और उसका सगुन असगुन सूचना हो गया अभी अब तो अभी जो अरिष्ट हुआ है वह भावी मरण का कार्य है। न होता भावी मरण तो अरिष्ट कैसे होता। कार्यको पहिचाननेका सही तो उपाय है कि न होता यह तो यह कैसे हो जाता जैसे न होती अग्नि तो धुवां कैसे हो जाता ? तो इससे यह सिद्ध हुआ ना कि धुवां कार्य है। इसी प्रकार न होवेगा मरण तो अरिष्ट कैसे जाना ? तो भावी मरणका कार्य है अरिष्ट इसी प्रकार एक

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

बात और भी मानता शंकाकार कि कोई मनुष्य सो गया तो सोनेसे पहिले उसका ज्ञान था और सोनेमें अब ज्ञान न रहा। अब जगेगा तब ज्ञान हो जायगा। तो जागने के बाद जो भी ज्ञान हुआ इस ज्ञानका कारण है सोयेसे पहिले जगे हुएका ज्ञान। उत्तरमें कहते हैं कि ये दोनों ही बातें सही नहीं हैं। कारण यह है कि कारणके व्यापारके आश्रित हो कारणके सद्भावका होना कहलाता है। ऐसा नहीं है कि पहिले उत्पन्न हो अरिष्ट भावी कालके मरणके व्यापारकी अपेक्षा रखते हुए जो इस समय असगुन हो रहा हो। जैसे सूखे वृक्षपर कौवा बैठकर चिल्लाये या जो भी असगुन माने गए हैं इन असगुनोंने अपना अस्तित्व बनानेके लिये छह महीने बाद होने वाले मरणके व्यापारकी अपेक्षा नहीं की। वह मरण तो असत् है। उसकी अपेक्षा क्या करेगा आजका असगुन। अथवा जैसे हाथकी रेखासे भविष्यमें यह राजा होगा इस को बताना है तो शंकाकारका कहना यह है कि भविष्य कालमें जो राज्य पद मिलेगा इसका कार्य है यह हाथकी रेखा। यदि न होता भविष्यमें राजा तो यह हाथमें रेखा कहांसे आती? तो उत्तरमें कह रहे हैं कि हाथकी रेखाने भविष्यकालमें होने वाले राज्यादिकके व्यापारकी अपेक्षा नहीं की कि उस राज्यकी अपेक्षा करके वे रेखायें अपना अस्तित्व बना लें क्योंकि वे रेखायें अभी उत्पन्न हुई और यह अरिष्ट अब उत्पन्न हुआ मरण व राज्य होगा बादमें। तो यह कैसे बन जायगा? शंकाकार कहता है कि अरिष्टकी उत्पत्ति मरण आदिक धर्मकी अपेक्षा करता है। जो यह असगुन है उसकी उत्पत्ति भविष्यमें होने वाले मरण आदिकने किया है तो कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है। क्योंकि भावी कालमें जो कुछ हुआ है वह तो यद्यपि असत् है जिस समय ये अस्तित्व आदिक हो रहे हैं तो गधेके सींगकी तरह उनमें कर्तृत्वका सम्बन्ध नहीं हो सकता।

वर्तमान प्रसङ्गका प्रकरणसे सम्बन्ध—इस प्रकरणमें प्रयोजन यह है कि अविरुद्धोपलब्धि नामका हेतु छः प्रकारका माना गया है। कार्यरूप जो व्यापकको सिद्ध करे, कार्यरूप जो कारणको सिद्ध करे, कारणरूप जो कार्यको सिद्ध करे, पूर्वचर जो उसके बाद होने वाली वस्तुको बताये, उत्तरचर जो पूर्वमें हुए साध्यको बताये और सहचर जो एक साथ ही रहने वाले साध्यको सिद्ध करे। इन ६ प्रकारोंमेंसे शङ्काकार दोको तो मान रहा है व्याप्य और कार्य, स्वभाव और कार्य। शेष हेतुवोंको नहीं मान रहा। उसके प्रति कारणरूप हेतुको तो सिद्ध किया ही है। अब यहां पूर्वचर और उत्तरचर हेतुवोंको सिद्ध किया जा रहा है। तो शङ्काकार इन हेतुओंको सिद्ध न करने देनेके लिये कार्य हेतु बना रहा है कि वे भी सब कार्य हैं और कार्यहेतु बननेकी चेष्टामें यह अरिष्ट और भावी मरण आदिक, इनका सम्बन्ध इस तरह बतला रहे हैं कि जिससे हेतु कार्यरूप सिद्ध हो जाय।

उत्तरमरणको पूर्व अरिष्टका कारण माननेमें प्रथम विकल्पका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

निराकरण—शङ्काकार कहता है कि मरणका कार्य है अरिष्ट। सो अरिष्टरूप कार्य के कालमें मरणका सत्त्व है इस कारण दोष न आ सकेगा। तो इसके उत्तरमें विकल्पों द्वारा पूछते हैं कि भावीकालमें जो मरण आदिक होने वाला है उसका स्वकालमें जो सत्त्व है सो क्या वह मरण आदिकसे पहिले सत्त्व है या अरिष्ट आदिकसे भी पहिले सत्त्व है? यदि कहो कि भावी मरणका पहिले सत्त्व है तो पीछे हुए अरिष्ट आदिक तो पाश्चात्य रहे न कि पहिले होने वाले। तब यह कहना गलत रहा कि पहिले मरण आदिक नही भी हैं तो भी मरण आदिक अरिष्ट अर्थात् असगुन आदिक कार्यके करने वाले हैं। यह कथन अयुक्त है क्योंकि इसने इस विकल्पमें उस मरणका सत्त्व पहिले भी मान लिया और अरिष्ट हुआ बादमें। यदि कहो कि दूसरा जो भावी मरण है उसकी अपेक्षा अरिष्ट आदिक पहिला कहा जाता है तो उत्तर देते हैं कि वह भी भावी मरण आदिक स्वकालमें इस तरह सत् है तो वह भी पहिले ही हो गया तो भी अरिष्ट आदिक पीछे हुए कहे जायेंगे। यदि अन्य भावी मरणकी अपेक्षा उस अरिष्ट आदिकको पूर्ववर्ती बतावोगे तो अनवस्था दोष होगा, इस कारण इस विकल्पसे यह सिद्ध नही हो सकता कि अरिष्टके कालमें भावी मरण आदिक भी सत्‌रूप हैं।

उत्तरमरणको पूर्वअरिष्टका कारण माननेमें द्वितीय विकल्पका निराकरण – यदि द्वितीय विकल्प कहोगे कि पहिले अरिष्ट आदिक अपने कालमें हैं पीछे भावी मरण आदिक स्वकाल नियत हो जायगा तो पहिले अरिष्ट निष्पन्न हो गया तो जो निष्पन्न हो जाता है, वह निराकांक्ष रहता है, उसे फिर किसी परकी अपेक्षा नही रहती है। तो पीछे उत्पन्न होने वाले मरण आदिकके द्वारा ये अरिष्ट आदिक कैसे किये गए? अथवा जब मरण आदिक हैं तो कारण कैसे बना? और फिर जो किया जा चुका है, निष्पन्न हो चुका है उसको फिर करना बतानेकी आवश्यकता ही क्या है? क्योंकि फिर किये हुएको करनेका सम्बन्ध नही होता अन्यथा अर्थात् किया हुआ भी करनेमें आने लगे तो फिर किसी भी कार्यमें, किसी भी कारणका कभी भी उपरक नही हो सकता, सदा वही वही कार्य किया जानेसे, अब तो कुछ न बन पायगा। क्योंकि किये हुएका करण बार बार होगा अब तो किये हुएमें भी कार्यका सम्बन्ध बना दिया गया है। यदि यह कहोगे कि निष्पन्न जो अरिष्ट आदिक हैं उनका भी कोई रूप ऐसा रह जाता है जो कि अनिष्पन्न है। उस अनिष्पन्न रूपको करनेसे अरिष्ट आदिकका कारण मरण आदिक माना जा रहा है। यदि ऐसा कहते हो तो यह बतावो कि वह अनिष्पन्न रूप निष्पन्नरूपसे भिन्न है या अभिन्न है? वह यदि उस से अभिन्न है तो वह ही वह रहा, अनिष्पन्न निष्पन्न ही रहा उसका करना क्या? यदि भिन्न है तो अनिष्पन्नरूप ही निष्पन्नके द्वारा अरिष्ट आदिक नही किया गया। मरण और अरिष्टसे कोई सम्बन्ध ही नही रह सकता, अनिष्पन्नसे अरिष्टका कोई सम्बन्ध ही न रहा। यदि कहो कि सम्बन्ध है अरिष्टके व मरणके साथ अनिष्पन्नका, अतः अनिष्पन्नके करनेसे अरिष्ट किया गया तो कहते हैं कि भिन्न भिन्न पदार्थोंमें कार्यकारणभाव

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

के सिवाय और कोई सम्बन्ध नहीं होता । अब यह बतलावो फिर वहाँ अरिष्ट आदिकके द्वारा किया गया अनिष्पन्न रूप या अनिष्पन्न रूपके द्वारा अरिष्ट किया गया, यदि कहो कि अरिष्ट आदिकके द्वारा अनिष्पन्नरूप किया गया तो अरिष्ट आदिक ही अनिष्पन्न रूपकी निष्पत्ति होनेसे मरणादिक अकिञ्चित्कर हो गया, क्योंकि किसी भी कार्य मरणादिकका उपयोग न रहा । जो मूलमें लक्ष्य लेकर चले थे कि मरण आदिक कारण है और अरिष्ट आदिक कार्य हैं तो अब ये मरण आदिक द्वारा अरिष्ट आदिक का अनिष्पन्न रूप ही नहीं किया गया तो क्या किया गया । इस कारण अरिष्टादिके करणमें पूर्वनिष्पन्नका पीछे उपज्जयमान मरणादिके द्वारा क्या किया गया । निष्पन्न का कोई क्या करेगा । यदि अनिष्पन्न कुछ है तो वहाँपर भी पहिलेकी तरह चर्चा आ गयी । अनवस्था दोष हो जायगा ।

अविनाभावके कारण साधनसे साध्यका अनुमान – शंकाकार कहता है कि यदि यहाँ कार्यकारण भाव नहीं है । तो फिर किसी एकके दिखनेसे अन्यका अनुमान हो जाता है ? सो वह अनुमान कैसे हो जायगा, अथवा किसी भी कारणको देखकर कार्यका अनुमान हो ना, कार्यको देखकर कारणका अनुमान होना यह कैसे बन सकेगा ? कैसे बनेगा – अविनाभावसे बन जायगा तादात्म्य तदुत्पत्तिरूप सम्बन्ध होनेपर भी एक दूसरेके जो गमक होते हैं वे अविनाभावके द्वारा ही गमक होते हैं, अन्य प्रकारसे नहीं । क्योंकि, यदि अविनाभाव नहीं है तो जिसका तादात्म्य और तदुत्पत्ति सम्बन्ध भी जुड़ गया हो तो भी साध्यकी सिद्धि नहीं होती । जैसे कोई पुरुष सर्वज्ञ नहीं है वक्ता होनेसे । तो देखिये यहाँ तादात्म्य सम्बन्ध बता दिया गया फिर भी साध्यका गमक नहीं माना गया और एक अनुमान किया गया कि देवदत्तका यह पुत्र काला है देवदत्तका पुत्र होनेसे । अन्य पुत्रोंकी तरह तो यहाँ तदुत्पत्ति सम्बन्ध तो बराबर है लेकिन साध्यका गमक नहीं है । क्यों गमक नहीं है कि उसमें अविनाभाव का सम्बन्ध नहीं है और फिर कहीं तादात्म्य और तदुत्पत्तिका सम्बन्ध भी हो और अविनाभाव मौजूद हो तो वहाँ वह हेतु अपने साध्यका गमक हो जाता है । जैसे कृत्तिकाका उदय होनेसे रोहिणीका भावी उदय आया । इसमें न तादात्म्य सम्बन्ध है न तदुत्पत्ति सम्बन्ध है फिर भी यह सही अनुमान है । अथवा जैसे चन्द्रका उदय होनेसे सामसमय समुद्र वृद्धि होना, इसमें न तादात्म्य सम्बन्ध है न तदुत्पत्ति सम्बन्ध है, किन्तु अविनाभाव सम्बन्ध है सो साध्यके गमक हैं । इसी तरह कीड़ी अंडोंको लेकर ऊपर चढ़ रही हों तो उसमें वर्षा होनेकी सम्भावना ज्ञात हो जाती है । तो इसमें न तादात्म्य सम्बन्ध है न तदुत्पत्ति फिर भी साध्यके गमक हैं आदिक अनेक साध्य साधन इस तरहके हैं कि जिनका न तादात्म्य सम्बन्ध है न तदुत्पत्ति सम्बन्ध है । केवल एक नियम रह गया, अविनाभाव मिल गया तो उससे उनकी सिद्धि हो जाती है ।

इस प्रसंगके बनानेका कारण— तो इस प्रकरणसे यह सिद्ध होता है कि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

शरीरको रचने वाले जो अदृष्ट आदि कारण हैं, भाग्य, आत्माके परिणाम, कर्मोंके उदय, वे भावी मरण आदिकके अनुमापक हैं। शरीरके रचने वाले जो अदृष्ट आदि कारण हैं उनसे भावी रचना आदिक मिलेगी, ऐसा अनुमान बनता है। जागृत दशा का ज्ञान प्रबुद्ध धर्मके ज्ञानका कारण होना तो पहिले निराकृत कर दिया और स्पष्ट कारण यह है कि अंतरालमें जो ५–६ घंटा समय निकलेगा वह पहलेका जो जागृत दशाका ज्ञान है अब वह उठनेके समयके ज्ञानका कारण बन जायगा क्या ? और फिर ऐसा तो नही कि सोये हुए की दशामें ज्ञान न हो, ज्ञान तो निरन्तर चल रहा, इसलिये उत्तर क्षणका ज्ञान परिणमनका कारण पूर्वक्षणका ज्ञान परिणमन है यह सिद्ध किया है। शंकाकार तीन प्रकारके हेतुवोंको मान रहा है व्याप्य हेतु कार्य हेतु और अनुपलब्धि हेतु। यह उपलब्धि हेतुका प्रकरण है जिनके छ भेद किये गये। व्याप्य, कार्य, कारण पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर इनमेंसे केवल दो ही हेतु शंकाकारको मान्य हैं—व्याप्य और कार्य हेतु। कारण हेतुको नहीं मान रहा मरण हेतुमें अनेकान्तिकता का दोष देनेके लिये उनका यह उदाहरण था। अरिष्ट मरणका कार्य है और जागृत बोध पहिले उद्बोधका कार्य है। इस उदाहरणको देकर कारण हेतुको अनेकान्तिक सिद्ध करना चाहता था। तो यहाँ उत्तर दिया गया कि न तो भावी मरण अरिष्टकी वृत्तिका कारण है और न अतीत जागृति बोधका कारण है, जिन्हें कि इन दोनोंके द्वारा हेतुसे अनेकान्तिक कर दिया जाय। यहां तक कारण हेतु पूर्वचर और उत्तरचर हेतुको युक्तियोंसे सिद्ध किया। अब अंतिम जो सहचर हेतु है वह भी मानना ही चाहिये। उसकी आवश्यकता बतला रहे हैं कि सहचारी हेतुका व्याप्य और कार्य हेतुमें अन्तर्भाव नहीं होता अतः वह भी ठीक है।

सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्सहोत्पादाच्च। ३–६४।

अविरुद्धसहचारोपलब्धि हेतुकी सिद्धि सहचारी हेतुवोंमें साध्य साधन में भी तादात्म्य नही है और तदुत्पत्ति नही है। तादात्म्य तो यों नही है कि वे सहचारी दोनों परस्पर एक दूसरेके परिहार पूर्वक रहा करते हैं। और, तदुत्पत्ति यों नही है कि उन सहचारियोंका एक साथ उत्पाद हुआ है। जिन पदार्थों का परस्पर परिहार पूर्वक अवस्थान रहता है उनमें तादात्म्य सम्बन्ध नही होता। जैसे घटपटका परस्पर परिहारसे अवस्थान है तो उनका तादात्म्य भी नहीं है इसी प्रकार सहचारियों को भी परस्पर परिहारसे अवस्थान है इस कारण तादात्म्य सम्बन्ध नही है। अर्थात् एक साथ रहने वाले दो पदार्थ यदि परस्पर एक दूसरेके स्वभावले अलग न हो उनकी सत्ता जुदा जुदा न हो तो वह सहचारी नही कहला सकता। यदि उनमें तादात्म्य सम्बन्ध हो तो इसका अर्थ यह है कि वे दो नही रहे उनमेंसे एक रहा, फिर सहचारी कैसे रहेंगे। एक साथ रहने वाले तो वे ही कहला सकते हैं जिनका परस्पर परिहारसे अवस्थान है। तो जब तादात्म्य सम्बन्ध न रहा सहचारियोंमें तो वह व्याप्य अथवा

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

स्वभावमें गर्भित नहीं हो सकता, उनसे यह अलग ही है। इसी तरह सहचारी चूंकि एक ही कालमें पाये जाते हैं इस कारण तदुत्पत्ति सम्बन्ध नहीं है। जिनमें एक काल-पना पाया जाय उनमें तदुत्पत्ति सम्बन्ध नहीं होता। जैसे बछड़ेके दाहिने बायें दोनों सींग। क्या कोई यह कह सकता है कि दाहिने सींगने बायेंको पैदा किया या बायें सींगने दाहिनेको पैदा किया? वे एक कालमें हैं इसलिये उनमें तदुत्पत्ति सम्बन्ध नही, अर्थात् जब न तादात्म्य सम्बन्ध है न तदुत्पत्ति सम्बन्ध है तो इसका अर्थ है कि सह-चर हेतु युक्तियुक्त है। शंकाकार कहता है कि देखो जिसका स्वाद लिया जा रहा है ऐसे रससे तो किया सामग्रीका अनुमान और सामग्रीके अनुमानसे किया रूपका अनु-मान। तो ये अनुमित अनुमानसे सहचारी अलग हेतुमें न आयगा। उत्तर देते हैं कि इस तरहसे तो व्यवहार कोई नही करता कि पहिले रससे करे सामग्रीका अनुमान, फिर सामग्रीसे करे रूपका अनुमान। आस्वाद्यमान रससे व्यवहार सामग्रीका अनु-मान नही करता, रसके स्वादके समय ही रूपका अनुमान झट हो जाता है। जैसे व्यवहार होता है उस प्रकारसे प्रामाण्य माना जाता है। सामग्रीसे करे रूपका अनुमान तो वहां अर्थ यह हुआ कि कारणसे कार्यका अनुमान बन गया तब तो कारण अनुमान और सिद्ध हो गया। फिर तो तीन प्रकारके हेतु न रहे। जिसे मानता है शंकाकार कि व्याप्य कारण और अनुपलब्धि ये तीन हेतु हुये। अब तो यह कारणका हेतु हो गया इस कारण अविरुद्धोपलब्धि हेतु ६ प्रकारके होते हैं। उसमें कोई विरोध नही है। अब उन छह हेतुवोंमेंसे क्रमसे एक एक उदाहरण दे दें जिससे जन साधारणको शीघ्र ज्ञान हो। उनमेंसे पहिले व्याप्य हेतु बतला रहे।

परिणामी शब्दः कृतकत्वात्, य एवं स एवं दृष्टः, यथा घटः, कृतक-श्चायं तस्मात्परिणामीति ॥ ३-६५ ॥

अविरुद्धव्याप्योपलब्धि हेतुका उदाहरण—शब्द परिणामी होते हैं अर्थात् अनित्य होते हैं, कृतक होनेसे। जो जो कृतक होते हैं वे सब अनित्य होते हैं जैसे घड़ा और कृतक है शब्द इस कारण शब्द भी परिणामी है। यह तो व्याप्य हेतुका अन्वय दृष्टान्त बताया है, अब इसी व्याप्य हेतुको व्यतिरेक दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं—जो अपरि-णामी नहीं होता वह कृतक नही होता जैसे बंध्यापुत्र। बन्ध्यापुत्र कोई अनित्य नित्य वाला कोई वस्तु ही नहीं है तो वह कृतक नही है और कृतक है शब्द इस कारण शब्द परिणामी है। तो यहां यह बात जाननी चाहिये कि कृतकपना अनित्यत्वके साथ व्याप्त है अर्थात् जो किया गया होता है वह अनित्य होता है इसमें कोई सन्देह नही। कोई अनित्य ऐसे भी होते कि जो किये हुए नही होते, किन्तु जो किये हुए होते हैं वे तो अनित्य होते ही हैं। पूर्व आकारका तो परित्याग करे और उत्तर आकारकी प्राप्ति करे और दोनों आकारोंके बीच उनकी स्थिति रहे इसीको ही कहते हैं परिणाम! परिणामका मोटा अर्थ तो अनित्यपना है लेकिन सर्वथा अनित्य कुछ न होकर जो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

अनित्य हुआ करता है तो वस्तुकी पर्याय होती है उस वस्तुमें जब देखा जाता है तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों धर्म पाये जाते हैं तो ऐसे परिणामसे रहित हो कोई सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा क्षणिक हो कोई शब्द तो उसमें कृतकपना नहीं बनता । परिणामोंके कहनेमें सर्वथा अनित्य भी नहीं ग्रहण करता, क्योंकि सर्वथा अनित्य कुछ वस्तु ही नहीं होती । इस तरह इस दृष्टान्तमें बताया है कि कृतकत्व परिणामोंके साथ व्याप्त है तो कृतकत्व हेतु व्याप्य हेतु हो गया । अविरुद्धव्याप्योपलब्धिका वर्णन करके अब अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतुका वर्णन करते हैं ।

अस्त्यत्र शरीरे बुद्धिर्व्याहारादेः ॥ ३-६६ ॥

अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतुका उदाहरण —इस शरीरमें आत्मा है क्योंकि व्यवहार, वचनालाप, व्यापार आकार विशेष आदिक होनेसे । यहां वचनालाप आदिक कार्य हेतु बताये गए हैं । आत्मा हो तो वचनालाप किया जा सकता है इस कारण साध्य तो है यहां कारण रूप और साधन है कार्य रूप । यहां शंकाकार कहता है कि शब्दकी उपलब्धि तो तालू आदिकके अन्वय व्यतिरेकसे हुआ करती है । तालू ओंठ वगैरह चलें तो उससे शब्दकी उपलब्धि हो जाती है । तब वचनालापको आत्मा का कार्य कैसे कहा जा सकता है ? और फिर वचनालाप आदिक हेतु देकर आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि कैसे की जा सकती है ? शंकाकार वचनालापको तालू ओंठ आदिक व्यापारका कार्य बताकर आत्मा साध्यको उड़ाना चाहता है । शंकाकार और भी कह रहा है कि आत्मा यदि विद्यमान भी हो और कहनेकी इच्छा भी उसी तीव्रतासे हो रही हो और कफ आदिक दोष कोई कंठमें हो जायें और कंठ आदिकका व्यापार न हो सके तो वचन तो नहीं निकलते । इससे यह कहना कि वचन निकलना आत्माका कार्य है यह कैसे बना ? जब आत्माके मौजूद होनेपर भी रोगी पुरुष जिसके कंठमें कफ बहुत अड़ गया है तो अब वचन तो नहीं निकलते, इससे वचनका उत्पन्न होना तालू आदिकके व्यापारका कार्य है न कि आत्माका । उत्तर देते हैं कि यह कहना असार है । शब्दकी उत्पत्तिमें तालू कंठ आदिक सहाय हैं और उस तालवादिककी सहायता रखते हुए आत्माका व्यापार माना गया है । जैसे कि मिट्टीसे घड़ा आदिक बनाये जाते हैं तो उसमें चक्र दण्ड आदि सहायक होते हैं । किन्तु उनके सहायक युक्त कुम्हार का व्यापार मुख्य है । तो जैसे घड़ा आदिककी उत्पत्तिमें कोई मनुष्य कारण होता है और जो सहायक साधन हैं, उनकी सहायता लेकर वह कार्य करता है, इस ही प्रकार वचनालाप होनेसे मूल कारण तो आत्माका सद्भाव है और फिर वह आत्मा तालू कंठ आदिकके व्यापारकी सहायता लेकर शब्दोंको उत्पन्न कर सकता है, पर वचनालाप होनेसे आत्माके अस्तित्वका सभी लोग ज्ञान करते हैं । उन वचनालापोंमें मूल कारण आत्मा है । तालवादिमें अन्वय व्यतिरेकका सम्बन्ध रखने वाला होनेसे यदि तालू आदिकका ही कार्य शब्दको माना जाय तो घट आदिकको भी आत्माका ही

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

कार्य मान लिया जाय। अथवा कुम्हार आदिकके व्यापारके बिना केवल चक्रादिकका ही कार्य मान लिया जाय। और, फिर जो कार्यका कार्य है ऐसा यह हेतु आये तो उस का अन्तर्भाव कार्य हेतुमें ही होता है। जैसे कहें कि मृतपिण्डरूप कार्य हो चुका है घड़ा बन जानेसे तो व्यवस्था तो यों है कि पहिले चक्रपर मृतपिण्ड बनाया जाता है, फिर उसको लम्बा करके एक पिण्डी जैसी परिणति बनती है, फिर उसमें पोल करके एक कसूल जैसी परिणति बनती है। उसके बाद घड़ा बनता है। तो मृतपिण्डका कार्य है पिण्डा, उसका कार्य है कसूल और उसका कार्य है घड़ा। तो कार्योंके कार्यके कार्य देखकर पुराने कारण परिणतिको सिद्ध करना यह कार्य हेतुमें सामिल हो जाता है। कार्यलिंगका वर्णन करके अब कारण हेतुका वर्णन करते हैं।

अस्त्यत्र छाया छत्रात् ॥ ३-६७ ॥

अविरुद्धकारणोपपलब्धिका उदाहरण – यहांपर छाया है छत्र होनेसे। तो छाया तो है कार्य। और छत्र है कारण। तो कारण को देखकर कार्यका अनुमान किया जा रहा है। छत्रको बताकर छायाकी बात अनुमानमें लायी जा रही है। तो यहां साध्य है छाया। उससे अविरुद्ध कारण है छत्र। जहां छत्र होता है या ऐसा कुछ भी जाना वहां उसकी छाया होती है तो कारणसे अविरुद्ध कार्यकी सिद्धि की गई है अतः इस अनुमानमें छत्रहेतु अविरुद्ध कारणोपलब्धि नामका हेतु है। यदि कोई अनुमान ऐसा हो कि जिसमें कारणके कारणका हेतु बताया जाय तो वह कारण हेतुमें ही सामिल होता है। वह भिन्न हेतु नहीं माना जाता। जैसे कोई अनुमान बनाया कि यहां रहने वाले लोगोंके कंठको रुंधने वाली स्थिति है क्योंकि धुवां वाली अग्नि होनेसे। तो कंठादिकमें जो विच्छेद होता है उसका कारण है धूम और धूमका कारण है अग्नि तो कारण दिखाकर कार्यधूम और धूमका कार्य कंठका रुंधना सिद्ध किया गया है। तो कारणका कारण दिखाकर साध्यकी सिद्धि करना यह कारण उपाधिमें ही सामिल हो जाता है। अब अविरुद्धकारणोपलब्धि नामक हेतुको कहकर अविरुद्ध पूर्वचर हेतुको कहते हैं।

उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात् ॥ ३-६८ ॥

अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण – रोहिणी नक्षत्रका उदय हो गया कृत्तिकाका उदय होनेसे यहां कार्य है रोहिणीका उदय। उससे पूर्वमें होने वाली है कृत्तिका। नक्षत्र क्रमसे अश्वनी, भरनी कृत्तिका रोहिणी आदिक जो क्रम कथन है उसमें कृत्तिका है तृतीय नम्बरका नक्षत्र और रोहिणी है चौथे नम्बरका नक्षत्र। तो रोहिणीसे पहिले आता है कृत्तिका। तो कृत्तिकाका जब उदय चल रहा है तो उसके उदयसे रोहिणीके उदय होनेकी सिद्धि करना यह पूर्वचर हेतुमें सामिल है। कोई पूर्वचर भी हुआ करता है। तो वे सब इस पूर्वचरमें ही अन्तर्भूत कर लेना

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

चाहिये। जैसे कोई कहे कि मृगसराका नक्षत्र आगे होगा क्योंकि कृत्तिकाका उदय होनेसे। तो मृगसिरा नक्षत्र है ५ वें नम्बरका, कृत्तिका है तीसरे नम्बरका पाँचवेंसे पूर्व है चौथा चौथेसे पूर्व है तीसरा तो तृतीय नक्षत्रको साधन बताकर ५ वें नक्षत्रके भविष्यकालमें उदय बताना यह पूर्वचर हेतुमें सामिल हो जाता है। अब पूर्वचर लिङ्गका वर्णन करके उत्तरचर लिङ्गका वर्णन करते हैं।

उद्गाद्भरणिः प्राक् तत एव ॥ ३-६९ ॥

अविरुद्ध उत्तरचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण—भरणीका उदय हो चुका कृत्तिकाका उदय होनेसे। भरणी नक्षत्र है द्वितीय नम्बरका और कृत्तिका है तृतीय नम्बरका। तो जब कृत्तिकाका उदय चल रहा है तो उस साधनसे भरणीका उदय हो चुका यह साध्य सिद्ध करते हैं। उत्तरचर लिंगका काम है। यदि कोई उत्तरोत्तर चरलिंग हो तो उसका भी अन्तर्भाव उत्तरचर लिंगमें करना चाहिये। जैसे कोई अनुमान करे तो भरणीका उदय हो चुका रोहणीका उदय होनेसे। तो भरणी है द्वितीय नम्बरका नक्षत्र और रोहिणी है चतुर्थ नम्बरका। तो रोहिणी नक्षत्रका उदय है तो उसमें भरणीका उदय हो चुका यह सिद्ध हो ही जाता है। तो भरणीका उत्तर है कृत्तिका और कृत्तिकाके बाद आता है रोहिणी तो उत्तरचर हेतुसे बहुत पहिलेका नक्षत्र उदित हो चुकना सिद्ध करना यह तो उत्तरोत्तर चरलिंगका अनुमान है। अब उत्तरचर हेतुका वर्णन करके सहचर हेतुका वर्णन करते हैं।

अस्त्यत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात् ॥ ३-७० ॥

अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण—इस बिजौरेमें रूप है रस होनेसे। तो रूप और रस दोनों एक साथ हुआ करते हैं। उनमेंसे जिस रसका स्वाद लिया जा रहा है। प्रत्यक्ष किया जा रहा है उस रस साधनसे रूप साध्यका सिद्ध करना यह सहचर लिंग साध्य अनुमान है। अब जो संयोगी हेतु होता है अथवा एक ही पदार्थमें सम्वाय सम्बन्धसे रहने वाला हेतु होता है जो साध्यके समान सम्बन्धमें ही रहा करता है उनका अन्तर्भाव इस सहचर हेतुमें कर लिया जाता है। जैसे यह कहना कि इसमें आत्माका अस्तित्व है क्योंकि जो मन आदिक विशिष्ट शरीर होनेसे तो ये दोनों सहचर हैं। विशिष्ट ज्योतिरूप देह है और आत्मा भी वही है तो यह सहचर लिंगमें सामिल हो जाता है। इसी प्रकार जो एक ही अर्थमें समवाय सम्बन्ध रहता है—जैसे रूप रस गंध स्पर्शादिक एक पदार्थमें रह रहे हैं तो वे एक दूसरेको सिद्ध कर देते हैं। ये सब सहचर लिंग कहलाते हैं। इस प्रकार अविरुद्धभोगोपलब्धिके जो छह हेतु कहे गये थे उनके छहों उदाहरण बता दिये गए हैं। यह सब उदाहरण विधि साध्य वाली है। अब विधि साध्य होनेपर जो अविरुद्धोपलब्धि हेतु होते हैं उनका उदाहरण देकर विरुद्धोपलब्धि हेतुका उदाहरण देनेके लिये पहिले विरुद्धोपलब्धि

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

हेतुके साध्यके सम्बन्धमें सूत्र कहते हैं। इस हीमें विरुद्धोपलब्धिके भेद भी बतायें जायेंगे।

विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथेति ॥ ३-७१ ॥

प्रतिषेध साध्य होनेपर विरुद्धोपलब्धिके प्रकार—विरुद्ध जो व्याप्य कारण आदिक हैं उनकी उपलब्धि होना इस हेतुसे प्रतिबोध साध्य किया जाता है। इसी प्रकार विरुद्धोपलब्धि हेतु भी छह प्रकारके होते हैं। विरुद्ध व्याप्योपलब्धि, विरुद्ध कार्योपलब्धि, विरुद्ध कारणोपलब्धि विरुद्ध पूर्वचर, विरुद्ध उत्तरचर, विरुद्ध सहचर। साध्यका इसमें नास्तित्व सिद्ध किया जायगा। तो जिसका प्रतिषेध किया जा रहा है ऐसे साध्यसे जो विरुद्ध है पदार्थ उससे सम्बन्ध रखने वाले व्याप्यादिककी यहां उपलब्धि होती है। तो जहाँ विरुद्ध हेतु पाया जायगा उससे विरुद्धका निषेध ही तो किया जायगा। ये सब बातें उदाहरणके समय स्पष्ट हो जायेंगी। उनमेंसे अब प्रथम विरुद्ध व्याप्योपलब्धिका उदाहरण देते हैं।

नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात् ॥ ३-७२ ॥

विरुद्धव्याप्योपलब्धिका उदाहरण—उसका उदाहरण दे रहे हैं कि यहां शीत स्पर्श नही है गर्मी होनेसे। तो गर्मी यह तो हेतु बताया गया है और गर्मी होती है और अग्निसे विरुद्ध है शीतस्पर्श। जहां अग्नि है वहां ठंडा स्पर्श कहांसे होगा? तो ठंडे स्पर्शका निषेध करना यह है उष्ण हेतुका साध्य। तो यह विरुद्ध व्यापोपलब्धि हो गयी। अथवा कहो व्याप्यविरुद्धोपलब्धि। यहां प्रतिषेध साध्य है और जितने प्रतिषेध किये जा रहे हैं उनसे विरुद्ध व्याप्यकी उपलब्धि हो रही है। अब विरुद्ध व्याप्यहेतुका कारण वर्णन करके विरुद्ध कार्यका वर्णन करते हैं।

नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् ॥ ३-७३ ॥

विरुद्धकार्योपलब्धि हेतुका उदाहरण—यहां शीतस्पर्श नही है धुवां होनेसे। तो साध्य बनाया है शीत स्पर्शका अभाव, जिसका प्रतिषेध किया जा रहा है। उस शीतस्पर्शसे विरुद्ध है अग्नि। जहां अग्नि होती है वहां शीत स्पर्श कहांसे होगा? अग्निका कार्य है धूम। तो जो प्रतिषेध साध्य है उसका विरोधी कार्य पाया जानेसे यह विरुद्ध कार्योपलब्धि नामका हेतु होता है। यदि इसके बाद सीधा कहो कि यहां शीतल स्पर्श नही है अग्नि होनेसे तो यह विरुद्ध कारणोपलब्धिमें सामिल होता है। किन्तु हेतु दिया है धूम होनेसे तो शीतस्पर्शका विरोधी है अग्नि और अग्नि का कार्य है धूम। उससे सिद्ध किया है शीत स्पर्शका अभाव। अब विरुद्ध कार्य हेतुका वर्णन करके विरुद्ध कारण हेतुका वर्णन करते हैं।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ॥ ७४ ॥

विरुद्धकारणोपलब्धि हेतुका उदाहरण—इस शरीरमें पुरुषमें सुख नहीं है क्योंकि हृदय शल्य होनेसे। तो यहां साध्य है प्रतिषेध सुखका प्रतिषेध किया जा रहा है तो सुखका विरोधी है दुःख और दुःखका कारण है हृदय शल्य तो हृदय शल्य देकर सुखका प्रतिषेध करना यह विरुद्ध कारण हेतुसे सिद्ध किया जा रहा अनुमान है। जहां विरुद्ध कारण मिले वहां उस कारणके कार्यसे विरोधी बात ही सिद्ध होगी। यों विरुद्ध कार्य हेतुका वर्णन करके अब विरुद्ध पूर्वचर हेतुको कहते हैं।

नोदेष्यति मुहूर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात् ॥ ३-७५ ॥

विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण—एक मुहूर्तके बाद रोहिणीका उदय होनेसे रोहिणीका उदय होनेसे तो यहां प्रतिषेध है रोहिणीका उदय रोहिणीसे विरुद्ध है पूर्वमें अर्थात् रोहिणीसे पहिले आता है भरणी, उससे पहिले आता है अश्विनी। उससे पहिले आता है रेवती। जब उस समय रेवतीका उदय है तो मुहूर्त बाद सकटका उदय कहा जायगा। प्रथम तो जब अश्विनीका ही उदय है तो उसके बाद आ गयी भरणी तो भरणीका एक मुहूर्त समय व्यतीत होनेके बाद आ गया कृत्तिका। उसके बाद होगा रोहिणी फिर बतला रहे हैं रेवतीका उदय तो यहां सकटके उदयका विरोधी है अश्विनीका उदय और उसका पूर्वचर है रेवतीका उदय यहां विरुद्ध पूर्वचर हेतु हुआ। अब विरुद्ध पूर्वचर हेतुका वर्णन करके विरुद्ध उत्तरचर का उदाहरण देते हैं।

नोद्गादभरणिमुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात् ॥ ३-७६ ॥

विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण—मुहूर्तसे पहिले भरणीका उदय न था पुष्यका उदय होनेसे पुष्यसे पहिले आता है पुनर्वसु, उससे पहिले कृत्तिका, उससे पहिले भरणी। तो उसने मुहूर्त पहिले आने वाले भरणीका प्रतिषेध किया जा रहा कि मुहूर्तसे पहिले भरणी उदयमें न था क्योंकि पुष्यका उदय होनेसे। तो भरणीके उदय का विरोधी है पुनर्वसु। उससे उत्तरचर है पुष्यका उदय। तो यहां यह विरुद्ध उत्तर-चर हेतु हो गया। जैसे कोई कहे कि अबसे एक दिन पहिले इतवार न था बृहस्पति वार होनेसे। तो इतवारका विरोधी है बुधवार क्योंकि सोमवार भी निकले, मंगल-वार भी निकले, मंगलवार भी निकले तब बुधवार आयगा। उसके उत्तरमें रहने वाला है बृहस्पतिवार। तो बृहस्पतिको बताकर उससे एक दिन पहिले इतवारके होनेका निषेध करना यह विरुद्ध उत्तरचर हेतुसे साबित अनुमान हुआ। अब विरुद्ध सहचर हेतुको कहते हैं।

नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽवाग्भागात् ॥ ३-७७ ॥

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

विरुद्धसहचरोपलब्धि हेतुका उदाहरण – इस भींटमें दूसरे परले भागका अभाव नहीं है क्योंकि इस तरफके भागका सद्भाव है। भींट खड़ी है, उसका एक ही पहिला हिस्सा तो दिख रहा है। उस दिखते हुए सामनेके हिस्सेसे यह अनुमान करना कि इसके दूसरे हिस्सेका अभाव नहीं है, क्योंकि यह पहिला हिस्सा दिख रहा है। तो यह अनुमान सही है। प्रतिषेध्य हो रहा है परला हिस्सा। परला हिस्सासे विरोध है परले हिस्सेका सद्भाव। उसका सहचारी है अगले हिस्सेका सद्भाव। तो अगला हिस्सा देखकर परले हिस्सेके अभावका निषेध करना यह विरुद्ध सहचर हेतु हुआ। जैसे कोई यह कहे कि इस आममें रूपका अभाव नहीं है रस होनेसे। तो रूपके अभावका विरोधी हुआ रूपका सद्भाव। तो रस बताकर रूपके अभावका अभाव कहना यह विरुद्ध सहचर हेतु हुआ। जैसे कि पहिले बताया था कि इसमें रूप है रस होनेसे तो यह हुआ अविरुद्ध सहचर। सीधा अनुमान। अब रस हेतु देकर रूपके अभावका अभाव बताना यह विरुद्ध सहचर हेतुसे साध्य किया है उससे विरुद्ध है परभागका सद्भाव, उसका सहचर है अगले भागका सद्भाव। यहां तक हेतुके दो प्रकारों मेंसे एक उपलब्धिरूप हेतु, इनमेंसे उपलब्धिरूप हेतुका वर्णन किया जा चुका जिसका साध्य विधिरूप हो और हेतु भी विधिरूप हो वह भी उपलब्धिहेतु कहलाता है। क्योंकि विधिका साध्य किया है और जहां साध्य तो हो प्रतिषेध और हेतु हो विधिरूप तो यह भी उपलब्धि हेतु कहलायेगा, क्योंकि बताया गया था कि उपलब्धि नामक हेतु विधिसाध्य होनेपर भी होता है। तो जैसे उपलब्धिकी बात कही गई थी उसी प्रकार अनुपलब्धिकी भी बात है। अनुपलब्धि भी दो प्रकारके होते हैं— एक अविरुद्ध अनुपलब्धि और एक विरुद्ध अनुपलब्धि। तो उनमेंसे पहिले प्रकारकी जो अनुपलब्धि है अर्थात् अविरुद्ध अनुपलब्धि है उसका वर्णन करनेकी इच्छासे जब आचार्य महाराज सूत्र कहते हैं।

अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरानुपलम्भभेदादिति ॥ ३–७८ ॥

प्रतिषेध साध्य होनेपर अनुपलब्धि हेतुके प्रकार – अविरुद्धानुपलब्धि प्रतिषेध साध्य होनेपर होता है और वह ७ प्रकारसे प्रतिषेध करता है अर्थात् अविरुद्धानुपलब्धिके ७ भेद हैं स्वभाव अविरुद्धानुपलब्धि, व्यापक अविरुद्धानुपलब्धि, कारण अविरुद्धानुपलब्धि, पूर्वचर अविरुद्धानुपलब्धि, उत्तरचरअविरुद्धानुपलब्धि, सहचरअविरुद्धानुपलब्धि, प्रतिषेध साध्यसे अविरुद्धकी अनुपलब्धि होना इसका नाम है अविरुद्धानुपलब्धि। उनमेंसे प्रथम स्वभावानुपलब्धिका उदाहरण देते हैं।

नास्त्यत्र भूतले घट उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलब्धे ॥ ३–७९ ॥

अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतुका उदाहरण—इस जमीनपर घट नहीं

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

है क्योंकि उपलब्धि लक्षण प्राप्त होनेपर भी उसकी उपलब्धि नही हो रही है । अर्थात् घट प्राप्त करने योग्य चीज है । दिखने योग्य चीज है और फिर भी नही दिख रहा है तो इससे सिद्ध होता है कि यहां घड़ा नही है । वैसे इस अनुमानमें सिर्फ इतना ही कह देना—अनुपलब्धे । यहां घड़ा नही है । क्योंकि पाया नही जा रहा । तो इतने मात्र हेतुसे कार्य नही बनता । क्योंकि नही पायी जा रही तो बहुत सी चीजें हैं । पिशाच, भूत, राक्षस ये भी नही पाये जा रहे हैं तो इनका भी अभाव सिद्ध कर देंगे क्या ? इसलिये उपलब्धि लक्षण यह इतना विशेषण और दिया है, याने जो चीज दिख सकती है, पायी जा सकती है फिर भी न पायी जाय तो उससे उसका अभाव सिद्ध होता है पर पिशाच आदिक तो यहां पाये नही जाते, दिखते नही हैं, फिर उनकी अनुपलब्धिसे उनके विषयमें कुछ नही कहा जा सकता कहीं पिशाचादि यहां कहीं नही दिख रहे और वे मौजूद हों तो इससे यही बात सही है कि जो उपलब्धिके योग्य है और फिर उपलब्ध न हो तो उससे उनका नास्तित्व सिद्ध होता है ।

अनुपलब्धिसे आरोपित अस्तित्वका निषेध—यहां कोई पूछे कि यह तो कुछ स्ववचनबाधित जैसी बात हो रही है, जो है वह उपलब्धि लक्षण प्राप्त कैसे हो जायगी ? और, यदि कोई उपलब्धि लक्षणप्राप्त है अर्थात् पाये जाने योग्य है उपलब्धि को प्राप्त हुआ है फिर उसका असत्व कैसे कहोगे ? इन दोनों बातोंमें तो परस्पर विरोध जैसी बात है । तो उत्तर देते हैं कि आरोप करके घटरूपका निषेध किया है । पहिले तो ऐसी प्रकल्पना की कि यह जमीन घट सहित हो सकती थी और इस जमीन पर घट देखाजा सकता था तो घड़ेके सम्बन्धी रूपसे पहिले जमीनकी कल्पना की तब फिर घटका निषेध किया जा रहा है इस जमीनपर, क्योंकि सभी जगह जहां निषेध किया जाता है उसका विषय आरोपित हुआ करता है । शङ्काकार यह कह रहा था कि जो नही है उसे उपलब्धि प्राप्त कैसे कहोगे ? और जो उपलब्धि प्राप्त है उसे असत् कैसे कहोगे अर्थात् जैसे इस ही जमीनपर यदि घड़ा है ही नही तो उसे उपलब्धि लक्षण प्राप्त विशेषण कैसे लगाओगे ? अर्थात् पाया होता है और फिर न पाया जाय तो पाया हुआ कहां है ? और यदि प्राप्त है तो घटका निषेध कैसे ? उसके उत्तरमें कह रहे हैं कि जैसे घड़ा नही है यहां तो बुद्धिने पहिले यह कल्पना की कि घड़ा सहित यह जमीन हो सकती थी, अब नही है । तो आरोपित विषय होता है निषेधका । जैसे किसी पुरुषके बारेमें कहा जाय कि यह गोरा नही है तो यहां कोई ऐसा तर्क तो नही उठाता कि यदि गोरा है तो निषेध नही हो सकता और अगर निषेध गोरेपनका शब्द ही नही कह सकते हो ? इससे जो निषेध वाली बात कही जाती है वह पहिले बुद्धिमें आरोपित करली जाती है फिर उसका निषेध किया जाता है । इस जमीनपर घड़ा नही है तो निषेध करनेसे पहिले जमीनपर घड़ेका ऐसा सम्बन्ध बुद्धि में बताया । फिर आरोप करके उसका निषेध किया गया है ।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

आरोप्यमें ही आरोपकी संभवता--शंकाकार कहता है कि इस तरह तो जो भूत पिशाच आदिक अदृश्य है वे भी दृश्यरूपमें आरोपित किये जा सकेंगे और फिर उनका निषेध किया जायगा। उत्तर देते हैं कि यह बात युक्त नहीं है। जिसमें आरोप किये जानेकी योग्यता होती है आरोप उसका ही होता है। जो पदार्थ यदि विद्यमान हो तो नियमसे उपलब्ध हो, उसमें ही आरोप किया जा सकता है। जैसे यदि यहां घड़ा होता तो नियमसे उपलब्ध होता दिखना पाया जाता और अब नहीं दिख रहा, नहीं पाया जा रहा तो इससे सिद्ध है कि यहाँ घड़ा नहीं है। और पिशाच आदिकमें तो यह बात नहीं बनती कि पिशाच आदिक यहाँ होते तो नियमसे उपलब्ध होते। ऐसा नियम उनमें नहीं है इस कारण अनुपलब्धिसे पिशाचका नास्तित्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। घड़ेकी उपलब्धिमें जितने कारण हैं। जैसे इन्द्रिय ठीक होना प्रकाश होना और उन सब कारणोंके रहते हुए घड़ा होता तो नियमसे दिखता ना। अब सब कारण मौजूद हैं और घड़ा नहीं पाया जा रहा तो निषेध किया जा रहा कि घड़ा नहीं है ऐसी बात पिशाच आदिकमें तो है नहीं। चाहे कितना ही प्रकाश हो और कितना ही तेज जानने वाली इन्द्रियां हों तो भी पिशाच ग्रहणमें आजाय ऐसा नहीं है।

एकज्ञानसंसर्गी प्रदेशपर घटका असत्त्व सिद्ध कपनेसे अन्यत्र घटाभाव सिद्ध हो जानेकी अनापत्ति--घड़ेकी उपलब्धिके सारे कारणोंका होना एक ज्ञानसे संसर्ग रखने वाले प्रदेशके उपलब्ध होनेपर निश्चित होता है। याने जिस जमीन पर घड़ा रखा उस जमीनको समझनेका उपलब्ध करनेका कारण भी वही है याने प्रकाश है और इन्द्रियां व्यवस्थित हैं और जमीन दिख रही है और यही कारण है घटकी उपलब्धिके। इन्द्रियां व्यवस्थित हैं। प्रकाश हो तो घट भी दिख सकता है तो घट और उस जमीनके हिस्सेको उपलब्ध करनेके कारण समान हैं। तो जब इन इन्द्रियसे और इन प्रकाशोंमें यह जमीन तो दिख रही है और घड़ा मिल नहीं रहा तो इससे सिद्ध होता कि यहां घड़ा नहीं है। यहाँ एक ज्ञान संसर्गी कहनेसे यह भाव आता है कि जैसे हम यहांकी जमीन देख रहे हैं और वहाँ घडा नहीं दिख रहा तो घड़ेका अभाव यहाँ की जमीनपर ही सिद्ध कर पायेंगे। ऐसा नहीं कि अन्य देश की किसी जमीनपर हम अभाव सिद्ध करदें। जिस एक ज्ञानमें जमीन आ रही है उस ही एक ज्ञानमें घट नहीं दिख रहा तो घटका नास्तित्व सिद्ध होता है। इसी प्रकार एक ज्ञानमें आने वाले अन्य पदार्थोंमें तो उपलब्धि हो और घट भी दिख सकता था, क्योंकि दृश्य है वह यहां उपलब्ध हो नहीं रहा तो इस प्रकार उपलब्धि लक्षण प्राप्त घटका अनुपलम्भ सिद्ध किया गया है। उपलम्भ मायने पाया जाना यहां हेतु देरहे हैं स्वभावानुपलब्धिका। यहां घट नहीं है क्योंकि पाया नहीं जा रहा। तो एक सीधी ही बात कही जा रही है अविरुद्ध स्वभावकी अनुपलब्धि बतायी जा रही है और साथ ही साथ साध्य प्रतिषेधरूप भी बताया जा रहा है। शंकाकार कहता है कि एक ज्ञानमें संसर्ग रखने वाले प्रदेशकी उपलब्धि होनेपर

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

भी अन्य विषयक जैसे यहाँ घट विषयक ज्ञानके उत्पन्न करनेकी शक्ति सामग्रीकी है ऐसा निश्चय नही किया जा सकता। कैसे ? यों कि कोई जादूगर यहाँ बैठा हो और कहीं उसने ऐसा जादू चलाया कि कोई एक चीज किसीको न दिखी और सारी चीजें दिख रहीं तो अब वहां एक ज्ञानसंसर्गकी बात तो ठीक नही बैठ सकी। तो उसी तरह एक ज्ञानमें भूतल तो आ रहा और ऐसा दृष्टि प्रतिबंध कर दिया जाय किसीके द्वारा कि घट वहाँ हो और फिर भी उस ज्ञानमें घट न आये तो अब घटका अभाव इस हेतुसे तो सिद्ध नही कर सकते। उसका समाधान देते हैं कि यह कहना अयुक्त है क्योंकि प्रदेश आदिकके द्वारा एक ज्ञानमें सम्बन्धित ही घटका अभाव बताया जा रहा है। भिन्न ज्ञानमे आने वाले घटका अभाव नही बताया जा रहा याद कहीं पिशाच आदिकने दृष्टि बन्द कर दी है अदृश्य बना दिया है घटको तो अदृश्य बने हुए घटका हम निषेध नही कर रहे।

अभावकी अन्यभावरूपता—यहाँ तो एक ज्ञानमें सम्बन्ध रखने वाला पदार्थ और है उसका ज्ञान ही पर्युदासकी विधिसे घटकी असत्ता कहलाती है, याने जो चीज नही है उसका दिखना क्या ? और उसका बोलना क्या कि यह नही। उस पदार्थसे रहित जो जमीन दिख रही उसके मायने हैं उस पदार्थकी असत्ता। जैसे कोई कहे कि चौकीपर चश्मा रखा होगा सो उठा लाओ। वहाँ चश्मा था नही। तो देखकर वह कहता है कि चौकीपर चश्माका अभाव है। तो क्या उसे चश्माका अभाव है दिख गया ? न होना ऐसी क्या दिखनेकी चीज है ? पर चश्मा सम्बन्धसे रहित केवल चौकीका दिखना ही पर्युदास विधिसे चश्माका अभाव कहलाता है। तो इस तरह घड़ा दिख जाने योग्य चीज थी। और जिस ही एक ज्ञानमें वह प्रदेश दिख रहा है, जहाँ घड़ेका अभाव सिद्ध किया जा रहा है वहाँ घड़ेका अनुपलम्भ है तो उससे घट के नास्तित्वकी सिद्धि होती है।

प्रत्यक्षसिद्ध अभावको न मानने वालोंके प्रतिबोधके अर्थ अभावका अनुमान - शंकाकार कहता है कि तुममें जो यह कहा कि जमीनके सद्भावका ही नाम घटका अभाव है तो इस तरह भूतल तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। सो तद्गत हुये घटका अभाव वह भी प्रत्यक्ष सिद्ध बन गया। अब अनुपलम्भ हेतु देकर अनुमान बनानेकी आवश्यकता क्या है ? जब तुम्हारा कहना यह है कि खाली जमीन दिख जाय उसही के मायने घड़ेका अभाव है तो जमीन तो प्रत्यक्षसे दिख गई और जमीनका ही नाम है घड़ेका अभाव तो जमीन दिखते ही घड़ेका अभाव भी दिख गया। प्रत्यक्षसे जान लिया तो अब घड़ेके अभावको सिद्ध करनेके लिये अनुमान बनानेकी क्या आवश्यकता है। और अनुपलम्भ बताकर क्या सिद्ध करना चाहते ? कोई प्रयोजन ही नही ? इसका उत्तर देते हैं कि यह बात तुम्हारी कुछ सत्य है तो भी प्रत्यक्षसे जाने हुए अभावमें भी जो व्यामुग्ध होते हैं अर्थात् यथार्थ जानकारी नही रखते, ऐसा कोई

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

दार्शनिक है, उसको अभाव निमित्त करके समझाया जा रहा है। ऐसे सांख्य आदिक कुछ दर्शन हैं जो कि प्रत्यक्ष सिद्ध अभाव होनेपर भी उसको स्पष्ट उस रूपमें नही मान रहे। देखिये सत्त्व रज तम आदिक जो गुण हैं उन गुणोंमें जो असत्ताका व्यवहार किया जाता है कि सत्त्व गुणका नाम है स्थायी गम्भीर रहना और रजगुणका काम है उसमें कलुषता आना, उपसर्ग आना। तो दो गुणोंके दो स्वरूप न्यारे न्यारे हैं। एक गुणमें दूसरा गुण कैसे आयगा। तो जैसे सत्त्व रज तम आदिकमें असत्का व्यवहार किया जाता है तो वह अनुपलम्भ निमित्तिक ही तो है। सलिये यह कहना युक्त नही है कि अभाव जब प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया तो उसमें व्यवहार स्वयं हो जायगा। अन्य हेतु आदिक देनेकी क्या आवश्यकता ? यों देना पड़ता है कि प्रत्यक्ष सिद्ध होनेपर भी अभावमें जब यथार्थता नही समझी जा सक रही है तो उन्हें अनुमान से हेतुसे बताना पड़ता है ?

अनुपलम्भनिमित्तक व्यवहार बतानेकी आवश्यकताका दृष्टान्त द्वारा विवरण – जैसे और दृष्टान्त लीजिये —किसी पुरुषने बहुत बड़ी गाय देखी और उस को समझा दिया कि देखो—जिसमें सासना लगी है अर्थात् गलेके नीचे जो मांसकी पट्टी लम्बी लटकती रहती है वह सासन जिस जिस जानवरमें पायी जाय उसे गाय कहते हैं। गायके समान अनेक जानवर होते, रोझ भी गायकी तरह है लेकिन सासना अर्थात् गलेके नीचे लम्बी पतली मांस चमड़ेकी पट्टीका लटकना अन्य जानवरोंमें न मिलेगा। तो सासना आदिक लक्षण पाये जानेसे उसने बहुत बड़ी गायमें गायका व्यवहार कर लिया कि गाय यह कहलाती है। अब उस मूढ़ पुरुषने कहीं ठिगनी गाय देखी जो बहुत ही छोटी थी तो उसमें यद्यपि सदृशतासे तर्क रहा है फिर भी गायका व्यवहार नही करता, तो उसको जैसे निश्चित् बताकर समझाया जाता है। अथवा किसी पुरुषने ठिगनी गायको देखा और दूसरेने समझा दिया कि जो इस तरह सासना आदिक लक्षणोंको लिए हुए हो उसे गाय कहते हैं। फिर वह कहीं विशाल गायको देखे तो उसमें गायका व्यवहार नही करता तो उसे निमित्त दिखाकर कि देखो इसमें भी यह सासना आदिक है इससे यह भी गाय है, इसमें गायका व्यवहार करेगा। इस के पहिले जिस गायको जाना था वहां भी सासना आदिक लक्षण देखकर ही तो जाना था। तो अब इस गायको जान रहे हों छोटी अथवा बड़ी तो उसमें भी सासना आदि लक्षण पाये जा रहे हैं यों इसे मान लेते। वैसे ही जैसे यहां उपलम्भनिमित्तक व्यवहार कराया गया है। जैसे सासना आदिक पाये गये हैं उस निमित्त गायका व्यवहार कराया गया है इसी प्रकार अभावमें अनुपलम्भके निमित्तसे व्यवहार कराया गया है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते कि जहां निमित्त दिखाकर व्यवहार कराया जाता है, प्रत्यक्षमें सामने है तिसपर भी व्यवहार यदि नही कर रहा है तो निमित्त दिखाकर व्यवहार कराया जाता है। जैसे कोई बड़ा सीसमका पेड़ था, उसमें एक मनुष्य वृक्ष का व्यवहार कर रहा है वह कहलाता है सीसम। और यदि मिल जाय कोई सीसम

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

का छोटा पौधा उसमें वह सीसमका व्यवहार नहीं कर रहा तो निमित्त बताकर उसको उसमें व्यवहार कराया जाता, उसकी समझ बनाई जाती कि यह वृक्ष है सीसम होनेसे। तो जैसे सद्भावात्मक चीजमें उनका निमित्त दिलाकर उनका ज्ञान कराया जाता, व्यवहार कराया जाता इसी प्रकार अभाव वाले पदार्थमें, अभावमें अनुपलब्धि का निमित्त बताकर उसमें अभावका व्यवहार कराया जाता। इससे प्रत्यक्ष सिद्ध होने पर भी व्यवहारार्थ हेतु और युक्तियोंके द्वारा उसे अनुमानमें लेनेकी आवश्यकता हो जाती है। तो यहाँ स्वभाव उपलब्धि हेतुके उदाहरणमें स्वभावका अनुपलम्भ ही तो बताया घटकी सत्ता अनुपलब्ध है इस कारण घट नहीं है। यों स्वभावानुपलब्धि नामक प्रथम अविरुद्ध स्वभावानुपलब्धि हेतुका उदाहरण दिखाया है। अब अविरुद्धव्याप्यानुपलब्धि का उदाहरण कहते हैं।

नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः ॥ ३-८० ॥

अविरुद्धव्याप्यानुपलब्धिका उदाहरण – जहाँ कोई वृक्ष ही न था उस जगह यह अनुमान किया गया कि यहाँ सीसम नहीं है, क्योंकि वृक्षकी अनुपलब्धि होनेसे। यहाँ व्याप्यका तो नास्तित्व साध्य बनाया और व्यापकका अभाव साधन बनाया। यहाँ उल्टी बात नहीं चल सकती थी कि कोई यों कहदे कि यहाँ वृक्ष नहीं है सीसम न होनेसे। न सीसम हो तो उससे कहीं वृक्षका अभाव तो सिद्ध न कर दिया जायगा। व्यापककी अनुपलब्धिसे व्याप्यका अभाव सिद्ध किया जा सकता है। व्यापक उसे कहते हैं कि जो अधिक जगह रहे याने व्याप्यके साथ तो है ही, पर उस व्याप्यके अलावा अन्यत्र भी रहे तब व्यापकका अभाव दिखाकर व्याप्यका अभाव बताया जा सकता है। व्याप्य तो थोड़े स्थलमें रहता, व्यापक रहता बहुत जगह, तो व्याप्यका अभाव बताकर व्यापकका अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता। तो यहाँ प्रतिषेध साध्य है सीसम नहीं है और सीसमसे अविरुद्ध व्यापक है वृक्ष, उसकी अनुपलब्धि बतायी जा रही है। तो यों व्यापककी असत्ता सिद्ध करना सो अविरुद्ध व्यापकानुपलब्धि हेतुका साध्य है। अब अविरुद्धकार्यानुपलब्धिका उदाहरण कहते हैं।

नास्त्यत्राऽप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्निर्धूमानुपलब्धेः ॥ ३-८१ ॥

अविरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतुका उदाहरण – यहाँ जिसकी सामर्थ्य रोकी न गई हो ऐसी अग्नि नहीं है क्योंकि धुवाँ नहीं पाया जाता। यहाँ पर प्रतिषेध किया जा रहा है उस अग्निका कि जिस अग्निकी सामर्थ्यसे कोई रोक नहीं रहा है। ऐसी अग्निका अविरुद्ध कार्य है धुवाँ। यदि वे रोक टोक ठंगकी अग्नि हो तो उससे धूमकी उत्पत्ति होती है। उस कार्यकी है यहाँ अनुपलब्धि। धुवाँ पाया नहीं जा रहा तो उससे यह सिद्ध हुआ कि यहाँ ऐसी अग्नि नहीं है जिसकी सामर्थ्य अप्रतिबद्ध हो। इस तरह जिसका प्रतिषेध किया जा रहा है उस साध्यके अविरुद्ध कार्यकी अनुपलब्धि होनेसे जो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

अनुमान बनाया है उसका यह हेतु है अविरुद्धकार्यानुपलब्धि। अब अविरुद्धकारणानुपलब्धिका दृष्टान्त देते हैं।

नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ॥ ३-८२ ॥

अविरुद्धकारणानुपलब्धि हेतुका उदाहरण—यहाँ धुवां नहीं है क्योंकि अग्नि न होनेसे। यहां साध्य है प्रतिषेध अर्थात् धुवाँका अभाव बताया जा रहा है। तो जिसका प्रतिषेध किया जा रहा है उसका कारण है अग्नि। सो उस कारणभूत अग्निका है वहाँ अनुपलम्भ सो कारणके अनुपलम्भसे कार्यका अनुपलम्भ बनाना ऐसे अनुमानमें जो हेतु आया करता है उस हेतुका नाम है अविरुद्धकारणानुपलब्धि धूमका अविरुद्ध कारण अग्नि न होनेसे धूम भी नहीं है ऐसा इस अनुमानमें सिद्ध किया गया है। अब अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण कहते हैं।

न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं कृतिकोदयानुपलब्धेः ॥ ३-८३ ॥

अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण—एक मुहूर्तके बाद रोहिणी नक्षत्रका उदय न होगा क्योंकि कृत्तिकाका उदय न होनेसे। यहां साध्य है प्रतिषेध्य शकटका उदय। शकट नक्षत्रका उदय आया करता है कृत्तिकाका उदय हो चुकनेपर, अर्थात् कृत्तिकाका उदय आ जाया करता है। तो प्रतिषेध साध्य है शकट। उसका अविरुद्धपूर्वचर है कृत्तिकाका उदय। शकटसे ठीक पहिले कृत्तिका नक्षत्र आया करता है। उसकी है यहां अनुपलब्धि सो अविरुद्ध पूर्वचरानुपलब्धि हुआ हेतु। कृत्तिकाके उदयका अनुपलम्भ होनेसे यह निश्चित होता है। एक मुहूर्तमें सकटका उदय न होगा इस तरह कृत्तिकाके उदयानन्तर आगामी मुहूर्तमें आ सकने वाले शकटका निषेध किया गया क्योंकि उससे पहिले आने वाले कृत्तिकाका उदय नहीं है। इस प्रकार यह अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि नामका हेतु हुआ। अब उत्तरचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण कहते हैं।

नोदगाद्भरणिर्मुहूर्तात्प्राक् तत एव ॥ ३-८४ ॥

अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण—मुहूर्तसे पहिले भरणी नक्षत्रका उदय न हुआ था क्योंकि कृत्तिकाका उदय आया करता है। तो जब जब कृत्तिका उदय होता, उससे यह सिद्ध हो जाता कि एक मुहूर्त पहिले भरणीका उदय था लेकिन इस समय कृत्तिकाका उदय है नहीं तो इससे यह सिद्ध होता है कि एक मुहूर्त पहिले भरणीका उदय न था। तो इस अनुमानमें प्रतिषेध साध्य तो है भरणी नक्षत्रका मुहूर्त पहिले उदय न होना। प्रतिषेध साध्य जो भरणी नक्षत्र है उसका उत्तरचर है कृत्तिका। भरणी द्वितीय नक्षत्र है। कृत्तिका तृतीय नक्षत्र है। तो इस उत्तरचरकी अनुपलब्धि सिद्ध हो जाती है। इस तरह भरणीउदयसे अविरुद्ध उत्तरचर कृत्तिका

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

के उदयकी अनुपलब्धि होना सो अविरुद्ध उत्तरचरानुपलब्धि हेतु है. अब अविरुद्ध सहचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण देते हैं।

नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ॥ ३-८५ ॥

अविरुद्धसहचरानुपलब्धि हेतुका उदाहरण - एक तराजूमें कोई वस्तु तौली जा रही है। मानो पाव किलो चांदी तौली जा रही है। ठीक पाव किलो चांदी एक पलापर है दूसरेपर पाव किलोका बांट। तो उस तराजूमें कोई पला नीचे नही है। और न कोई पला ऊंचे है। जब बराबर चीज तुल रही है तो वह समतुला बना हुआ है। उस समय यह अनुमान बताया जा रहा कि उस तराजूमें दूसरा पला ऊंचे नही है क्योंकि यह पहिला पला नीचे न होनेसे। तराजूमें यदि एक पला ऊँचे होता है तो दूसरा पला तुरन्त नीचे एक साथ होता ही है। तो यहां नीचे पला न होनेसे यह अनुमान किया कि दूसरा पला ऊँचा भी नही है। तो यहां एकका ऊँचा होना और एकका नीचा होना यह एक साथ हुआ करता है। उनमेंसे जब एक पला नीचे नही है तो सिद्ध हो ही जाता है कि दूसरा पला ऊँचे नही है। तो यहां एक पल के ऊंचेका निषेध किया गया। तो प्रतिषेध्य साध्य है पलेका ऊँचा होना। उसका सहचर है पलेका नीचा होना। सो उस सहचरकी यहां अनुपलब्धि है अतएव यह हेतु अविरुद्ध सहचरानुपलब्धि नामसे कहलाया। इस तरह अविरुद्धानुपलब्धिके ७ प्रकार बताकर अब विरुद्धानुपलब्धिका वर्णन करते हैं।

विरुद्धानुपलब्धिः विधौ त्रेधा विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धि भेदात् ॥ ३-८६ ॥

विरुद्धानुपलब्धि हेतुके प्रकार—विरुद्धकी अनुपलब्धि होनेको विरुद्धानुपलब्धि कहते हैं। विरुद्धानुपलब्धि हेतु विधिसाध्य होनेपर तीन प्रकारका होता है। विरुद्धकार्यानुपलब्धि विरुद्धकारणानुपलब्धि विरुद्धस्वभावानुपलब्धि। विधेय जो साध्य बनाया जा रहा है उससे विरुद्ध कार्यकी कारणकी, स्वभावकी अनुपलब्धि होनेको। विरुद्धकार्यानुपलब्धि विरुद्धकारणानुपलब्धि, विरुद्धस्वभावानुपलब्धि कहते हैं। जिस साध्यका अस्तित्व सिद्ध किया जा रहा है उस साध्यसे विरोधी तत्त्व यदि नहीं पाया जा रहा तो उससे साध्य तो सिद्ध हो ही जायगा। इस बुनियादपर विरुद्धानुपलब्धिके ये तीन भेद किए गए। उनमेंसे विरुद्धकार्यानुपलब्धिका उदाहरण देते हैं।

अस्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः ॥ ३-८७ ॥

विरुद्धकार्यानुपलब्धि हेतुका उदाहरण—इस प्राणीके रोग विशेष है, क्यों कि निरोग चेष्टा न पायी जानेसे। यहां साध्य सिद्ध किया जा रहा है व्याधिविशेष।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

उससे विरुद्ध क्या है ? निरोगता होना । और निरोगता होनेका कार्य क्या है ? कोई तगड़ी चेष्टा होना । उस चेष्टाकी पायी जा रही है अनुपलब्धि । निरोग मुद्रा न पायी जानेसे व्याधि विशेषके अस्तित्वका अनुमान किया गया है । तो यहाँ साध्य बताया गया है रोग विशेष । उसका विरोधी है आरोग्य उसका कार्य है निरोग चेष्टाका उसकी अनुपलब्धि है । तो निरोगी चेष्टा न होनेसे रोग विशेष है । इस अनुमानमें विरुद्ध कार्यानुपलब्धि हेतु आया है । अब विरुद्ध कारणानुपलब्धि हेतुका उदाहरण देते हैं ।

अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात् ॥ ३–८८ ॥

विरुद्धकारणानुपलब्धि हेतुका उदाहरण—इस प्राणीमें दुःख है इष्ट संयोगका अभाव होनेसे । यहाँ व्यवहारतः भी विदित हो जाता कि जब जिस किसी पुरुषको इष्टका संयोग प्राप्त नही होता तो वह भीतरमें दुःख मानता है । तो इष्टका संयोग न होनेसे दुःख न होना यह तो ठीक ही है और इसका अनुमान किया गया है तो साध्य है दुःखका अस्तित्व, उसका विरोधी है, सुख उसका कारण है इष्ट पदार्थोंका संयोग । अर्थात् साध्यभूत दुःखके विरुद्ध सुखका कारण है इष्ट संयोग । वह इष्ट संयोगको अनुपलब्धि होनेसे दुःखका अस्तित्व सिद्ध किया गया है । तो यहाँ इष्ट संयोगका अभाव यह हेतु विरुद्धकारणोपलब्धि नामक हुआ । अब विरुद्ध स्वभावानुपलब्धि हेतुका उदाहरण देते हैं ।

अनेकान्तात्मकं वस्तुकान्तानुपलब्धे ॥ ३–८९ ॥

विरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतुका उदाहरण--वस्तु अनेकान्तात्मक है क्योंकि एकत्व स्वरूपकी अनुपलब्धि होनेसे । यहां साध्य सिद्ध किया जा रहा—अनेकान्त । उससे विरुद्ध होता है एकान्त । जैसे नित्यका एकान्त मानना अथवा क्षणिकका एकाग्र मानना । वह एकान्त स्वभाव वस्तुमें पाया नही जा रहा । प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे सिद्ध है कि कोई वस्तु न सर्वथा नित्य है न सर्वथा क्षणिक है । सर्वथा नित्य एकान्त और सर्वथा क्षणिक एकान्त प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे सिद्ध नही होता, तब वस्तुका अनेकान्तपना सिद्ध करना वाजिब है । इस तरह साध्य अनेकान्तात्मकके विरुद्ध नित्यत्व एकान्त अथवा क्षणिकत्व एकान्तकी अनुपलब्धि होनेसे जो अनुमान बनाया गया है उस अनुमानमें एकान्तकी अनुपलब्धि यह हेतु विरुद्ध स्वभावानुपलब्धि कहलाता है ।

परम्परया संभवित साधनोंका सद्भाव होनेसे साधनसंख्या नियमघातकी आशंकाका प्रश्न—अब शंकाकार कहता है कि यहाँ साक्षात् साध्यकी विधि करनेमें और साक्षात् साध्यका निषेध करनेमें साधन जो मिनतीके बताये हैं वे तो रहे आयें ठीक हैं किन्तु अनेक प्रसंग ऐसे होते हैं जो

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

परम्परासे विधिको सिद्ध करते हैं। अथवा निषेधको सिद्ध करते हैं। वे हेतु तो पहिले कहे गये हेतुके प्रकारोंसे जुदे रहेंगे। तब फिर हेतुवोंकी संख्या इतनी ही है यह यह नियम तो नही बन सकता। अनेक प्रकारके हेतु होते हैं जिन हेतुवोंको पहिले दो प्रकारका बताया – उपलब्ध और अनुपलब्धि। उपलब्धिको फिर दो तरहका बताया अविरुद्धोपलब्धि और विरुद्धोपलब्धि। अनुपलब्धिको भी दो तरह बताता–अविरुद्धानुपलब्धि और विरुद्धानुपलब्धि। और, उन सबको विधियोंसे भी सिद्ध करते। और प्रतिषेधोंसे भी। उन सबके प्रकार बताये। तो जितनी संख्या बतई गयी है उनके अतिरिक्त भी तो हेतु होता है जो परम्परासे विधिको सिद्ध करता है अथवा परम्परासे निषेधको सिद्ध करता है। इस प्रकारकी शंका होनेपर सूत्र कहते हैं।

परम्परया संभवत्साधनमत्रवान्तर्भावनीयम् ॥ ३-९० ॥

परम्परया संभवितसाधनोंका उक्तसाधनोंमें अन्तर्भाव –परम्परासे सम्भव होने वाले हेतु जैसे कार्यकार्य आदिक कारणकारण आदिक इन सब साधनों को इन्हीं हेतुवोंमें अन्तर्भूत कर लेना चाहिये और तब जो हेतुवोंकी संख्या बतायी गई है उसका विघात नहीं होता। तात्पर्य यह है कि यदि कोई साध्य हेतुके कार्यका कार्य है तो वह कारण हेतुमें सामिल हो जायगा। तथा कोई साध्य हेतुके कारणका कारण है तो वह कार्य हेतुमें सामिल हो जायगा। मतलब परम्परासे लम्बा देखा हुआ साध्य इन्हीं हेतुवोंमें सामिल किया जायगा। विधि साध्य होनेपर कार्य नामका हेतु अविरुद्ध कार्योपलब्धिमें अन्तर्भूत हो जाता है जैसे

आभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् । ३-९१ ॥
कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ॥ ३-९२ ॥

कार्यकार्य हेतुका अविरुद्धकार्योपलब्धिमें अन्तर्भाव–इस चक्रपर शिवक पर्याय उत्पन्न हो चुकी क्योंकि स्थास पर्याय होनेसे। कुम्हारके चक्रपर जो घड़ा बनता है उस क्रममें पहिले तो मृतपिण्डके बाद शिवक पर्याय बनती है। एक पिण्डी जैसी ऊँची उठा लेना यह पर्याय बनती है, इसके बाद फिर उसका कटोरा जैसा बना ऐसी छत्रक पर्याय बनती है उसके बाद उसे गहरा बनाया सो स्थास पर्याय बनती है। अब यहाँ यह देखेंगे कि शिवकका कार्य तो हुआ घातक। छत्रकका कार्य हुआ स्थास तो कार्यकार्य बताकर परम्पराका पूर्व पर्यायका होना बताना यह अविरुद्धकार्योपलब्धि नामक हेतुमें अन्तर्भूत है। अथवा दूसरा दृष्टान्त लीजिये। जैसे रोटी बननेमें पहिले लोई बनाई जाती है फिर बेली जाती है, पीछे तवेपर डाली जाती है। पहिली पर्त सेंकी जाती है, उसके बाद फिर दूसरी पर्त सेंकी जाती है, बादमें फिर रोटी फुलाई जाती है। तो कोई वहां यह अनुमान बनाये कि तवेपर रोटीकी पहिली पर्त सिक चुकी क्योंकि रोटी फूल जानेसे। तो पहिली पर्त सिकनेका कार्य तो है दूसरी पर्त

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

सिकना और उसका कार्य है रोटीका फूलना तो परम्परा बढ़ा दी। कार्यका कार्य बता दिया हेतुमें, तो ऐसा हेतु यद्यपि कार्यकार्य नामक हेतु कहलाया लेकिन अविरुद्धकार्योपलब्धिमें ही इसका अन्तर्भाव हो जाता है। यों परम्परासे होने वाले साधनोंका इन्ही हेतुवों में अन्तर्भाव करना चाहिये। इसको और स्पष्ट करनेके लिये एक निषेधरूप साध्यका उदाहरण दिया जा रहा है।

नास्त्यत्र गुहायां मृगकीडनं मृगारिसंशब्दनात् कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौयथेति। ३-९३।

कारणविरुद्धकार्यका कारणविरुद्धकार्योपलब्धिमें अन्तर्भाव—इस गुफामें हिरण का खेलना नही हो रहा, कारण कि सिहका शब्द होनेसे यह अनुमान सही है कि जहां सिहका शब्द हो रहा हो (सिह हिरणका दुश्मन होता है) वहां हिरणोंका खेलना कहां पाया जा सकेगा? इस अनुमानमें निषेध साध्य है मृगक्रीड़न और मृगक्रीड़नका विरोधी है सिह और सिहका कार्य है शब्द करना, तो कारणसे विरुद्ध कार्यकी उपलब्धि होनेसे जो यहां प्रतिषेध साध्य बना है, इस अनुमानमें जो हेतु है वह विरुद्ध कार्योपलब्धिमें सामिल हो जायगा, क्योंकि मृगक्रीड़नका कारण है मृग और मृगका विरोधी है सिह। उसका कार्य है सिहका नाद। उसकी उपलब्धि होनेसे मृगक्रीड़न नही हो रहा। इस साध्यमें जो हेतु दिया है वह विरुद्ध कार्य हेतुमें अन्तर्भूत होता है। अब शंकाकार कह रहा है कि यदि अव्युत्पन्न पुरुषोंकी उत्पत्तिके लिए दृष्टान्त आदिक देना युक्त है दृष्टान्त आदिक सहित हेतुका प्रयोग करना युक्त है तो व्युत्पन्न पुरुषोंके लिये किस प्रकारसे हेतुका प्रयोग करना युक्त है? अथवा व्युत्पन्न पुरुषोंको हेतुका प्रयोग किस तरह करना चाहिये, उसके उत्तरमें सूत्र कहते हैं।

व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्यान्यथानुपपत्त्यैव वा॥ ३-९४॥

हेतुके सम्बन्धमें व्युत्पन्न प्रयोगका फल—व्युत्पन्न विद्वान पुरुषोंके लिए प्रयोग तथोपपत्ति अथवा अन्यथानुपपत्तिसे ही किया जाता है। साध्यके होनेपर ही साधनके उपपन्न होनेका नाम है तथोपपत्ति और साध्यके न होनेपर साधनके न होने का नाम है अन्यथानुपपत्ति। ये दो बातें जहां प्रयोगमें आ जावें अथवा इन रूपोंमें हेतु का ढांचा बने तो उससे साध्यकी सिद्धि कर ली जाती है तो जो व्युत्पन्न पुरुष हैं, विद्वान् हैं उनका प्रयोग तथोपपत्ति अथवा अन्यथानुपपत्तिसे ही होता है। अब इसी चीजको उदाहरणके द्वारा दिखाते हैं।

अग्निमानयं देशस्तथा धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा। ३-९५।

तथोपपत्ति व अन्यथानुपपत्तिके प्रयोगका उदाहरण—यह जगह अग्नि वाली है क्योंकि अग्नि वाली होनेपर धूमवत्वकी उत्पत्ति होती है। यह जो हुआ तथो-

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

पपत्तिके रूपमें हेतुका प्रयोग। अब दूसरी बात सुनो—यह जगह अग्नि वाली है क्योंकि अन्यथा अर्थात् अग्नि वाली न होती तो धुवां वाली होनेकी अनुपपत्ति है। तो अग्निके होनेपर ही धुवाँकी उपपत्ति कहना तथोपपत्ति है और अग्निके न होनेपर धूम की अनुपपत्ति बताना और उससे अग्निकी सिद्धि करना यह अन्यथानुपपत्ति है। इस प्रकार व्युत्पन्न पुरुषोंको जो प्रयोग किया जाता है वह तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति से ही किया जाता है। यहां एक जिज्ञासा होती है कि तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति इन दो विधियोंके द्वारा व्युत्पन्न पुरुषोंको किस तरह प्रयोग करनेका नियम कहा गया है? इसका समाधान देनेके लिये सूत्र कहते हैं।

हेतुप्रयोगो हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधियते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते। ३-९६।

तथोपपत्ति व अन्यथानुपपत्तिके रूपमें हेतुप्रयोगका नियम जिस प्रकार व्याप्तिका ग्रहण हो जाया करता है उस ही प्रकारसे तो हेतुका प्रयोग किया जाता है, क्योंकि हेतुका प्रयोग व्याप्तिके ग्रहणका उल्लंघन किये विना हुआ करता है और वह व्याप्ति इतना ही कहनेसे अर्थात् तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्तिके प्रयोग-मात्रसे ही विद्वान पुरुषोंके द्वारा निश्चित करली जाती है इस कारण फिर दृष्टान्त आदिकका प्रयोग करके व्याप्तिका निश्चय कराना इसमें फिर कोई प्रयोजन नहीं रहता दृष्टान्त आदिकका प्रयोग इसलिए किया जाता है बालकोंको समझानेके लिए कि उन्हें व्याप्तिका अवधारण हो जाय। इससे खास महत्त्वकी चीज है व्याप्तिका अवधारण जिसके बिना साध्यकी सिद्धि ही नहीं हो सकती। सो हेतुका प्रयोग ही जब इस तरह बनता है कि जिस प्रकार उस व्याप्तिका ग्रहण होता है और उसका उपाय है तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति तो उससे ही व्याप्ति निश्चित हो गयी। और साध्यकी सिद्धि हो गयी, फिर उदाहरण आदिकका प्रयोग करना बिल्कुल निष्प्रयोजन है। यहां कोई ऐसी जिज्ञासा रखे कि दृष्टान्तादिकका प्रयोग साध्यकी सिद्धिके लिए फल-वान हो जायगा। तो उत्तर देते हैं कि—

तावतैव च साध्यसिद्धिः।३ ९७।

साध्यसिद्धिके लिये दृष्टान्तादिप्रयोगकी अनावश्यकता—तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्तिके ढंगमें जो हेतुका प्रयोग किया गया है उस हेतु प्रयोगसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है। क्योंकि वह हेतुका प्रयोग जो तथोपपत्तिमें बांध दिया है अर्थात् साध्य होनेपर ही साधनका उत्पन्न होना और अन्यथानुपपत्तिमें बांध दिया है कि साध्यका अभाव होनेपर साधनका उपलम्भ न होना, तो इस विधिमें हेतुके विपक्षमें असम्भवता अपने आप जाहिर हो गयी। हेतु यदि विपक्षमें नहीं रहता तो वह हेतु सही माना जाता है। तो विपक्षमें असम्भवताका निश्चय रखने वाले हेतुके

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1

प्रयोग मात्रसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है तो साध्य सिद्धिके प्रयोगके वास्ते भी दृष्टान्त आदिकके कहनेकी आवश्यकता नहीं होती।

तेन पक्षस्तदाधारसूचनायोक्तः। ३-९८।

साध्याधारकी सूचनाके लिये पक्षका प्रयोग—इस प्रकरणमें हेतुके सम्बन्धमें और अनुमानके सब अंगोंके सम्बन्धमें बहुत विस्तारसे वर्णन हुआ है। उन वर्णनोंको सुनकर निष्कर्ष रूपमें यह भी एक बात समझ लीजिये कि पक्ष जिसके आधारमें साध्य सिद्ध किया जा रहा है वह यद्यपि गम्यमान है, प्रत्यक्ष आदिकसे सिद्ध है तो भी विद्वान पुरुषोंके प्रयोगमें क्यों आता है साध्यके आधारकी सूचनाके लिये आता है हेतुसे पक्षसहित साध्यकी व्याप्ति तो न बनेगी। पर इसे हम कहाँ सिद्ध करना चाहते हैं यह तो बताना आवश्यक है। पक्षमें साध्यके कहनेका ही तो सारा वाद है, बसलिये गम्यमान होनेपर भी पक्षका कथन होता है। इस विषयमें पहिले भी बहुत वर्णन हो चुका है। इससे यह सिद्ध हुआ कि साधनसे साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान कहते हैं। तथोपपत्ति, अन्यथानुपपत्तिकी विधिसे जो घटे उसे हेतु कहेंगे। जो इष्ट हो, प्रतिवादीको असिद्ध हो और अबाधित हो उसे साध्य कहेंगे। इस प्रकार साधनसे साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान प्रमाण सिद्ध किया। इसके साथ इतना वर्णन हम अध्यायमें हो चुका कि प्रत्यक्षकी भांति स्मृति भी प्रमाण है, प्रत्यभिज्ञान भी प्रमाण है, तर्क भी प्रमाण है और अनुमान भी प्रमाण है। अब परोक्ष प्रमाणोंमेंसे एक आगमप्रमाण अविशिष्ट रहा उसकी प्रमाणताका वर्णन आगेके सूत्रमें कहेंगे।

To report error, please contact vikasnd@gmail.com Version 1